ॐ
पदार्थ विज्ञान
जिनेन्द्र वर्णी

रचयिता का चमत्कार

जैनेन्द्र प्रमाण कोष

की रचना

'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' के रचयिता तथा सम्पादक श्री जिनेन्द्र वर्णीका जन्म १४ मई १९२२ को पानीपतके सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व० श्री जयभगवान् जी जैन एडवोकेटके घर हुआ। केवल १८ वर्षको आयुमे क्षय रोगसे ग्रस्त हो जानेके कारण आपका एक फेफडा निकाल दिया गया जिसके कारण आपका शरीर सदाके लिए क्षीण तथा रुग्ण हो गया। सन् १९४९ तक आपको धर्मके प्रति कोई विशेष रुचि नही थी। अगस्त १९४९ के पर्यूषण पर्वमे अपने पिता-श्री का प्रवचन सुननेसे आपका हृदय अकस्मात् धर्मकी ओर मुड गया। पानीपतके सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा शान्त-परिणामी स्व० प० रूपचन्द जी गार्गीयकी प्रेरणासे आपने शास्त्र-स्वध्याय प्रारम्भ की और सन् १९५८ तक सकल जैन-वाड्मय पढ डाला। जो कुछ पढते थे उसके सकल आवश्यक सन्दर्भ रजिस्ट्रोमे लिखते जाते थे, जिससे आपके पास ४-५ रजिस्टर एकत्रित हो गए।

स्वाध्यायके फलस्वरूप आपके क्षयोपशममे अचिन्त्य विकास हुआ, जिसके कारण प्रथम बारका यह स्वाध्याय तथा संदर्भ-सकलन आपको अपर्याप्त प्रतीत होने लगा। अत सन् १९५८ मे दूसरी बार सकल शास्त्रो का आद्योपान्त अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। घर छोडकर मन्दिर जी के कमरेमे अकेले रहने लगे। १३-१४ घण्टे प्रति दिन अध्ययनमे रत रहनेके कारण

दूसरी बार वाली यह स्वाध्याय केवल १५-१६ महिने मे पूरी हो गई। सन्दर्भोका सग्रह अबकी बार अपनी सुविधाकी दृष्टिसे रजिस्ट्रोमे न करके खुले परचो पर किया और शीर्षको तथा उपशीर्षकोमे विभाजित उन परचोको वर्णानुक्रमसे सजाते रहे। सन् १९५९ मे जब यह स्वाध्याय पूरी हुई तो परचो का यह विशाल ढेर आपके पास लगभग ४० किलो प्रमाण हो गया।

परचोके इस विशाल सग्रहको व्यवस्थित करनेके लिए सन् १९५९ मे आपने इसे एक सागोपाग ग्रन्थके रूपमे लिपिवद्ध करना प्रारम्भ कर दिया, और १९६० मे 'जैनेन्द्र प्रमाण कोष' के नामसे आठ मोटे-मोटे खण्डो की रचना आपने कर डाली, जिसका चित्र शान्ति-पथ-प्रदर्शनके प्रथम तथा द्वितीय सस्करणोमे अकित हुआ दिखाई देता है।

स्व० प० रूप चन्दजी गार्गीयने अप्रैल १९६० मे 'जैनेन्द्र प्रमाण कोष' की यह भारी लिपि, प्रकाशन की इच्छासे देहली ले जाकर, भारतीय ज्ञानपीठके मन्त्री श्री लक्ष्मीचन्द जी को दिखाई। उससे प्रभावित होकर उन्होंने तुरत उस प्रकाशनके लिए मागा। परन्तु क्योकि यह कृति वर्णी जी ने प्रकाशनकी दृष्टिसे नही लिखी थी और इसमे बहुत सारी कमियें थी, इसलिए उन्होने इसी हालतमे इसे देना स्वीकार नही किया, और पण्डित जी के आग्रहसे वे अनेक सशोधनो तथा परिवर्धनोसे युक्त करके इसका रूपान्तरण करने लगे। परन्तु अपनी ध्यान समाधिकी शान्त साधनामे विघ्न समझकर मार्च १९६२ मे आपने इस कामको बीचमे ही छोडकर स्थगित कर दिया।

पण्डित जी की प्रेरणायें बराबर चलती रही और सन् १९६४ मे आपको पुन. यह काम अपने हाथमे लेना पडा। पहले वाले रूपान्तरण से आप अब सन्तुष्ट नही थे, इसलिए इसका त्याग करके

दूसरी बार पुन. उसका रूपान्तरण करने लगे, जिसमे अनेको नये शब्दो तथा विषयो की वृद्धिके साथ-साथ सम्पादन-विधिमे भी परिवर्तन किया। जैनेन्द्र प्रमाण कोषका यह द्वितीय रूपान्तरण ही आज 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष' के नाम से प्रसिद्ध है।

इसलिए 'जैनेण्द्र सिद्धान्त कोष' के नामसे प्रकाशित जो अत्यन्त परिष्कृत कृति आज हमारे हाथोमे विद्यमान है, वह इसका प्रथम रूप नही है। इससे पहले भी यह किसी न किसी रूपमे पाँच बार लिखी जा कुकी है। इसका यह अन्तिम रूप छठी बार लिखा गया है। इसका प्रथमरूप ४-५ रजिस्ट्रो मे जो सन्दर्भ-सग्रह किया गया था, वह था। द्वितीय रूप सदर्भ-सग्रहके खुले परचोका विशाल ढेर था। तृतीय रूप 'जैनेन्द्र प्रमाण कोष' नाम वाले वे आठ मोटे-माटे खण्ड थे जो कि इन परचोको व्यवस्थित करनेके लिए लिखे गये थे। इसका चौथा रूप वह रूपान्तरण था जिसका काम बीचमे ही स्थगित कर दिया गया था। इसका पाँचवां रूप वे कई हज़ार स्लिपें थी जो कि जैनेन्द्र प्रमाण कोष तथा इस रूपान्तरणके आधारपर वर्णी जी ने ६-७ महीने लगाकर तैयार की थी तथा जिनके आधारपर कि अन्तिम रूपान्तरण की लिपि तैयार करनी इष्ट थी। इसका छठा रूप यह है जो कि 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष' के नामसे आज हमारे सामने विद्यमान है।

यह एक आश्चर्य है कि इतनी रुग्ण कायाको लेकर भी वर्णी जी ने कोष के सकलन सम्पादन तथा लेखनका यह सारा कार्य अकेले सम्पन्न किया है। सन् १९६४ मे अन्तिम लिपि लिखते समय अवश्य आपको अपनी शिष्या ब्र० कुमारी कौशल का कुछ सहयोग प्राप्त हुआ था, अन्यथा सन् १९४९ से सन् १९६५ तक १७ वर्षके लम्बे कालमे आपको तृण मात्र भी सहायता इस सन्दर्भ मे कही से

प्राप्त नही हुई। यहाँ तक कि कागज़ जुटाना, उसे काटना तथा जिल्द बनाना आदि का काम भी आपने अपने हाथ से ही किया।

यह केवल उनके हृदयमे स्थित सरस्वती माता की भक्तिका प्रताप है कि एक असम्भव कार्य भी सहज सम्भव हो गया और एक ऐसे व्यक्तिके हाथसे सम्भव हो गया जिसकी क्षीण कायाको देखकर कोई यह विश्वास नही कर सकता कि इसके द्वारा कभी ऐसा अनहोना कार्य सम्पन्न हुआ होगा। भक्ति मे महान् शक्ति है, उसके द्वारा पहाड़ भी तोडे जा सकते हैं। यही कारण है कि वर्णी जी अपने इतने महान् कार्यका कर्तृत्व सदा माता सरस्वतीके चरणोमे समर्पित करते आये हैं, और कोष को सदा उसी की कृति कहते आये है। यह भक्ति तथा कृतज्ञताका आदर्श है।

यह कोष साधारण शब्द-कोश जैसा कुछ न होकर अपनी जातिका स्वय है। शब्दार्थ के अतिरिक्त शीर्षको उपशीर्षको तथा अवान्तर शीर्षको मे विभक्त उसकी वे समस्त सूचनायें इसमे निबद्ध हैं जिनकी कि किसी भी प्रवक्ता लेखक अथवा संधाता को आवश्यकता पडती है। शब्द का अर्थ, उसके भेद प्रभेद, कार्य-कारणभाव, हेयोपादेयता, निश्चय व्यवहारनय तथा उसकी मुख्यता गौणता, शका समाधान, समन्वय आदि कोई ऐसा विकल्प नही जो कि इसमे सहज उपलब्ध न हो सके। विशेषता यह कि इसमे रचयिताने अपनी ओर से एक शब्द भी न लिखकर प्रत्येक विकल्प के अन्तर्गत अनेक शास्त्रोंसे सकलित आचार्योंके मूल वाक्य निबद्ध किए हैं। इसलिए यह कहना कोई अतिशयोक्ति नही हैं कि जिसके हाथमे यह महान् कृति है उसके हाथमे सकल जैन-वाड्मय है।

सुरेशकुमार जैन गार्गीय

सम्पादकीय

एक बात प्रारम्भमे ही स्पष्ट कर दें कि पुस्तकके शीर्षकका सम्बन्ध स्कूली पाठ्यक्रमोमे आनेवाले 'पदार्थ विज्ञान' (फिज़िक्स) से नही है। फिज़िक्सकी सीमाओका अतिक्रमण करके यह पुस्तक पदार्थके उन पक्षो और रहस्योका उद्घाटन करती है जो वास्तवमे पदार्थको एक ओर 'फिज़िक्स' या आधुनिक भौतिक विज्ञानसे जोड़ते है तो दूसरी ओर उसे व्यावहारिक 'दर्शन' से, सचेतनाको जागृत करनेवाले धर्मसे और गूढ रहस्योके उस व्यापक संसारसे जहाँ सब कुछ ज्ञान-ज्ञेयकी सत्तामे एकात्मक होकर 'अध्यात्मिक' बन जाता है। सच बात तो यह है कि विज्ञानके पाठोमे पढाये जानेवाला 'पदार्थ विज्ञान' अभी तक न तो पदार्थको पूर्णत. परि-भाषित कर पाया है और न ही विज्ञानको। भौतिक विज्ञान किसी वस्तुका कितना ही गहन सूक्ष्म अध्ययन क्यो न प्रस्तुत कर दे, अध्यात्मकी दृष्टिमे वह अपूर्ण और बहुत स्थूल ही होता है। स्पष्ट यह है कि भौतिक विज्ञानका विषय इन्द्रिय-प्रत्यक्ष होता है, अत. उसकी अपनी सीमाएँ हैं। इसके विपरीत अध्यात्म-विज्ञानका क्षेत्र व्यापक है। उसमे न केवल मूर्त पदार्थोकी अपितु अमूर्त पदार्थोके विश्लेषण करनेकी भी क्षमता होती है। इसके पीछे व्यक्तिकी तप.साधना और उससे उपलब्ध रूप-ज्ञानकी निर्मलता प्रमुख कारण है। हमारे ऋषि मुनियोने इस विशेष दृष्टिको आत्म-सात् कर जीव और जगत् की सचाईको जाना और उनके सम्बन्ध-मे सिद्धान्तोकी प्रतिष्ठा कर वस्तुके हेय-उपादेय रूप धर्मकी आधार-शिला रखी।

जैनदर्शनकी मान्यता है कि पदार्थ छह हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। यहाँ धर्म-अधर्म जैनदर्शनके ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं जो पुण्य-पापसे भिन्न अर्थ-बोधक है। जैन-दर्शनमे पदार्थ विज्ञानका यह विषय जितना गूढ है उतना ही स्पष्ट और महत्वपूर्ण भी है। अनेक जैन आचार्योने दर्शन ग्रन्थोमे इस विषयपर सविस्तार प्रकाश डाला है। कुछ महान् ग्रन्थ तो मात्र इसी विषयका निरूपण करनेके उद्देश्यसे लिखे गये है।

भारतीय ज्ञानपीठने जहाँ प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत जैन-धर्म-दर्शनके सिद्धान्त-ग्रन्थोका प्रकाशन किया है वहाँ यह जैनधर्म-दर्शनका लोकोपयोगी साहित्य भी समय-समय पर प्रकाशित कर समाजके हाथो समर्पित करती आ रही है। प्रस्तुत पुस्तक 'पदार्थ विज्ञान' भी इसी शृंखलाकी एक नयी कडी है। इसे जैनधर्म-दर्शनके गहन अध्येता ब्र. श्री जिनेन्द्र वर्णीने जनसाधारणको एवं छात्र-बुद्धि को ध्यानमे रखकर लिखा है। उनकी इस पुस्तककी विशेषता यह है कि इसमे उन्होने एक आधुनिक वैज्ञानिककी दृष्टिको सन्तकी दार्शनिक दृष्टिसे सपृक्त करके पदार्थ-विज्ञानके रहस्योको, अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदिकी प्रकृतिको बहुत ही सरल, बोधगम्य भाषामे प्रतिपादित किया है। सरलताके साथ सरसता और अध्ययन-मननक समय चेतना-शक्तिकी निकटता बनी रहे—इस विचारसे उन्होने विषयका विवेचन उपदेशात्मक शैलीमे प्रस्तुत करना उचित समझा। हमने भी उनकी इस विषय दृष्टिका आदर कर शैलीमे सशोधनादि करना आवश्यक नही समझा। हृदय तक पहुँचे, यही उद्देश्य है।

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

भूमिका

यो तो जीवन सभी जी लेते हैं किन्तु जीवनके अन्त तक हर कोई यह नही जान पाता कि आखिर जीवन क्या है, उसका रहस्य, उसकी सचाई क्या है। हमारी सस्कृतिमे जीवन और धर्म की एकसाथ व्यवस्था की गयी है। अतः धर्मके स्वरूपको हम जानें इससे पहले हमे यह जान लेना बहुत आवश्यक है कि यह जीवन और जगत् क्या है।

यह जीवन दो प्रकारसे देखने, अनुभव करनेमे आता है—एक बाह्य जीवन और दूसरा अन्तस्का जीवन। बाह्य जीवन शरीर है तथा इन्द्रियोसे प्रत्यक्ष दिखाई देनेके कारण इसे सब जानते है, इस पर विश्वास करते है। अन्तस्का जीवन इन्द्रियोसे प्रत्यक्ष दिखाई न देनेके कारण उसे जान लेना प्रत्येकके वशकी बात नही है और न ही उसपर सहजमे विश्वास हो पाता है। यही कारण है कि बाह्य जीवनकी सुविधा तथा सरक्षणके लिए प्रायः सभी नित्य उद्यम करते है, किन्तु अन्तस्के जीवनकी सुविधा और सरक्षणका उद्यम हर किसीको उदित नही होता है।

अन्त और बाह्य जीवन केवल अन्त करण तथा शरीर तक ही सीमित हो—ऐसी भी बात नही है। इनको और भी अधिक सूक्ष्मतासे समझा जाय, चिन्तनमे लाया जाय तो बडे-बडे रहस्य प्रगट होते हैं। स्पष्ट है कि अन्तस्का सम्बन्ध चेतनसे है जो एक अत्यन्त गूढ तत्त्व है, तथा शरीरका सम्बन्ध इस बाह्य जगत् या समस्त विश्वसे है जो अत्यन्त विस्तृत, व्यापक और विचित्र है। गूढ होनेके कारण चेतनको तथा व्याप्त एव विचित्र होनेके कारण विश्वको जान लेना भी इन्द्रियोकी सामर्थ्यके बाहर है। जन-

साधारण इन दोनोको ठीक-ठीक प्रकारसे न तो जान पाता है और न ही देख पाता है।

कुछ लोगोका ऐसा विश्वास है कि आजका विज्ञान विश्वको उन तपस्वी ऋषि-मुनियोंसे कही अधिक जानता है, जिन्होंने पूर्वकालमे अपने सात्त्विक आचरणसे और धर्म-कर्मके उपदेशोंसे समाजका मार्गदर्शन किया है। लेकिन वस्तु-स्थितिका अवलोकन करनेपर यह बात तथ्यपूर्ण नही रह जाती। यह ठीक है कि आजका विज्ञान बहुत कुछ जानता है परन्तु उसका वह सारा ज्ञान अभी अत्यन्त सीमित है। यह बात तबतक समझमे नही आ पायेगी जबतक कि उसपर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार नही कर लिया जाता। सच तो यह है कि आजके विज्ञानकी दृष्टि अत्यन्त स्थूल है। यह केवल विश्वको बाहरसे ही पढनेमे समर्थ है। इसके अन्तस्तलमे प्रवेश कर उस गहनतम सूक्ष्म तत्त्वको खोज निकालना निश्चित ही इसकी सामर्थ्यसे परे है।

उपर्युक्त बात को ध्यानमे रखते हुए मुझे यह आवश्यक लगा कि जैनदर्शनके सिद्धान्तोके आधारपर जीवादि पदार्थोंके स्वरूपका विवेचन कर जीवन और जगत् की उन सूक्ष्म गहनताओ की और गूढ रहस्योकी सामान्य जानकारी प्रस्तुत की जाय। प्रस्तुत पुस्तक-लेखनका मेरा एक-मात्र यही प्रयोजन है।

विवेचनकी शैली प्रवचनकी रखी गयी है जिससे साधारण पाठक या श्रोता को भी यह विषय सहज बोधगम्य बन सके। छात्रोके लिए भी यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

—जिनेन्द्र वर्णी

भाद्रपद कृष्णा २ सवत २०३३
११ अगस्त, १९७६।

दो शब्द

'पदार्थ विज्ञान' का प्रथम संस्करण सन् १९७७ मे भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित हुआ था। जन-प्रियताके कारण वह तुरत बिककर समाप्त हो गया, परन्तु स्वाध्याय प्रेमियोकी माँग समाप्त होनेकी बजाय बढती चली गयी। भारतीय ज्ञानपीठके निदेशक श्री लक्ष्मी चन्दजी जैनके हम हृदयसे आभारी है कि हमारी प्रार्थना पर प्रकाशनका अधिकार देकर उन्होने इस सस्थाको इसका यह द्वितीय सस्करण प्रकाशित करनेके लिए अवसर प्रदान किया है; और साथमे भोपालकी जैन समाजका भी जिसने ५०००) की अग्रिम राशि प्रदान करके इसे आर्थिक सहयोग दिया है।

कवर पर अकित सैद्धान्तिक रहस्य वाला चित्र परम पूज्य श्री वर्णीजी महाराजने स्वय अपने हाथसे तैयार किया है, जिसमे बड़ी कुशलतासे जैन-मान्य षट् द्रव्योका निदर्शन करके पुस्तकके पूरे प्रतिपाद्यका विवेचन प्रस्तुत कर दिया गया है। इस चित्रमे पूरा पृष्ठ आकाश द्रव्यका और उसके मध्य पुरुषाकृति लोकाकाश-का प्रदर्शन करती है। धर्म अधर्म द्रव्य इसके साथ तन्मय पड़े हैं। किरणावलीसे युक्त ॐ कार सर्व गत चित्प्रकाशसे उपलक्षित जीव द्रव्यका निदर्शन करता है। इसी प्रकार गतिमान अणु पुद्गल द्रव्यकी और श्रेणीबद्ध बिन्दुओकी पक्तियें कालणुओकी सत्ताका द्योतन करती प्रतीत हो रही हैं। स्वाध्याय प्रेमी इसे ध्यान-से देखें और जैन दर्शनके वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी जितनी प्रशसा कर सकें करें।

नरेन्द्र कुमार जैन

विषय-सूची

पदार्थ विज्ञान

●

जिनेन्द्र वर्णी

१

धर्म क्या है

अहा हा ! धर्म ! 'धर्म कितनी सुन्दर वस्तु है', यह बात भले ही आजका जगत् भूल गया हो, पर यह कैसे भूल सकता है कि जीवन भी कोई चीज है। जीवनका सार सुख एवं शान्ति है। इसका कारण वास्तवमे यही है कि सुख एवं शान्ति ही जीवनका स्वभाव है, जिस प्रकार कि जलका स्वभाव शीतल होता है। भले ही अग्निके सयोगके कारण वह गरम हो गया हो परन्तु उसका स्वभाव फिर भी शीतल ही रहता है। यह बात इस प्रकार जानी जाती है कि यदि अग्निको हटा दिया जाये तो वह शीतल ही होनेका प्रयत्न करता है, उष्ण रहना नही चाहता। शीतलताकी ओर झुकनेका यह उसका स्वतन्त्र प्रयत्न ही उसके शीतल स्वभावको दर्शाता है। इसी प्रकार जीवन भले ही धन, कुटुम्ब आदिके सयोगको प्राप्त होकर वर्तमानमे दुखी व चिन्तित हो रहा हो, परन्तु उसका अन्तरंग प्रयत्न सुखी व शान्त होनेका ही रहता है। जीवनका यह स्वतन्त्र प्रयत्न ही दर्शाता है कि उसका स्वभाव दुःख व चिन्ता नही बल्कि सुख व शान्ति है। जीवनके इस स्वभावका नाम ही धर्म है। ऐसा जानकर भी कौन धर्मसे विमुख होगा।

सुख व शान्तिका सम्बन्ध जीवनसे है। उस जीवनके दो रूप हैं—एक बाह्य और दूसरा अन्तरंग। बाह्य रूप शरीर है और अन्तरग रूप अन्त करण या मन। इसीलिए सुख भी दो प्रकारका

है—शारीरिक व मानसिक। सुखके साधन भी दो प्रकारके हैं—शारीरिक व मानसिक। व्यापार व कार्य तथा कर्तव्य-अकर्तव्य भी दो प्रकारके हैं—शारीरिक व मानसिक। स्वभाव या धर्म भी दो प्रकारके हैं—शारीरिक व मानसिक। शरीर बाहरमे दिखाई देता है और इसके सुखको, सुखके साधनको तथा तत्सम्बन्धी व्यापार व कार्योंको हम जानते हैं। परन्तु मन दिखाई नही देता इसलिए उसके सुखको, सुखके साधनोको तथा तत्सम्बन्धी व्यापार व कार्योंको हम नही जानते। शरीरके धर्म व अधर्म है स्वास्थ्य व रोग, उन्हे तो हम जानते हैं और इसलिए देहकी रक्षाके लिए सदा उसके धर्मको ही अपनाते हैं अधर्मको नही। परन्तु मनका धर्म जो सुख व शान्ति है उसको हम नही जानते, इसलिए उसकी परवाह भी नही करते। शरीरकी भाँति वह भी कुछ है, ऐसा जानकर उसके स्वास्थ्यके लिए भी कुछ करना ही धर्म है।

सुख व शान्तिका आधार आपके मन, वचन व काय हैं। ये तीनो ही हर समय कुछ न कुछ काम करते रहते है। कर्तव्य व अकर्तव्यका ठीक-ठीक प्रकार निर्णय न होनेके कारण, आप विवेक-शून्य बने अपनी मर्जीसे कुछ भी कर बैठते हैं और उसका फल पाकर दुखी व सुखी होते रहते हैं। यदि आपका काम ठीक हुआ तो उसका फल सुख होता है और यदि वह ठीक नही हुआ तो उसका फल दु:ख होता है, जैसे कि क्रोधके आवेशमे किसीके मारने-पीटने या लड़ने-झगड़नेसे यद्यपि उस समय आपको पता न चले तदपि पीछेसे उसका फल व्याकुलता व चिन्ता ही होता है, परन्तु प्रेममे भीगकर किसीकी सहायता आदि करनेसे उस समय भी सुख महसूस होता है और पीछे भी। बस हम कह सकते हैं कि करने योग्य कार्यके करनेका फल सुख और न करने योग्य कार्यके करनेका फल दु ख होता है। इसे ही कर्तव्य-अकर्तव्यका विवेक कहते हैं।

सुख-स्वभावसे इसका सम्बन्ध होनेके कारण यह कर्तव्यका विवेक भी धर्म कहलाता है।

कर्तव्य-अकर्तव्यका नाम कर्म है और उस कर्मके फलस्वरूप होनेवाला सुख व दु.ख कर्मफल कहलाता है। इसलिए धर्मका सम्बन्ध कर्म व कर्मफलसे भी है। अत धर्म सम्बन्धी प्रकरणमे हमे तीन बातें जाननी अत्यन्त आवश्यक है—हमारा स्वभाव क्या है, हमारा कर्तव्य क्या है और किस कर्मका क्या फल होता है। ये तीनो ही जानने योग्य है, इसलिए तीनो ही विज्ञान हैं। यही कारण है कि धर्म भी एक विज्ञान है।

इन तीनो ही विज्ञानोका पृथक्-पृथक् लम्बा विस्तार है अत. तीनोके लिए पृथक्-पृथक् पुस्तकें बनायी गयी है ताकि पाठकगण धैर्यपूर्वक तीनोका पृथक् २ परिचय प्राप्त कर सकें। स्वभावका सम्बन्ध वस्तुसे है क्योकि स्वभाव किसी न किसी पदार्थका ही होता है। इसलिए प्रथम विषयको समझानेके लिए यहाँ 'पदार्थ-विज्ञान' पढनेकी आवश्यकता है। कर्तव्य-अकर्तव्यका सम्बन्ध मन, वचन तथा कायकी प्रवृत्तिसे है अतः उसे जाननेके लिए धर्म-प्रवृत्ति (शान्तिपथ प्रदर्शन) का तथा कर्म व कर्मफल जाननेके लिए 'कर्म सिद्धान्त' का पढना आवश्यक है। इन तीनो विज्ञानोके लिए पृथक् पृथक् तीन पुस्तकें लिखी गयी हैं—पदार्थ-विज्ञान, शान्तिपथ प्रदर्शन तथा कर्म सिद्धान्त। यहां पदार्थ-विज्ञानका प्रकरण है।

२

पदार्थ सामान्य

•

१. विश्व के विश्लेषणकी आवश्यकता, २. विश्व क्या है, ३ पदार्थ क्या है, ४. सत् क्या है, ५. परिवर्तन क्या है, ६. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, ७. नित्य तथा अनित्य स्वभाव, ८ पदार्थ गुणोका समूह है, ९. गुण भी परिवर्तनशील है, १० पदार्थ गुण व पर्यायोंका समूह है, ११ पर्याय ही दृष्ट तथा अनुभूत हैं, १२. सत्‌की खोज।

१ विश्वके विश्लेषणकी आवश्यकता

भो विश्वकी विचित्र लीलाओमे विलास करनेवाले चेतन! जलकी खोजमे भटकते हुए तृषातुर मृगवत् धन सम्पत्ति आदि भौतिक आकर्षणोकी चमकसे अन्धा हुआ, बराबर इधर-उधर भटकता रहा। परन्तु जिस प्रकार भटक-भटककर भी मृग-मरीचिकाके असीम सागरमे मृगको जलकी बजाय सन्ताप ही मिलता है, उसी प्रकार तुझे भी यहाँ शान्तिकी बजाय सन्ताप ही मिला है। तू धनके पीछे कर्तव्य-अकर्तव्य तथा हित-अहित सब कुछ भुलाकर स्वार्थी बन गया। आज तू धर्म करने चला है, यह तेरा सौभाग्य है, परन्तु धर्म करनेसे पहले इतना तो भान तुझे होना ही चाहिये कि जिस विश्वमे तुझे रहना है या वर्तन करना है, जिस विश्वमे वर्तन करनेके लिए कर्तव्य-अकर्तव्यका तथा हित-अहितका निर्णय तुझे करना है, वह विश्व आखिर क्या है, तथा उसका स्वभाव क्या है?

हमने तुझे बताया है कि धर्म एक विज्ञान है, अतः प्रारम्भसे ही हम वैज्ञानिक पद्धतिसे तुझे सब कुछ समझायेंगे। एक वैज्ञानिक कोई भी आविष्कार करनेसे पहले किन्ही पदार्थ-विशेषोके स्वभावका गहनताके साथ अध्ययन करता है। पदार्थकी गहराईमें उतरनेके लिए वह उसका अधिक से अधिक विश्लेषण (analysis) कर डालता है, अर्थात् बुद्धिमे ही उसके खण्ड-खण्ड करके उसमे पायी जानेवाली अनेको शक्तियो तथा स्वभावोकी खोज करता है। तब पीछे अनेक वस्तुओको जोड-तोडकर विचित्र-विचित्र पदार्थोंका आविष्कार करनेमे सफल होता है। उसीप्रकार तुझे भी करना है। जिस विश्वमे तू रह रहा है वह क्या है, जो कुछ भी पसारा यहाँ दिखाई दे रहा है तथा जो कुछ भी यहाँ नित्य तेरे प्रयोग व व्यवहारमे आ रहा है वह क्या है, यह सब कुछ जाने बिना तू धर्मका आविष्कार न कर सकेगा, क्योकि विश्वके इस सर्व दृश्य पसारेके जोड़-तोडमे ही तेरे कर्तव्य व अकर्तव्यका आविष्कार छिपा हुआ है।

ओ ओ! पहले इस विश्वका विश्लेषण कर लें, फिर पीछेसे कर्तव्य अकर्तव्यका निर्णय करेंगे। परन्तु यह बात ध्यानमे रखनी है कि काम आसान नही है। विषय विस्तृत हो जायेगा। इसलिए अरुचि करके इसे बीचमें ही न छोड बैठिए। कदाचित् ऐसा समझने लगें कि धर्म सम्बन्धी इस प्रकरणमे, पृथिवी व चाँद सितारोंकी या कीड़े-मकोड़ोकी गणना करनेसे क्या लाभ। ऐसी बुद्धिको प्रवेश न होने दीजिए, क्योकि इसका रहस्य तुम्हे आगे जाकर पता चलेगा। इस पुस्तकमे किसी भी विषयको समझाते हुए दोनो बातो पर दृष्टि रखी गयी है—विषय भी समझ जायें और शास्त्र समझनेकी योग्यता भी उत्पन्न हो जाये। विषयको समझनेके प्रयोजनसे पुस्तकमे आधुनिक तथा सरल भाषाका प्रयोग किया गया है, जो कि एक बच्चा भी समझ सकता है, क्योकि यह आपकी अपनी

नित्य बोली जानेवाली भाषा है। साथ-साथ आगे जाकर आप शास्त्र भी पढकर उसे समझ सकें, इस प्रयोजनकी सिद्धिके अर्थ, प्रत्येक विषयकी व्याख्या करते हुए सैद्धान्तिक शब्दोंके अर्थ भी बता दिये गए है।

२. विश्व क्या है

"यह विश्व क्या है", यह सवप्रथम प्रश्न है। हे चेतन ! बता तो सही कि तू विश्व या दुनिया किसे कहता है? क्या इस सर्वव्यापी आकाशको, या वायुमण्डलको, इन वनो व पर्वतोको या नदियो व सागरोको, इस पृथिवी मण्डलको या चन्द्र-सूर्य आदिको, मनुष्य समाजको या पशु-पक्षियोको, ईंट-पत्थरोको या सोने-चांदीको, मशीनो व हथियारोको या कागजोकी फाइलोको? आखिर इन सबमे विश्व कौन है या इन सबसे रहित वह विश्व क्या है? बस हो गया उत्तर। विचारनेसे पता चलता है कि इन सबसे पृथक् विश्व नामका कोई अन्य पदार्थ हो, ऐसा नहीं है। इन सबका तथा इनके अतिरिक्त जो कुछ भी यहाँ दिखाई दे रहा है या प्रतीति व अनुमानमे आ रहा है उस सबके समूहका नाम ही विश्व है। इसीको यो कह लीजिए कि पदार्थोंके समूहका नाम विश्व है।

३. पदार्थ क्या है ?

अब प्रश्न होता है कि पदार्थ क्या? इसके लिए अधिक मगज मारनेकी आवश्यकता नही, क्योकि जो कुछ भी यहाँ दिखाई दे रहा है या हमारे काममे आ रहा है, उस सबको वस्तु या पदार्थ कहनेका व्यवहार लोकमे प्रचलित है। पदार्थ कहो, वस्तु कहो, द्रव्य कहो एक ही अर्थ है। इस परसे हम कह सकते हैं कि जो कुछ भी दिखाई देता है या जो कुछ भी यहाँ है वही पदार्थ है। इसीको सैद्धान्तिक भाषामे कहना हो तो यो कह सकते हैं कि जो

सत्ता रखता है अर्थात् जो exist करता है, या जो सत् है वही पदार्थ या वस्तु या द्रव्य है।

४. सत् क्या है ?

अब प्रश्न होता है कि सत् क्या ? भैया! चारों ओर दृष्टि दौडाकर देख और तनिक सूक्ष्मतासे विचार कि जो कुछ तुझे यहाँ दिखाई दे रहा है, उस सबका मूल स्वभाव क्या है, क्योकि जो दिखाई दे रहा है वही सत् है, ऐसा पहले कह दिया गया है। अत: जो दृष्ट पदार्थोंका स्वभाव है वह सत्का ही स्वभाव है ऐसा जान।

तू प्रत्यक्ष देख रहा है कि यहाँ हर वस्तु या पदार्थ परिवर्तन-शील व क्रियाशील है। परिवर्तन करनेका अर्थ है पदार्थके अपने भीतर ही कुछ विचित्रताओका होना अर्थात् पदार्थके अपने ही गुणोका बदल जाना, जैसे आम्रफलमे कच्चेसे पक्का हो जानेपर उसका रग भी हरेसे पीला हो जाता है, उसका स्वाद भी खट्टेसे मीठा हो जाता है, उसकी गन्ध भी बदल जाती है और उसका स्पर्श भी कठोरसे नरम हो जाता है अर्थात् उसके सारे गुण ही बदल जाते हैं। अथवा तू स्वय बालकसे युवा तथा युवासे वृद्ध हो जाता है। क्रियाका अर्थ है गमन करना या एक स्थानसे सरककर दूसरे स्थानपर पहुँच जाना, जैसे कि यह पुस्तक यहाँसे उठाकर वहाँ रख दी गयी, वायु के झोकेसे यह पत्ता उडकर यहाँसे वहाँ चला गया, अथवा वायु नित्य गतिमान है और जल नित्य प्रवाहशील है।

परिवर्तन व क्रिया ये दो बातें प्रत्येक द्रव्यमे दिखाई दे रही हैं, अर्थात् प्रत्येक पदार्थ अपने रूप व स्थान बदल रहा है, और इसी-लिए उसका समूह जो यह विश्व है वह भी बराबर परिर्वतन तथा

क्रियाशील बना हुआ है। यही इस विश्वकी सुन्दरता है। जरा कल्पना तो कर कि यहाँका प्रत्येक पदार्थ आकाशमें चित्रलिखितवत् टिका होता, तू जहाँ खडा है वहाँ ही खड़ा होता, यह नदी ज्यो की त्यो स्तम्भित होती, और ये वृक्ष भी विना हिले डुले कूटस्थ खडे होते, तो कौन इन पदार्थोंका प्रयोग करता, कौन आज इनका निर्णय करने बैठता, किसका क्या कर्तव्य-अकर्तव्य होता और किसे धर्म-अधर्म कहते ? विश्व तथा इसके पदार्थ क्योकि परिवर्तन तथा क्रियाशील हैं इसीलिए कुछ करने-धरने की बुद्धि होती है। जहाँ ऐसी बुद्धिहोती हैवहाँ ही कर्तव्य-अकर्तव्यका प्रश्न होता है, वहाँ ही धर्म-अधर्मकी सत्ता होती है।

इससर्व कथनपर से यह सिद्धान्त निकला कि पदार्थोंके समूह-को विश्व कहते हैं। पदार्थ क्योकि हैं इसलिए उन्हे सत् कहते हैं। पदार्थ क्योकि परिवर्तन तथा क्रियाशील है इसलिए सत् भी परि-वर्तन तथा क्रियाशील है। अतः सैद्धान्तिक भाषामे हम सत्का लक्षण ऐसा कर सकते है कि जो परिवर्तन तथा क्रियाशील है वह सत् है।

५ परिवर्तन क्या है ?

परिवर्तन व क्रिया दो शब्दोका प्रयोग पहले किया गया। वास्तवमे दोनो ही परिर्वतन हैं। एक परिवर्तन गुणो तथा रूपोका और दूसरा परिवर्तन है स्थानका। अतः कथन क्रमको सरल करनेके लिए दो शब्दोका प्रयोग करनेकी बजाय एक परिवर्तन शब्दका प्रयोग ही पर्याप्त है।

वैज्ञानिक लोगोकी दृष्टि साधारण लोगोकी भाँति वस्तुके केवल बाह्य रूपको ही देखकर सन्तुष्ट नही हो जाया करती। वह तो उसकी सूक्ष्मताओमे प्रवेश पाकर सूक्ष्मसे सूक्ष्म सिद्धान्तका

निर्धारण करती है जो कभी भी बाधित न होने पावे। अत तुझे भी पदार्थकी परिवर्तनशीलता केवल वाहरसे ही देखकर सन्तुष्ट नही हो जाना चाहिए, बल्कि इसके पीछे छिपे हुए एक सूक्ष्म सिद्धान्तको खोज निकालना चाहिए।

स्थूल दृष्टिसे देखनेपर हमे कुछ पदार्थ तो परिवर्तनशील दिखाई देते हैं, जैसा कि ऊपर दृष्टान्तोमे बताया गया है, परन्तु कुछ पदार्थ ऐसे भी है जो बदलते हुए दिखाई नही देते जैसे कि पाषाण या धातुकी यह प्रतिमा। परन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर वास्तवमे ऐसा नही है। प्रत्येक पदार्थ ही बदल रहा है। यह बात अवश्य है है कि कोई पदार्थ अल्प समयमे बदल जाता है और कोई अधिक समयमे। अल्प समयमे बदलनेवाले आम्रफल आदि पदार्थोंका परिवर्तन तो स्थूलदृष्टिमे आ जाता है, परन्तु अधिक समयमे बदलनेवाले प्रतिमा स्तम्भ आदि पदार्थोंका परिवर्तन स्थूलदृष्टिकी पकडमे नही आता। इसका यह अर्थ नही कि वह पदार्थ बदलता ही न हो, क्योकि कुछ सैकडो वर्ष बीत जानेपर यह प्रतिमा तथा स्तम्भ भी जीर्ण होता हुआ देखा जाता है। जीर्ण होनेके साथ-साथ इसका आजवाला यह अत्यन्त उज्ज्वल रग भी बदलकर कुछ पीला पड़ जाता है। अत यह सिद्धान्त अटल है कि प्रत्येक पदार्थ बदलता अवश्य है।

रूप तथा स्थान-परिवर्तनमे-से स्थान-परिवर्तन या गमनागमनके लिए तो यह आवश्यक नही कि पदार्थ हर समय गतिमान रहे। कभी चलते भी हैं और कभी ठहरते भी हैं। परन्तु रूप-परिवर्तन ऐसा है जो प्रतिक्षण हुआ करता है, कभी भी रुकता नही। पदार्थमे प्रतिक्षण क्या परिवर्तन हो जाता है यह बात स्थूल दृष्टिमे नहीं आती, परन्तु एक वैज्ञानिककी विचारशील दृष्टि इसको अवश्य देखती है। यह रहस्य आँखोंसे नही, विचार व तर्कसे देखा जाता

है। देखो आज सवेरे आपने शेव की और शामको जाकर पुनः कुछ-कुछ बाल मुँहपर प्रकट हुए। मै पूछता हूँ कि क्या १० घण्टोंके पश्चात् वे बाल एकदम बाहर निकल आये या सवेरेसे ही धीरे-धीरे बढते जा रहे थे ? उत्तर स्पष्ट है कि एकदम बढने असम्भव है, ये तो उस समयसे ही बढते जा रहे हैं जबकि सेफ्टीरेजर उस स्थानसे हटा था। उसी प्रकार यद्यपि यह वस्त्र छह महीने पीछे जीर्ण हुआ है परन्तु वास्तवमे उसी समयसे जीर्ण होता चला आ रहा है जबसे कि मशीनपरसे बनकर उतरा है। इसी प्रकार आप ६० वर्षमे बालकसे वृद्ध हुए परन्तु वास्तवमे प्रतिदिन ही नही प्रतिक्षण आप बराबर वृद्ध होते चले जा रहे है। इसी प्रकार यह स्तम्भ हजार वर्ष पश्चात् जीर्ण हुआ, परन्तु वास्तवमे जिस समयसे कारीगरने इसे बनाकर छोडा है उसी समय से प्रतिक्षण जीर्ण होता चला जा रहा है। इस प्रकार जो परिवर्तन हमको स्थूल दृष्टिसे दिखाई देता है वह असख्य तथा अनन्त क्षणिक सूक्ष्म परिवर्तनोका समूह है।

प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण बदलता है यही परिवर्तन शब्दका अर्थ है और यही पदार्थका स्वभाव है। इसी प्रकार विश्वका भी स्वभाव यही है, क्योंकि विश्व पदार्थोंका समूह है अन्य कुछ नही।

६ उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वभाव

पदार्थोंके इस परिवर्तनको और भी सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर एक और भी महान् सिद्धान्त की सिद्धि होती है। जो कि व्यक्तिके जन्म व मरणका तथा विश्वकी उत्पत्ति व प्रलयका मूल आधार है। देखिए पहली अवस्था या रूपको छोडकर नयी अवस्था या रूप बन जाना यही तो परिवर्तन है, इसके अतिरिक्त और क्या ? छूटनेका नाम है उस अवस्थाका विनाश और बननेका नाम है

उत्पत्ति। आमका कच्चेसे पक्का होना, इसमे कच्चेपनका विनाश हुआ और पक्केपनकी उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार आपका बालकसे वृद्ध होना। इसमे बालकपनका नाश हुआ और वृद्धपने की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार स्तम्भके जीर्ण हो जानेमे उसके पहले रूप व आकार का विनाश हुआ और नया रूप व आकार उत्पन्न हुआ। इसीको हम सैद्धान्तिक भाषामे इस प्रकार कह सकते है कि पुरानी अवस्थाका विनाश और नयी अवस्थाकी उत्पत्तिका नाम ही परिवर्तन है।

अब प्रश्न होता है कि यह उत्पत्ति व विनाश क्या आगे-पीछे होता है? नही, जिस समय पहली अवस्थाका विनाश होता है उसी समय अगली अवस्थाकी उत्पत्ति होती है। या यो कह लीजिए कि पहली अवस्थाके विनाशका नाम ही नयी अवस्थाकी उत्पत्ति है और नयी अवस्थाकी उत्पत्ति ही पहली अवस्थाका विनाश है। जैसे अन्धकारका विनाश ही प्रकाशकी उत्पत्ति है और प्रकाशकी उत्पत्ति ही अन्धकारका विनाश है। अथवा आममे कच्चेपनका नाश ही पक्केपनकी उत्पत्ति है और पक्केपनकी उत्पत्ति ही कच्चेपनका विनाश है। इस प्रकार पहली अवस्थाका विनाश तथा अगली अवस्थाकी उत्पत्ति युगपत् एक ही समयमे होती है। अतः कह सकते हैं कि एक ही समयमे पुरानी अवस्थाका विनाश और नयी अवस्था की उत्पत्ति होनेका नाम ही परिवर्तन है।

यहाँ भी इतना ध्यानम रखना चाहिए कि दो अवस्थायें कभी भी एक साथ नही रह सकती। आमका कच्चापन व पक्कापन दोनो एक साथ नही रह सकते। बालकपन व बूढापन दोनो एक साथ नही रह सकते। अत कह सकते है कि एक समय एक ही अवस्था रह सकती है दो नही। अवस्थाको आगममे 'पर्याय' कहते हैं।

आगे पीछे उत्पन्न हो होकर विलीन होनेवाली ये अवस्थायें या पर्यायें ही पदार्थ नही है, यह भी समझ लेना चाहिए। हमारे सामने अब दो बातें आ गयी है—पदार्थ तथा उसकी पर्याय। आम एक पदार्थ है और कच्चा व पक्कापन उसकी अवस्थायें या पर्यायें, अथवा आप एक पदार्थ है और बालक व बूढापन आपकी अवस्थायें या पर्यायें, सुवर्ण एक पदार्थ है और कडा व कुण्डल आदि उसकी अवस्थायें या पर्यायें। पदार्थ और उसकी पर्याय इन दोनोमे इतना ही भेद है कि पदाथ ज्यो का त्यो रहता है और अवस्था या पर्याय बदल जाती है। आम ज्यो का त्यो है और उसकी अवस्था या पर्याय बदल गयी है। आप ज्यो के त्यो हैं पर आपकी अवस्था या पर्याय बदल गयी है। ज्योंके त्यो रहनेको आगम भाषामे ध्रुव रहना कहा जाता है। इस प्रकार अवस्थाये या पर्यायें उत्पत्ति व विनाशवाली है और पदार्थ ध्रुव है।

अब देखना यह है कि पर्याय तथा पदार्थ ये दोनो क्या पृथक्-पृथक् कोई दो वस्तुयें हैं? नही, ये दोनों वास्तवमे एक ही हैं, क्योकि पर्याय पदार्थ की ही होती है। पर्यायके बिना पदार्थ और पदार्थके बिना पर्याय नही रहती। जहाँ पदार्थ है वहाँ पर्याय अवश्य है और जहा पर्याय है वहा पदार्थ अवश्य है। बिना कच्चे व पक्के-पनेके आम नही और बिना आमके कच्चा व पक्कापन नही। बिना बालक व बूढेपनेके आप नही और बिना आपके बालक व बूढापना नही। बिना कडे कुण्डल या फासा डली आदिके सुवर्ण नही और बिना सुवर्णके कड़ा कुण्डल तथा फासा डली आदि नही। इस प्रकार भले ही समझानेके लिए पदार्थ व पर्याय ऐसे दो नाम लिए हो परन्तु वास्तवमे दोनो एक है।

पदार्थ व पर्याय इन दोनो बातोमे मूलभूत पदार्थ ध्रुव अर्थात् ज्यो का त्यो रहता है और पर्याय बदल जाती है अर्थात् उत्पन्न

होकर नष्ट हो जाती है। इस प्रकार एक ही पदार्थमे एक ही समय तीन बातें दिखाई देती है—उत्पत्ति, विनाश व ध्रुवता। नयी पर्यायकी उत्पत्ति, पुरानी पर्यायका विनाश और मूलपदार्थकी ध्रुवता। पक्की पर्यायकी उत्पत्ति, कच्ची पर्यायका विनाश और आम पदार्थकी ध्रुवता—ये तीनो एक ही समयमे है। वृद्ध पर्यायकी उत्पत्ति, बालक पर्यायका विनाश और मनुष्य पयार्थकी ध्रुवता ये तीनो एक ही समयमे है। इस प्रकार एक ही पदार्थमे उत्पत्ति, विनाश व ध्रुवता ये तीनो बातें एक ही समयमे है। ऐसा ही पदार्थ या वस्तुका स्वभाव है। सैद्धान्तिक भाषामे इसी बातको इस रूपमे कहा जा सकता है कि पदार्थ उत्पत्ति, विनाश व ध्रुव-स्वभाववाला है, अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वभाववाली ही पदार्थ की सत्ता होती है।

७. नित्य तथा अनित्य-स्वभाव

पदार्थ ध्रुव है और उसकी अवस्थाएँ परिवर्तनशील अर्थात् उत्पत्ति तथा विनाशवाली हैं। परिवर्तन पानेवाली हर अवस्थामे पदार्थका ज्योका त्यो टिका रहना ही उसकी ध्रुवता है। ध्रुव कहो या नित्य कहो एक ही अर्थ है। इसी प्रकार परिवर्तन करना कहो या अनित्य कहो एक ही बात है।

पहले बता दिया गया है कि यद्यपि स्थूल दृष्टिसे देखनेपर पदार्थकी अवस्थाएँ या पर्यायें बहुत-बहुत देरके पश्चात् बदलती दिखाई देती हैं, परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर प्रतिक्षण बदल रही है। यदि प्रतिक्षण बदलनेवाली पर्यायोपर दृष्टि रखकर किसी भी पदार्थको देखा जाये तो वह पदार्थ बडा ही विचित्र दिखाई देने लगेगा। जिस प्रकार कि एक नदीके जलको देखनेपर दो बाते दिखाई देती है—जल और उसकी तरगे व प्रवाह। नदीका जल तरगित व प्रवाहित है। एक तरगके पीछे दूसरी और दूसरीके पीछे तीसरी बराबर

प्रतिक्षण चली आ रही है। इसी प्रकार आम्र फल तथा मनुष्यादि पदार्थोंकी पर्याय-माला भी बराबर तरंगित व प्रवाहित है, अर्थात् बराबर बदलती हुई आगे-आगेको दौड़ी चली जा रही है। एक पर्यायके पीछे दूसरी और दूसरीके पीछे तीसरी बराबर प्रतिक्षण दौडी चली जा रही है। आम प्रतिक्षण कच्चेसे पक्केकी ओर बराबर दौडा चला जा रहा है और आप प्रतिक्षण बालकपनेसे वृद्धपनेकी ओर बराबर दौडे चले जा रहे है। विश्वका प्रत्येक पदार्थ तरंगित व प्रवाहित है। पदार्थकी पर्यायें ही उसकी तरंगें हैं और उन पर्यायोका आगे-आगे दौडना ही प्रवाह है। इस प्रकार पर्यायमालाको देखनेपर पदार्थ अनित्य दिखाई देता है।

परन्तु जिस प्रकार नदीका जल तरंगित व प्रवाहित रहते हुए भी जल ही रहता है बदलकर अग्नि नही हो जाता और आम्रफल तथा मनुष्यादि तरंगित व प्रवाहित रहते हुए भी आम्र तथा मनुष्यादि ही रहते है बदलकर आकाश या पत्थर नही बन जाते, उसी प्रकार जगत्का प्रत्येक पदार्थ तरंगित व प्रवाहित रहते हुए भी वह का वह ही रहता है, बदलकर अन्य नही बन जाता। इस प्रकार से पदार्थको देखनेपर वह वही का वही दिखाई देता है।

इस प्रकार एक ही पदार्थको विभिन्न दृष्टियोसे नित्य तथा अनित्य दोनो प्रकारका देखा जा सकता है। इसलिए हम कह सकते है कि पदार्थ नित्य व अनित्य दोनो स्वभाववाला है; मूलभूत पदार्थ सदा नित्य रहता है परन्तु उसकी अवस्था या पर्याय अनित्य होती है।

इस विश्वपर सूक्ष्मतासे दृष्टि डालनेपर यहाँ हमको कुछ भी नित्य दिखाई नही देता, सभी अनित्य व क्षणिक हैं। प्रत्येक पदार्थ नयेसे पुराना होता हुआ बराबर क्षीणता या विनाशकी ओर दौडा

चला जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति बालक से युवा तथा युवासे वृद्ध होता हुआ बराबर मृत्युकी ओर दौडा चला जा रहा है। एककी जेबका धन बराबर दूसरेकी जेबकी ओर दौडा जा रहा है। यहाँ हमे कुछ भी नित्य दिखाई नही देता। परन्तु वास्तवमे ऐसा नही है। पदार्थ जहाँ अनित्य है वहाँ नित्य भी अवश्य है। इसीलिए पदार्थोंका समूह होनेके कारण यह विश्व जहाँ अनित्य है वहाँ नित्य भी अवश्य है। नित्य दिखाई नही देता यह हमारी दृष्टिका दोष है। हमारी स्थूल दृष्टि पदार्थोंकी तरगोको अर्थात् उसकी पर्यायोको तो देख रही है परन्तु उनके नीचे छिपे हुए मूल पदार्थको नही देख पाती। यदि पदार्थकी तरगोके साथ-साथ मूल पदार्थको भी देख पाती तो अनित्यताके साथ-साथ नित्यता भी अवश्य दिखाई देती।

आपको शका होगी कि ऊपर दृष्टान्तोमे जल, आम्रफल, मनुष्य तथा सुवर्ण आदिको मूल पदार्थ कहकर नित्य बताया गया है। परन्तु इसपर-से आप ऐसा न समझ बैठें कि वे पदार्थ मूलभूत है। भले ही सिद्धान्तको समझानेके लिए दृष्टान्त रूपसे उन्हे मूल पदार्थ कह दिया गया हो, परन्तु मूल पदार्थ तो कोई और ही है जो आगे बताया जायेगा। उसे जानकर ही आपकी शकाका निवारण हो सकेगा। अत. सन्तोष पूर्वक पढते या सुनते चले जायें। यहाँ इतना ही समझ लें कि पदार्थ नित्यानित्य होता है—मूलकी अपेक्षा नित्य और पर्यायोकी अपेक्षा अनित्य ऐसा उभय-स्वभावी है।

८. पदार्थ गुणोंका समूह है

पदार्थोंको अन्य प्रकारसे भी पढा जा सकता है। प्रत्येक पदार्थका विश्लेषण करके देखनेपर पता चलता है कि वह अनेक गुणोंके समूहका भण्डार है। यदि ऐसा न होता तो एक ही पदार्थ

आपके अनेको काम सिद्ध न कर सकता। देखिए, आम्रफल खानेसे आपकी भूख भी मिटती है, आपको स्वादका मजा भी आता है और उसकी गन्धसे आपकी नासिका भी तृप्त होती है। वृक्षपर लटके हुए उसका सुन्दर रूप देखकर आपके मुँहमे पानी भर आता है, और उसको हाथमे लेने पर उसके चिकने, कठोर अथवा नरम आदि स्पर्शोपरसे आप उसके कच्चे पक्केपनका अनुमान भी करते हैं आम यद्यपि एक है, परन्तु उसमे अनेक गुण पाये जाते हैं। उसमे स्पर्श भी है, रस या स्वाद भी है, गन्ध भी है और कोई रूप भी है, तथा इसी प्रकार क्षुधानिवृत्ति आदिक अनेको शक्तियें भी हैं। इसी प्रकार स्वर्णमे भारीपन, पीलापन, चमक दमक आदि अनेको गुण हैं। अग्निमे धधकनापना, प्रकाशकपना, दाहकपना अर्थात् जलानेकी शक्ति, पाचकपना अर्थात् खाना पकानेकी शक्ति, उष्णता आदि अनेको गुण है। आपमे जानना, देखना, सुनना, विचारना, सुख-दु.ख आदि महसूस करना, भागना-दौड़ना, प्रेम करना व क्रोध करना आदि अनेको गुण पाये जाते हैं। इस जगत्के प्रत्येक पदार्थमे एक दो नही एक साथ अनेको गुण पाये जाते हैं, किसी पदार्थमे कुछ और किसी पदार्थमे कुछ। बस इसी परसे हम यह सिद्धान्त निकाल सकते हैं कि पदार्थ गुणोका समूह है।

समूह अनेक प्रकारका होता है। अनाजके दानोंके समूहको बोरीमे भरकर उसको एक अनाजकी बोरी कहते हैं या अनेक लकडियोको बाँधकर उसको एक लकड़ीका गट्ठा कहते हैं। अथवा डाली, फल, फूल व पत्तोके समूहको वृक्ष कहते हैं इत्यादि। परन्तु पदार्थमे जो गुणोका समूह ऊपर कहा गया है वह इस प्रकारवाला नही है। अनाजके दानो के अथवा लकड़ीके गट्ठे के समूहमे तो वे दाने तथा लकड़ियां पृथक्-पृथक् हैं, उन्हे एकत्रित करके, बोरीमे भरकर अथवा बाँधकर एक अनाजकी बोरी या एक लकड़ीका गट्ठा बनाया

गया है । परन्तु पदार्थमे गुण पृथक्-पृथक् वस्तुए नही हैं, जो कि उन्हे एकत्रित करके या किसी वस्तुमे भरकर या बाँध-जोड़कर कोई पदार्थ बनाया गया हो । इसी प्रकार वृक्षमे डाली टहनी पत्ते फल फूल आदि को यद्यपि जोडकर इकट्ठा तो नही किया गया है, परन्तु उन्हे काटकर पृथक्-पृथक् अवश्य किया जा सकता है । इस प्रकारसे पदार्थमे गुणोके समूहको पृथक्-पृथक् भी नही किया जा सकता । वे आम्रफलकी मिठासवत् एकमेक पड़े हैं । केवल बुद्धि द्वारा विश्लेषण करके ही उन्हे पृथक्-पृथक् किया तथा देखा जा सकता है, परन्तु हाथोसे पदार्थके टुकड़े-टुकडे करके उन्हे पृथक् निकाला नही जा सकता । इस प्रकारके गुणोका समूह पदार्थ है । पदार्थमे पाये जाने-वाले तथा जाननेमे आनेवाले स्पर्श, रस, गन्ध, रूप, ज्ञान, सुख, दु ख आदि सब उसके गुण कहलाते है ।

जिस प्रकार 'गुण' पदार्थसे पृथक् कोई स्वतन्त्र वस्तु नही है, इसी प्रकार गुणोसे पृथक् पदार्थ भी कोई स्वतन्त्र वस्तु नही है । कल्पना करो कि आमका हरा पीलापना, उसका कठोर नरमपना तथा उसका खट्टा मीठा स्वाद व गन्ध आदि निकालकर पृथक् कर दिये जायें तो आम नामकी कौन वस्तु शेष रह जायेगी ? इसी प्रकार उष्णता, प्रकाशकत्व, दाहकत्व, पाचकत्व आदि गुणोको निकाल देनेपर अग्नि नामकी कौनसी वस्तु शेष रह जाती है ? कोई भी नही । अत गुण तथा पदार्थ पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र वस्तुए नही हैं बल्कि गुणोका समूह ही एक पदार्थ है, और पदार्थके आश्रय रहनेवाले तथा भिन्न-भिन्न रूपसे प्रतीतिमे आनेवाले ही उसके अनेको गुण हैं । इस प्रकार पदार्थ गुणोका एकमेक रूप है । इसी बातको यो भी कह सकते हैं कि गुण अपने-अपने पदार्थ या द्रव्यके आश्रित ही रहते हैं स्वतन्त्र नही ।

किसी भी पदार्थकी पहचान उसके गुणोको जानकर ही की जा

सकती है अथवा गुणोको बताकर ही करायी जा सकती है, जैसे कि प्रकाशकत्व, दाहकत्व आदिको दूरसे देखकर या किसीके मुखसे सुनकर अग्नि पदार्थका ज्ञान स्वत: हो जाता है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना।

९ गुण भी परिवर्तनशील है

पदार्थकी भांति गुण भी परिवर्तनशील हैं। वास्तवमे जब पदार्थ गुणोसे भिन्न कोई वस्तु है ही नही, तब गुणोसे पृथक् पदार्थका परिवर्तन भी क्या? गुणोके परिवर्तनसे ही पदार्थका परिवर्तन होता है, जैसे कि व्यक्तियोके परिवर्तनसे ही देशका परिवर्तन होता है। आम्रफलका पकना क्या? उसका रग, उसका स्वाद, उसकी गन्ध, उसका स्पर्श, इन सब गुणोका बदल जाना ही तो आमका पकना है या इसके अतिरिक्त कुछ और? इसी प्रकार यह जो कहा जाता है कि अब तो तुम बिलकुल बदल गये, इसका क्या अर्थ? आपकी आयु, आपका स्वभाव आदि जो अनेक गुण है उनका बदलना ही तो आपका बदलना है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना।

पदार्थ बदलनेपर वास्तवमे उसके गुण, उसका स्पर्श, उसका रस, उसकी गन्ध, उसका रग, उसका ज्ञान, उसका स्वभाव आदि ही बदला करते हैं। इस परसे समझ लेना चाहिए कि गुण परिवर्तनशील हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त हैं। खट्टेसे मीठा होकर भी रहा तो स्वाद ही, रहा तो जिह्वा इन्द्रियका विषय ही। खट्टेसे मीठा हो जाना उस रस गुणका बदल जाना है परन्तु रसका रस रूप ही बने रहना, बदलकर अन्य इन्द्रियका विषयभूत रग आदि न बन जाना ही उसकी ध्रुवता या नित्यता है। इसी प्रकार हरेसे पीला हो जाना ही रंग गुणका बदलना है, परन्तु रंगका रंग रूपसे ही बने रहना, बदलकर अन्य इन्द्रियका विषयभूत

स्वाद आदि न बन जाना ही उसकी ध्रुवता या नित्यता है। इस प्रकार गुण भी नित्यानित्य है। अपनी-अपनी अवस्था या पर्याय-मालाको धारण करनेके कारण नित्य तरगित व प्रवाहित है।

१० पदार्थ गुणो व पर्यायोंका समूह है

इस प्रकार देखनेपर पता चलता है कि पदार्थ कितना विचित्र है। वह गुणोका ही नही बल्कि प्रत्येक गुणकी अपनी-अपनी पर्यायोंका भी समूह है। वास्तवमे कहना चाहिए कि पदार्थ गुणो तथा पर्यायोका समूह है। समूहका अर्थ पहले बता दिया गया है, उसी प्रकारका समझना। अर्थात् यहाँ एकमेक रहनेवाले समूहसे तात्पर्य है, पृथक् वस्तुओंके समूहसे नही।

११. पर्याय ही दृष्ट तथा अनुभूत हैं

वास्तवमे देखा जाये तो पदार्थमे न तो पदार्थ दिखाई देता है और न उसके गुण। ये तो सब पर्यायें ही हैं जो कि दिखाई देती हैं या अनुभवमे आती हैं। आपने आम देखा तो बताइए क्या देखा ? मैं आपसे कहूँ कि कच्चा-पक्का तो न देखना पर आम देखना, तो आप ही बताओ कि क्या देखेंगे ? या यो कह लीजिए कि आमका रूप, रस, गन्ध, स्पर्शका देखना ही आमका देखना है। वहाँ भी हरे पीलेके अतिरिक्त या खट्टे मीठेके अतिरिक्त तथा गन्ध विशेषोके अतिरिक्त या कठोर-नरमके अतिरिक्त क्या देखा ? मैं आपसे कहूँ कि हरा-पीला तो न देखना पर रग देखना या खट्टा-मीठा तो न चखना पर रस चखना, गन्ध विशेष तो न सूघना पर गन्ध सूघना या कठोर-नर्म तो न छूना पर स्पर्श छूना, तो आप ही बताइए कि आप क्या कहेगे ? क्या हरा, पीला आदि न देखकर केवल रग देखा जाना सम्भव है, या खट्टा-मीठा आदि न चखकर केवल रस चखा जाना सम्भव है ? इसी प्रकार सर्वत्र जानना।

हरा-पीला या खट्टा-मीठा आदि जो कुछ भी देखा गया है वह वास्तवमे पर्याय है पदार्थ व गुण नही, क्योकि ये बदलनेवाले हैं, अनित्य हैं। पदार्थ या गुण अनित्य नही होते, वे इस पर्याय-मालाके मूलमे बैठे हुए नित्य होते है। अत. सिद्धान्त निकल गया कि जो कुछ भी देखने, चखने या अनुभव करनेमे आता है वह सब पर्याय है पदार्थ व गुण नही। इसीको यो भी कह सकते है कि जो कुछ भी देखने या अनुभवमे आ रहा है वह सब अनित्य है नित्य नही।

तो फिर नित्य जो पदार्थ तथा गुण हैं वे कोई वस्तु ही न रहे, क्योकि जो बात जानी ही न जाये वह तो गधेके सीगवत् असत् होती है। पदार्थ व गुण बिलकुल भी जाने न जा सकें सो बात नही है। भले इन्द्रियो आदिसे उनका प्रत्यक्ष न किया जा सकता हो, परन्तु विचार-विशेषसे अवश्य उनकी सत्ता मालूम की जा सकती है। पर्याय बिना गुण या पदार्थके रह नही सकती, इसलिए पदार्थ व गुण अवश्य हैं। जैसे कि आम नामका पदार्थ या रस नामका गुण तो न हो परन्तु कच्चा-पक्कापना हो या खट्टा मीठापना हो, यह कैसे सम्भव है ? आम पदार्थ तथा उसका रस नामका गुण ही तो परिवर्तन पाकर कच्चेसे पक्का तथा खट्टेसे मीठा हुआ है। इस प्रकार पदार्थ तथा गुण अनुमानके विषय अवश्य बन जाते हैं।

१२ सत्की खोज

उपर्युक्त कथन-परसे इतना सिद्ध हो जाता है कि पदार्थ भी सत् है और उसके गुण भी सत् है क्योकि अनुमान द्वारा जाने जाते हैं पर्याय तो सत् है ही, क्योकि उसका तो प्रत्यक्ष ही हो रहा है। जो कुछ भी जाननेमे आये वह 'सत्' होता है। जो जाननेमे न आये, केवल कल्पना हो वह 'असत्' होता है। गधेके सीग तथा वन्ध्याका पुत्र कल्पना मात्र असत् हैं, क्योकि तीन कालमे भी

कभी न उनका प्रत्यक्ष किया जा सकता है और न उन्हे अनुमान द्वारा जाना जा सकता है।

यहाँ भी दार्शनिक जन कुछ और सूक्ष्मतासे विचार करते है। यद्यपि जाननेकी अपेक्षा देखे तो पदार्थ, गुण तथा पर्याय तीनो ही सत् हैं, परन्तु दूसरी दृष्टिसे देखें तो कुछ और ही दीखने लगता हैं। अरे! वास्तवमे सत् तो वह है जो टिका रहे अर्थात् नित्य है। क्षणिक वस्तुका क्या सत्? अब है और अब नही, यह तो स्वप्न सरीखा है। एक वस्तु दिखाई दी परन्तु पकडनेको जावें तो वहाँ कुछ भी न मिले, उसका क्या सत्? बिजली कड़की तथा दिखाई तो अवश्य दी परन्तु पकडनेको गये तो लुप्त हो गयी। इसी प्रकार बादलोमे नगर बसा परन्तु टिकाने-का विचार किया, इतनेमे लुप्त हो गया। ऐसे क्षणिक पदार्थोंका क्या सत्? अतः क्षण-भरके लिए भले सत् हो पर ज्ञानीजन इन्हें असत् तथा भ्रम ही कहते हैं। इसी प्रकार बाल-वृद्ध आदि मनुष्यकी पर्यायें तथा कच्चा-पक्का आदि आमकी पर्यायें, अथवा खट्टी-मीठी आदि रस गुणकी पर्यायें सब क्षणिक होनेके कारण असत् है।

यह बात ठीक है कि ये पर्यायें बिजलीकी भाँति दीखकर तुरन्त लुप्त नही होती, पकडने तथा भोगनेमे भी आती हैं, परन्तु ऐसा केवल स्थूल दृष्टिसे दीखता है। दार्शनिकोकी दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म होती है। जैसा कि पहले बताया गया है पर्याय प्रतिक्षण बदलती है, अधिक देर तक टिकनेवाली कोई पर्याय नही होती, वह केवल अनेक क्षणिक पर्यायोका समूह है। जैसे कि पाषाण-स्तम्भोका एक हजार वर्षके पश्चात् क्षीण हो जाना कोई आकस्मिक घटना नही है बल्कि अनन्तो क्षणिक घटनाओका फल है। इस दृष्टिसे देखनेपर पर्याय मात्र ही क्षणिक होनेके कारण असत् है, मिथ्या है, माया है, प्रपंच है। अपने गुणोका पिण्डरूप वह मूल पदार्थ ही सत् है।

इस प्रकार सत् व असत्की दो प्रकारसे व्याख्या की जाती है। जो जाननेमे आये सो सत् जो जाननेमे न आये सो असत्। इस दृष्टिसे पदार्थ, उसके गुण व पर्याय सभी सत् हैं और गधेके सींग आदि काल्पनिक पदार्थ असत्। दूसरे प्रकारसे 'जो टिके सो सत् और झलक मात्र दिखाकर विलुप्त हो जाये अर्थात् न टिके सो असत्', इस दृष्टिसे नित्य पदार्थ तो सत् है और पर्याय मात्र असत्।

अब यह प्रश्न होता है कि वह मूल पदार्थ क्या है जो कि नित्य टिकता हो और जिसे हम सत् कह सकें ? जितने कुछ भी दृष्टान्त अब तक बताये गये हैं तथा जितने कुछ भी पदार्थ लोकमे दिखाई देते है वे सब नित्य नही हैं, क्योंकि ऐसा सभी जानते है। आम्रफल सदा आम्रफल नही रहता, वृक्षपर पैदा होता है और गल-सडकर समाप्त हो जाता है। मनुष्य सर्वदा मनुष्य नही रहता, पैदा होता है और मृत्युके मुखमे जाकर समाप्त हो जाता है। स्वर्ण सदा स्वर्ण नही रहता, खानमे पैदा होता हैं जेवर आदिके रूपसे शरीरको सजाकर धीरे धीरे घिसता हुआ मिट्टीमे मिलकर समाप्त हो जाता है। अत वह सत् पदार्थ क्या है जो सदा स्थायी हो, सदा नित्य हो, सदा टिकता हो। ये सब दृष्ट पदार्थ असत् है। असत् पदार्थमे उलझकर उसके चक्करमे पडना अपनेको धोखा देना है, इसलिए आओ उस नित्य सत् पदार्थकी खोज करें।

१३ सत् बनाया नहीं जाता

जो सत् होता है वह स्वय होता ही है, बनाया नही जाता। जो होता है वह बनाया नही जाता, जो नही होता वही बनाया जाता है। जो स्वय होता है उसका विनाश भी नही हो सकता, जो नही होता पर नया बनाया जाता है उसका विनाश भी हो जाता है। जैसे परमाणु सदासे है वह नया नही बनाया जाता

और इसीलिए उसका विनाश भी नही होता। मेज़, कुरसी आदि पदार्थ बनाये जाते हैं इसलिए उनका विनाश भी हो जाता है। ये सब उस सत्‌को केवल परिवर्तनशील पर्यायें या अवस्थाएँ ही हैं, कोई मूलभूत नया पदार्थ नही।

परमाणु मूलभूत पदार्थ है। वह स्वय ही होता है बनाया नही जाता। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि महाभूत भी उसके ही प्राकृतिक रूप हैं जो अनन्तानन्त परमाणुओके सघात या मेलसे बनते हैं। कैसे, सो बात आगे बतायी जायेगी। इन चार महाभूतो तथा पाँचवें आकाश तत्त्वके मिलनेसे जीवोके शरीर बनते हैं; वृक्षोके शरीर रूपसे लकडी, पृथ्वीके शरीर रूपसे पत्थर व लोहा आदि तथा त्रस शरीर रूपसे चमडा-हड्डी आदि बनते है। मनुष्य न परमाणु बना सकता है और न इन सर्व पदार्थोंमे-से कुछ भी बना सकता है। वह तो केवल इन प्राकृतिक शरीरोके रूपमे उत्पन्न हुए पदार्थोंको तोड-जोड़कर घट-पट आदि अनेक पदार्थ ही बनाता है। मानव द्वारा बनाये हुए ये घट महल, कपडा, ज़ेवर, मेज, कुरसी आदि सर्व पदार्थ वास्तवमे उन प्राकृतिक पदार्थोंमे-से ही बनाये गये है।

इन सब पदार्थोंमे सत् क्या है, इसकी खोज करने जायें तो पता चलेगा कि न तो मेज़ कुरसी आदि मानवकृत पदार्थ सत् हैं क्योकि वे नये बनाये गये है और विनष्ट भी हो जाते हैं, तथा न ही पत्थर, लकडी आदि प्राकृतिक पदाथ सत् हैं क्योकि वे भी उत्पन्न होते हैं और विनष्ट हो जाते है। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु ये चार महाभूत भी सत् नही हैं क्योकि ये भी परमाणुके मेल या सघातसे बने है तथा बराबर टूटते-फूटते रहते है। इन सबमे वास्तवमे परमाणु ही सत् है जिसमे न तो किसीका सयोग हुआ है और न वह तोड़ा जा सकता है, जो न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी उसका

विनाश होता है। इसी प्रकार मूल चेतन पदार्थ या जीव सत् है क्योकि वह न कभी उत्पन्न होता है और न कभी उसका विनाश होता है। उत्पन्न व विनाश तो इस शरीरका होता है अन्दरवाले जीवात्माका नही। इसी प्रकार आकाश सत् है क्योकि न वह कभी बनाया गया है और न कभी इसका विनाश होता है।

इसपर-से जानना कि सत् वह है जो कभी भी किसीके द्वारा न बनाया गया हो, न उसका बनाया जाना सम्भव हो। वह सदासे स्वय होता है और सदा स्वय रहता है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके कारण वह बराबर अनेको पर्याय या अवस्थाएँ बदला करता है, पर स्वय ज्यो का त्यो रहता है, जैसे कि मेज, कुरसी आदिक बडे या छोटे रूप धारण कर लेने पर भी परमाणु ज्यो का त्यो रहता है। अवस्थाएँ ही उत्पन्न हो-होकर विनष्ट हुआ करती हैं, सत् नही। सत् त्रिकालस्थायी होता है। वह अखण्डित होता है, तोडा नही जा सकता। जोडे-तोड़े जानेवाले जितने भी भौतिक पदार्थ दिखाई देते है वे सत् नही हैं। वे अनेक सद्भूत परमाणुओके समूह है। क्योकि अनेक पदार्थोंके समूह है इसलिए तोडे व जोड़े जा सकते हैं।

सत् पदार्थ छोटा भी हो सकता है बडा भी, परन्तु वह स्वय ही वैसा होता है। छोटेसे बडा व बडेसे छोटा बनाया नही जा सकता। परमाणु छोटा सत् है और आकाश बडा। इसलिए न परमाणुको तोडा जा सकता है न आकाशको। परमाणु व आकाश दोनो अखण्डित है, इसी प्रकार जीवात्मा भी अखण्डित है। तात्पर्य यह कि सत् स्वत सिद्ध तथा अखण्डित होता है।

१४. स्वभाव चतुष्टय

अब तक यह भली भाँति समझा दिया गया कि पदार्थ गुणो तथा

पर्यायोका समूह है और इसलिए वह नित्य तथा अनित्य दोनो रूपोमे देखा जा सकता है। पदार्थ या उसके गुणोको देखें तो वह नित्य प्रतीत होता है और उनकी पर्यायो या अवस्थाओको देखें तो वह अनित्य प्रतीत होता है। इस प्रकार पदार्थमे तीन बातें पढी जाती है—गुण, जिसमे गुण रहे वह द्रव्य, अ र पर्याय। और भी सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर पदार्थमे चार बातें खोजी जा सकती हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव। इन चारोको पदार्थके स्व-चतुष्टय कहते है।

'स्व-द्रव्य' कहते है उस वस्तुको जिसमे गुण रहते है यह ठीक है कि द्रव्य-से भिन्न गुण कोई वस्तु नही, परन्तु क्योकि द्रव्य एक है और उसमे पाये जानेवाले गुण अनेक, आम एक है और उसमे पाये जानेवाले स्पर्श, रस, गन्ध व वर्ण आदि गुण अनेक, इसलिए ऐसा बोलनेमे आता है कि द्रव्यमे गुण रहते हैं। द्रव्य आश्रय है और गुण उसमे आश्रय पानेवाले। इस परसे यह नही समझना चाहिए कि द्रव्य नामकी एक थैली है जिसमे कि अनेक गुण भरे रहते है, जैसे कि बोरीमे अनाज या गिलासमे जल, क्योकि एकमेक पदार्थमे भी 'इसमे यह गुण है ऐसा कहा जाता है' जैसे कि 'अग्निमे उष्णता है तथा प्रकाशत्व, दाहकत्व आदि अनेको गुण है' ऐसा नित्य कहनेमे आता है। 'इसमे यह है' इस प्रकारका वाक्य भिन्न-भिन्न पदार्थोंके सम्बन्धमे भी बोला जाता है और एक अखण्ड पदार्थके सम्बन्धमे भी बोला जाता है। यहाँ 'द्रव्यमे गुण या पर्याय हैं' इस प्रकारका प्रयोग पृथक्-पृथक् पदार्थोके सम्बन्धमे न समझकर एकमेक पदार्थोके सम्बन्धमे ही समझना।

परन्तु यहाँ तो यह प्रश्न होता है कि वह द्रव्य जिसमे गुण रहता है कुछ न कुछ लम्बाई, चौडाई, मोटाई या आकारविशेषवाला तो होना ही चाहिए, भले ही वह आकार छोटा हो कि बड़ा, क्योकि बिना आकारविशेषका निर्णय किये हम यह कैसे कह

सकते है कि यहाँ इसमे ये अमुक गुण हैं। आममे मिठास गुण है ऐसा कहते ही यह भान हो जाता है कि आम पदार्थके सीमित आकारमे ही यह गुण है, बाहर नही। अत यदि गुणोका समूह द्रव्य है या द्रव्यमे गुण रहते हैं, तो अवश्य ही उसका कोई छोटा या बडा आकार होना चाहिए, वह तिकोन हो कि चौकोन, गोल हो कि चपटा। आकाश महान तथा व्यापक है और परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म है परन्तु उनका भी आकार है तो अवश्य। आकार न हो तो गुणोकी सीमाका निर्धारण कैसे सम्भव हो। प्रत्येक गुण प्रत्येक स्थानपर ही रहने लगें क्योकि गुणका अपना कोई स्वतन्त्र आकार नही होता। मिठास नामके गुणका या उष्णता नामके गुणका क्या आकार ? वे जिस पदार्थमे रहते हैं उस आमका तथा अग्निका आकार अवश्य है। यदि प्रत्येक ही गुण प्रत्येक स्थानपर रहे तो 'यह पदार्थ', 'वह पदार्थ', 'चेतन पदार्थ' ऐसा विभेद कैसे किया जा सकता है ? इसलिए पदार्थका कोई न कोई आकार अवश्य होना चाहिए। बस आकारके द्वारा सीमित जो कुछ भी है वही द्रव्य कहलाता है। या यो कह लीजिए कि द्रव्यकी कोई न कोई सीमा है। सीमा कहो या क्षेत्र कहो एक ही बात है, क्योकि इतनी लम्बाई, चौडाई, मोटाईवाले क्षेत्रकी सीमाओको घेरकर रहनेवाला ही द्रव्य है। द्रव्यके इस आकारको ही उसका स्व क्षेत्र' कहते हैं।

द्रव्यका यह क्षेत्र पूरा का पूरा उसके प्रत्येक गुण या प्रत्येक पर्यायसे भरा रहता है। ऐसा कभी भी होने नही पाता कि उस क्षेत्रके किसी कोनेमे तो एक गुण रहता है और किसीमे दूसरा तथा कोई एक कोना बिलकुल ही रीता पडा है। न ही ऐसा होता है कि कोई एक गुण उस सीमाके बाहर रहता है और कोई उस सीमाके अन्दर। सभी गुण और उनकी सभी पर्यायें उस द्रव्यके सम्पूर्ण क्षेत्रमे एक साथ व्यापकर रहते हैं और इस प्रकार द्रव्यके जिस

तथा जितने भागमे एक गुण व पर्याय रहती है उसी तथा उतने ही भागमे दूसरा गुण तथा दूसरी पर्याय रहती है, जैसे कि अग्नि नामक पदार्थमे जहाँ तथा जितने क्षेत्रमे उष्णता व्यापकर रहती है, वहाँ तथा उतने ही क्षेत्रमे प्रकाश भी व्यापकर रहता है। इस प्रकारके गुणोका समूह वह द्रव्य है, जो क्षेत्रवान् है। गुणका अपना कोई स्वतन्त्र क्षेत्र या आकार नही होता। जो द्रव्यका क्षेत्र या आकार है, वही गुण या पर्यायका क्षेत्र या आकार है।

यह तो द्रव्य तथा गुणके क्षेत्र सम्बन्धी बात हुई। अब उसके अनित्य अश या पर्याय परसे भी कुछ सिद्धान्त निकालना चाहिए। पर्याय द्रव्य तथा गुणकी परिवर्तनशील अवस्थाओको कहते हैं जो कि नित्य द्रव्य तथा गुणोपर जलकी तरगोवत् प्रकट हो-होकर विलीन हुआ करती हैं। अब कोई एक पर्याय है अगले ही क्षण वह नही है, उसके स्थानपर कोई दूसरी ही है और तीसरे क्षणमे कोई तीसरी ही है, इस प्रकार बराबर बदलती रहती है। पर्याय क्योकि बदल जाती है इसलिए किसी भी निश्चित पर्यायको जाननेके लिए हमे यह तो कहना ही पडेगा कि आजकी पर्याय या कलकी पर्याय, अबकी पर्याय या तबकी पर्याय, एक वर्ष पहलेकी पर्याय या एक वर्ष बादकी पर्याय। यदि इस प्रकार अब-तब आज-कल आदिका प्रयोग न करें तो किसीको क्या बतायें कि पर्यायको बतानेके या जाननेके लिए अवश्य ही हमे समयकी अपेक्षा लेनी पडती है। समय कहो या काल एक ही अर्थ है। इसलिए द्रव्यमे पायी जानेवाली इसकी परिवर्तनशील पर्याय ही इस द्रव्यका 'स्व-काल' कहा जाता है।

द्रव्यके अनेको गुण उसके वे 'स्व-भाव' है जिनपर-से कि हम विभिन्न जातीय द्रव्योकी पृथक्-पृथक् पहचान करते है। चेतनभाव-वाला या ज्ञानगुणवाला जो है वह जीवद्रव्य है और स्पर्श आदि

भावो या गुणोवाला जो है वह जडद्रव्य है। उस-उस द्रव्यके अपने-अपने पृथक्-पृथक् ही कोई भाव विशेष या गुण न हो तो सब पदार्थ मिलकर एक हो जायें, जगत्मे यह चित्रता-विचित्रता देखनेको न मिले॥

अतः पदार्थमे ये चार बातें देखी जाती हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव। किसी भी पदार्थका विशेष परिचय प्राप्त करनेके लिए उस पदार्थका विश्लेषण करनेकी आवश्यकता पडा करती है। ऐसे अवसरपर पदार्थके इस चतुष्टयका आश्रय लेना आवश्यक है। चार प्रकारसे पदार्थको पढकर उसके सम्बन्धमे कोई शका नही रह सकती। जड या चेतन प्रत्येक पदार्थमे ये चारो बातें पायी जाती है। इसलिए इन्हे पदार्थके स्वभाव चतुष्टय कहते हैं। चतुष्टय-का अर्थ चार बातोका सग्रह है। इस चतुष्टयको सर्वत्र ध्यानमे रखना चाहिए। क्योकि आगे पदार्थकी विशेषता समझते हुए इसका काम पड़ेगा।

१५. सामान्य व विशेष

स्वभाव-चतुष्टय भी दो प्रकारसे देखा जाता है—सामान्य रूपसे और विशेष रूपसे। सामान्य उस एक भाव या स्वभावको कहते हैं जो उस पदार्थकी समस्त विशेषताओमे सर्वत्र तथा सर्वदा ज्योका त्यो पाया जाये। और विशेष उसी सामान्यके भेद या पर्यायोको कहते हैं।

दृष्टान्तपर-से समझिए। द्रव्यकी अपेक्षा देखनेपर वृक्ष यद्यपि अनेक हैं परन्तु उन सबमे पाया जानेवाला वृक्षत्व एक है क्योकि १० हो या ५०, हैं तो वृक्ष ही। इसलिए वृक्षत्वको सामान्य द्रव्य समझें और अनेक संख्यामे विभाजित पृथक्-पृथक् वृक्षोको विशेष समझें। सामान्य दृष्टिसे द्रव्य एक है और विशेष दृष्टिसे अनेक।

क्षेत्रकी अपेक्षा देखनेपर वृक्षत्वका कोई आकार नही, जहाँ जिस भी वृक्षमे देखो वृक्षत्व वैसाका वैसा है, अत. वृक्षत्व व्यापक है। परन्तु कोई एक वृक्ष तो छोटे आकारवाला है और कोई दूसरा बड़े आकारवाला। अत पदार्थका सामान्य क्षेत्र व्यापक है, और विशेष क्षेत्र सीमित आकारवाला।

कालकी अपेक्षा विचार करनेपर वृक्षत्वको जब भी देखो वैसा का वैसा है, न वह नया पैदा होता है, न वृद्धि पाता है, न मरता है। परन्तु कोई एक वृक्ष-विशेष तो पैदा भी होता है, वृद्धि भी पाता है तथा अन्तमे मर भी जाता है। अत पदार्थका सामान्य काल नित्य होता है और विशेष काल अनित्य। सामान्य काल द्रव्य व गुणोका माना जाता है और विशेष काल उनकी परिवर्तन-शील पर्यायोका।

भावकी अपेक्षा देखनेपर वृक्षत्व तो एक वृक्षपनेके स्वभाववाला है अर्थात् सभी 'वृक्ष' डाली, पत्ते, फल, फूलवाले हैं, परन्तु कोई एक वृक्ष-विशेष तो अपनी विशेष जातिका ही है। कोई नीम जातिका और कोई जामुन जातिका, कोई कडवे स्वभाववाला और कोई मीठे स्वभाववाला। अत. पदार्थका सामान्य भाव एक ही प्रकारका होता है, परन्तु उसकी विशेष जातियाँ अनेक प्रकारकी। इसी प्रकार सामान्य वृक्षत्व तो एक ही है परन्तु उस एकमे पाये जानेवाले गुण बहुत हैं। अत· सामान्य भाव एक होता है और विशेष भाव अनेक।

□

३

पदार्थ विशेष

१ सत् खोजनेकी आवश्यकता, २. विश्वमें दो पदार्थ है, ३. दोनो पदार्थोंके नाम तथा अर्थ, ४ मूर्तिक तथा अमूर्तिक, ५. सक्रिय तथा अक्रिय, ६. दोनो पदार्थोंका सक्षिप्त परिचय, ७. जीवका सक्षिप्त परिचय, ८. अजीवका सक्षिप्त परिचय, ९. जीव-अजीवका नाटक, १०. पदार्थोंको जाननेका प्रयोजन ।

१, सत् खोजनेकी आवश्यकता

अहा हा ! कितनी विचित्र है पदार्थकी लीला । कितना सुन्दर है पदार्थका नृत्य । कितना अनोखा है पदार्थका स्वाग, जिसे देखकर सारा जगत् चक्करमे पड गया है, जिसे देखकर सारा विश्व ही विमूढ हो गया है । वह बाहरके इस तरगित प्रवाहको देखकर इसे ही पकडनेको दौड़ रहा है । वह इस अनित्य असत्को ही सत् मानकर इसमे स्वयंको खो बैठा है । मिथ्याको सत्य मानकर दुखी हो रहा है, जैसे कि प्रतिबिम्बको देखकर उसे पकडनेके लिए बच्चा दुखी होता है । तेरा भ्रम ही सबसे बडा दु.ख है । यदि तेरी अन्तर्चक्षु खुल जाये, तू पदार्थके स्वागको समझकर इसके पीछे बैठे हुए वास्तविक सत्के दर्शन कर ले, तो फिर तेरे दुखी होने को अवकाश न रहे । तू सदा आनन्दमग्न हो जाय । वह आनन्द ही धर्म है । इसलिए धर्मके क्षेत्रमे पदार्थको भलीभांति जानकर सत्की खोज करना अत्यन्त आवश्यक है ।

पहले ही वताया गया है कि यह सारा विश्व जिसमे कि हम उलझे हुए है, पदार्थोंका समूह है, इसके अतिरिक्त कुछ नही। पदार्थके दो रूप है—एक उसका भीतरी रूप और दूसरा बाहरी रूप। भीतरी रूप नित्य है और बाहरी रूप अनित्य। नित्य होनेके कारण भीतरी रूप एक है और अनित्य तथा परिवर्तनशील होनेके कारण बाहरी रूप अनेक है, चित्र-विचित्र है, तरगित है, प्रवाहित है, चचल है। नित्य होनेके कारण भीतरी रूप सत् है और अनित्य होनेके कारण वाहरी रूप असत् है, मिथ्या है, माया है, प्रपच है। भीतरी होनेके कारण सत् साधारण दृष्टिसे देखनेमे नही आता और वाहरी होनेके कारणअसत् सबके देखनेमे आता है। दिखाई न देनेके कारण सत्को कोई नही जानता और दिखाई देनेके कारणअसत्को सब जानते है। उसे अपनाये कौन ? जिसे जाना है उसे ही अपनानेका प्रयत्न होता। परन्तु खेद है कि जिसे अपनानेका प्रयत्न नही है वही अपनाया जाना सम्भव है, क्योकि वही सत् है, और जिसे अपनाया जानेका प्रयत्न है वह अपनाया जाना सम्भव नही है, क्योकि वह असत् है। प्रयत्न करनेपर भी वह अपनाया या पकडा नही जा रहा है, यही दु ख है, यही अधर्म है। इसी अधर्मके कारण जगत् दुखी है। सत्को समझे तो अपनानेका प्रयत्न करे, और वह प्रयत्न अवश्य सफल हो जाये, क्योकि वह सम्भव है। प्रयत्नकी सफलता ही सुख है, वही धर्म है। अत. धर्मके लिये सत्की खोज आवश्यक है।

२. विश्वमे दो पदार्थ हैं

जैसा कि बता दिया गया है, यह सत् साधारण स्थूल दृष्टिसे देखा नही जा सकता, उसके लिए विशेष सूक्ष्म दृष्टि उत्पन्न करनी होगी। 'सत्' को देखनेके लिए इन आँखोसे काम नही चलेगा। उसके लिए अन्तर्चक्षु खोलनी होगी। अत इस सम्बन्धमे जो कुछ भी

बताया जाये उसे अन्तर्चक्षुसे अर्थात् अन्तःकरणसे मनन करनेका प्रयत्न कीजिए। अन्त.करणसे मनन करके ही एक वैज्ञानिक पदार्थके भीतर प्रवेश पा सकता है और उसके रहस्यको जानकर नये-नये अविष्कार कर सकता है। उसी वैज्ञानिक दृष्टिसे देखनेका प्रयत्न कीजिए।

अब तक इस विश्वके बाहरी रूपका ही विश्लेषण करके यह बताया गया कि पदार्थोंके समूहका नाम विश्व है। बाहरसे देखनेके कारण ही वहाँ अनेक असख्य तथा अनन्त पदार्थ दिखाई देते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, पृथिवी, धातुएँ, ईंट, पत्थर, जल, वायु और न जाने क्या-क्या। परन्तु यदि इसके हृदयमे प्रवेश करके इसके अन्दरका विश्लेषण करें तो तुम्हे आश्चर्य होगा कि यहाँ अनेक पदार्थ है ही नही। वास्तवमे यहाँ केवल दो पदार्थ हैं। सख्यामे दो कहनेका प्रयोजन नही है, जातिमे दो कहनेका प्रयोजन है। अर्थात् यहाँ केवल दो जातिके पदार्थ हैं—एक जानने-देखनेवाली जातिके और दूसरे न जानने-देखनेवाली जातिके। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जानने-देखनेवाली जातिके हैं और ईंट, पत्थर, लोहा, जल, वायु आदि न जानने-देखनेवाली जातिके।

जाननेवाली जातिके पदार्थको चेतन कहते है और न जानने-वाली जातिके पदार्थको जड। इन दो जातियोंके अतिरिक्त तीसरी कोई जाति नही है, इसलिए हम कह सकते है कि विश्वमे दो ही पदार्थ हैं—एक चेतन और दूसरा जड।

३ दोनो पदार्थोंके नाम तथा अर्थ

इन दोनो पदार्थोंके लिए शास्त्रोमे भिन्न-भिन्न स्थानोपर भिन्न-भिन्न शब्दोका प्रयोग किया गया है। इन सर्व शब्दोका तथा उनके सैद्धान्तिक अर्थोंका कुछ परिचय देना आवश्यक है, ताकि शास्त्र

पढने तथा उनका अर्थ समझनेमे सुभीता हो। इसलिए हम यहाँ आपको उन शब्दोके सक्षिप्त अर्थका परिचय देते हैं।

चेतन पदार्थको प्राय. आत्मा, ज्ञानी, ज्ञाता, द्रष्टा, जीव, देही, प्राणी आदि नामोसे पुकारा जाता है। इन सर्व शब्दोके यद्यपि भिन्न-भिन्न अर्थ हैं परन्तु वे सब अर्थ उस चेतन पदार्थको ही दर्शाते हैं। इसलिए उसके लिए इन सब नामोका प्रयोग युक्त है। 'चित्' का अर्थ है ज्ञान अर्थात् जानना-देखना। उसीसे चेतन शब्द बना है इसलिए चेतन शब्दका अर्थ है जानने-देखनेवाला। 'अत्'का अर्थ है प्राप्त करना। इसीसे 'आत्मा' शब्द बना है, इसलिए आत्मा शब्दका अर्थ है ज्ञान द्वारा सब कुछ प्राप्त कर लेनेवाला। 'ज्ञान'का अर्थ भी जानना है, इसीसे ज्ञानी शब्द बना है, इसलिए ज्ञानी शब्दका अर्थ भी जाननेवाला है। इसी प्रकार 'ज्ञ'का अर्थ जानना और 'दृश'का अर्थ देखना है। इसीसे ज्ञाता-द्रष्टा शब्द बना है, जिसका अर्थ जानने-देखनेवाला ही है। 'जीव' शब्दका अर्थ है जीनेवाला। शरीरोमे यह जानने-देखनेवाला आत्मा ही जीता है इसलिए उस चेतनको जीव कहना युक्त है। इसी प्रकार देहको रखनेवाला सो देही, प्राण धारण करे सो प्राणी। ये बाते भी शरीरधारी आत्मामे ही पायी जाती हैं इसलिए ये सभी नाम उसके लिए युक्त है।

परन्तु जैसा कि आगे बताया जायेगा, चेतन व शरीर एक नही हैं। ये दो पृथक् पदार्थ हैं। इनमे-से चेतन तो चेतन है ही परन्तु शरीर जड है। इसलिए चेतनके दो रूप हो जाते हैं—एक शरीर-रहित और एक शरीरसहित। शरीररहित चेतनको आत्मा, ज्ञानी, ज्ञाता, द्रष्टा आदि तो कह सकते है परन्तु जीव, देही, प्राणी आदि नही, क्योकि इन शब्दोका सम्बन्ध शरीरधारी चेतनसे ही है, जैसे कि पहले बताये अर्थोंसे प्रकट होता है। शरीररहित चेतनको ही

उर्दू भाषामे रूह और अगरेजी भाषामे सोल (soul) कहते है। शरीरसहित चेतन को अर्थात् जीवको उर्दू भाषामे कायनात और अगरेज़ी भाषामे लिविंग बीइंग (living being) कहते है।

चेतन पदार्थकी भाँति जड पदार्थको भी अनेको नामोसे पुकारा जाता है जैसे—अजीव, जड, पुद्गल, भौतिक पदार्थ इत्यादि। जिसमे जानने-देखनेकी शक्ति न हो उसे 'जड़' कहते है। जिसमे जीवन शक्ति न हो उसे 'अजीव' कहते हैं। क्योकि ईंट-पत्थर इत्यादिक पदार्थ जीते नही, इसलिए उन्हे अजीव कहना युक्त है। पुद्+गल् इन दो शब्दो से मिलकर पुद्गल शब्द बना है। 'पुद्' का अर्थ है पूर्ण होना या मिलना 'गल'का अर्थ है गलना, बिछुडना या टूटना। क्योकि ईंट, पत्थर, लोहा, सोना इत्यादि समस्त पदार्थ मिल-मिलकर बिछुड़ जाते हैं और बिछुड बिछुडकर पुन मिल जाते हैं, जुड-जुडकर टूट जाते है और टूट-टूटकर पुन. जुड जाते हैं—इस- लिए इन्हे पुद्गल कहना युक्तिसंगत है। यद्यपि जैसा कि आगे बताया जायेगा अजीव या जड द्रव्य पाँच प्रकारका माना गया है, परन्तु व्यवहार्य होनेके कारण उन सबमे पुद्गल ही प्रधान है। इसी जड पदार्थको इगलिशमे मैटर कहते है। जड़ पदार्थके लिए पुद्गल शब्दका प्रयोग केवल जैन शास्त्रोमे ही प्रसिद्ध है, अन्यत्र नही। वैदिक दर्शनोमे इसे महाभूत कहा गया है। भूत शब्दसे ही भौतिक शब्द बना है। इसलिए पौद्गलिक पदार्थोको भौतिक कहा जाना युक्त है।

चेतन पदार्थका नाम क्योकि आत्मा है इसलिए इस सम्बन्धी-विज्ञानको अध्यात्म विज्ञान कहते है। और इसी प्रकार जड़ पदार्थका नाम क्योकि भौतिक पदार्थ है इसलिए इस सम्बन्धी विज्ञानको भौतिक विज्ञान कहते है। अंगरेज़ी भाषामे चेतन पदार्थका नाम स्पिरिट (spirit) है इसलिए इस सम्बन्धी विज्ञान-

को स्पिरिच्युअल साइंस (spiritual science) कहते है। और इसी प्रकार जड पदार्थका नाम इस भाषामे मैटर है इसलिए तत्सम्बन्धी विज्ञानको मैटीरियल साइंस (material science) कहते हैं।

चेतन पदार्थको प्राय नित्य कहा जाता है। इसका कारण यही है कि यह पदार्थ 'सत्' है, इसमे परिवर्तन नही होता। यह मूल पदार्थ है जिसका जन्ममरण नही होता, यह बात अगले प्रकरणमे स्पष्ट की जायेगी। इसी प्रकार जड या भौतिक पदार्थको अनित्य कहा जाता है। इसका कारण यही है कि जितना भी यह परिवतन-शील दृष्ट जगत् है, जिसे कि पहले असत् कहा गया है, उसका निर्माण इसी पदार्थसे हुआ है। इन उपरोक्त कारणोसे ही वैदिक साहित्यमे चेतनाको सत् और जडको असत् कहा गया है। सो उन-उन शब्दोका तात्पर्य ठीक-ठीक जानना योग्य है।

४. मूर्तिक तथा अमूर्तिक

इनमे-से कुछ पदार्थ दृष्ट हैं और कुछ अदृष्ट, अर्थात् पदार्थ दो प्रकारके होते हैं—मूर्तिक व अमूर्तिक। जो पदार्थ इन्द्रियो द्वारा छूकर, चखकर, सूँघकर, देखकर अथवा सुनकर जाने जायें उन्हे मूर्तिक या रूपी कहते हैं, और जो इन्द्रियो द्वारा न जाने जायें उन्हे अमूर्तिक कहते है। जीव पदार्थ केवल अमूर्तिक है परन्तु अजीव पदार्थ मूर्तिक व अमूर्तिक दोनो प्रकारका होता है। लोकमे दिखाई देनेवाले जितने भी दृष्ट पदार्थ हैं वे सब मूर्तिक हैं, क्योकि इन्द्रियो द्वारा देखे जा रहे हैं। और इस प्रकार पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति, ईंट, पत्थर, महल, मकान, कारखाने, बडे-बडे विमान, रेल, मोटर आदि तथा चमडे-हड्डीका यह शरीर सभी मूर्तिक अजीव पदार्थ है। शरीर यद्यपि चेतनका ससर्ग रहनेके कारण जीव दिखाई देता है परन्तु वास्तवमे अजीव है और वह भी

मूर्तिक है क्योकि इन्द्रियोसे छूकर या देखकर जाना जा सकता है। परन्तु जीव अमूर्तिक होनेके कारण इन्द्रियोसे नही जाना जाता। यहाँ यह शंका करनी योग्य नही कि पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि पदार्थ तो जीव रूपसे प्रसिद्ध हैं और यहाँ उन्हे मूर्तिक तथा अजीव कहा जा रहा है। ये सब वास्तवमे जीव नही हैं, जीवके शरीर हैं। समझाने मात्रके लिए उन्हे जीव कह दिया जाता है। जीव तो वह है जो कि इसके भीतर रहता है, और वह अमूर्तिक है।

अजीव पदार्थ मूर्तिक ही हो सो बात नही। कुछ पदार्थ अमूर्तिक भी हैं, जो इन्द्रियो द्वारा देखे-जाने नही जा सकते, जैसे आकाश। यदि कोई हमसे पूछे कि ये पदार्थ कहाँ हैं, हमे दिखाओ, तो आप ही बताइए कि ये कैसे सम्भव हो? जब हैं ही वे अमूर्तिक तो उनको देखा व दिखाया कैसे जा सकता है? अत. यह मत समझिए कि जगत् उतना ही है जितना कि दिखाई देता है। अरे! दिखाई तो उसका अनन्तवाँ भाग भी नही देता है। जगत् बहुत बड़ा है, यहाँ बहुत कुछ है। इन्द्रियाँ उसे जाननेको पर्याप्त नही हैं। महिमावन्त चेतन ही उसे सहज जान तथा देख सकता है। अत. अमूर्तिक पदार्थ इन्द्रियोसे भले ही देखे तथा जाने न जा सकें पर वे सर्वथा जाने ही न जा सकते हो सो बात नही है। किसी भी व्यक्तिके द्वारा किसी भी प्रकारसे जाना न जा सके वह पदार्थ ही नही है, केवल कपोल कल्पना है। आकाशके फूलवत् तथा गधेके सीगवत् असत् है।

अमूर्तिक भी पदार्थ जाने अवश्य जा सकते हैं, परन्तु इनको जाननेका साधन इन्द्रियाँ नही हैं। वे केवल तर्क तथा विशेष विचारणाओ द्वारा ही जाने जा सकते हैं। आगे जीवके प्रकरणमे ज्ञानके पाँच भेद बताये जायेंगे। उन भेदोमे मतिज्ञान इन्द्रियजन्य

होनेके कारण उसे जाननेमे असमर्थ है। हाँ, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तथा मन पर्यय ज्ञान ये तीनो ही उसे जान सकते है। श्रुतज्ञान उसे परीक्षा द्वारा जान सकता है। यह ज्ञान अत्यन्त महिमावन्त है। सौभाग्यसे यह हम सभीको प्राप्त है। यह अमूर्तिक तथा मूर्तिकको, जीव तथा पुद्गलको, सूक्ष्म तथा स्थूलको, वर्तमान, भूत तथा भविष्यत्को, निकट तथा दूरको, सबको यथायोग्य जान सकता है। ऐसे समर्थ साधनके होते हुए हमे निराश नही होना चाहिए। हाँ, इतना अवश्य ध्यानमे रखना चाहिए कि अमूर्तिक, सूक्ष्म, दूरस्थ तथा भूत-भविष्यत्के पदार्थोंको हम प्रत्यक्ष नही जान सकते। तर्कणाओ द्वारा उन्हे जानकर सिद्ध कर सकते है।

मूर्तिक-अमूर्तिकका यह अर्थ भी नही समझना चाहिए कि जिसकी कोई शकल-सूरत या आकृति हो वह मूर्तिक है और जिसकी कोई शकल-सूरत व आकृति न हो वह अमूर्तिक है। भैया! शकल-सूरत या आकृति तो प्रत्येक पदार्थकी होती है। बिना आकृतिके कोई पदार्थ नही होता। यदि आकृति ही नही तो वह केवल कल्पना मात्र है। आकृतिका यह अर्थ नही कि वह आँखसे दीखनेवाली या कैमरे द्वारा पकडी जानेवाली ही हो। आकृति तो केवल लम्बाई, चौडाई, मोटाई या तिकोन, चौकोन शकलोका नाम है। ये शकलें दो प्रकारकी होती हैं—मूर्तिक अर्थात् दिखाई देनेवाली और अमूर्तिक अर्थात् दिखाई न देनेवाली। जैसे कि इस शरीरकी आकृति तो मूर्तिक है क्योकि दिखाई देती है परन्तु इसमे व्याप्त जो जीव पदार्थ है उसकी आकृति अमूर्तिक है, क्योकि दिखाई नही देती। भले दिखाई न दे पर वह है तो अवश्य और वह है उसी शरीरके आकार को जिसमे कि वह रहता है। जीवका अमूर्तिक आकार अर्थात् लम्बाई, चौडाई, मोटाई, ऊँचाई अथवा गोल, चौकोनपन आदि सब वैसे ही हैं जैसे कि शरीरके।

जीवके आकारके सम्बन्धमे आगे बताया जायेगा। यहाँ तो केवल इतना ही बताना इष्ट है कि वह अमूर्तिक है, फिर भी उसका आकार अवश्य है और वह शरीर जैसा ही है। जिस प्रकार कि घट व घटाकाश। घट या घडा तो मूर्तिक होनेके कारण दिखाई देता है, परन्तु जो उसके अन्दर पोलाहट या खाली जगह है वह भी तो कुछ आकारवाली है ही। उसे ही घटाकाश कहते है। उसका आकार वैसा ही है जैसा कि घडेका। अमूर्तिक पदार्थोका आकार भी इसी प्रकारसे जानना।

वास्तवमे आँखका कार्य रूप अर्थात् रग देखना है, आकार देखना नही। इसलिए इन्द्रियोंके धर्म बताते हुए आँखका विषय रंग बताया जाता है आकार नही। आकार ही दो प्रकारका है—रगवाला तथा बिना रगवाला। रगवाला आकार आँखको दिखाई देता है और बिना रंगवाला नही। रगवाले आकारमे भी आँख तो रग ही देखती है आकारको नहीं। आकार तो रगके साथ साथ सहज दिखाई दे जाता है।

आकाशके जितने भागमे तथा ऊपर-नीचे, दायें-बायें जहाँ-जहाँ रग दिखाई देता है, आकाशका उतना भाग ही उस रंगका आकार कहलाता है, रग स्वय आकार नहीं है, क्योकि रग तो रग है। वहाँ वास्तवमे तो आँखने रग ही देखा आकाश नही। क्योकि यदि आँख उसे देख सकती तो जहाँ रग नही है उस आकाशको भी देख लेती। देखो ऊपर आकाशमे अब कुछ दिखाई नही देता परन्तु वर्षाके पश्चात् इन्द्रधनुष दिखाई दे जाता है। वहाँ इन्द्रधनुष क्या है? क्या कोई उठाई-धरी जानेवाली वस्तु है? आकाशमे दिखाई देनेवाला एक आकार मात्र है। वास्तवमे आकाशका उतना भाग, जिसमे व्याप्त परमाणु सूर्यकी तिरछी किरणोको प्राप्त करके रग-बिरगे हो जाते हैं उसका नाम ही इन्द्रधनुष है। वहाँ

भी वास्तवमे रंग ही दीखते है, आकाशका आकार नही। इस प्रकार रगवाले आकारमे रगके साथ-साथ आकार सहज दिखाई दे जाता है। बिना रगवाला आकार कैसे देखा जा सकता है जबकि आँखका विषय केवल रग ही है। ज्यो ही परमाणुओका वह स्थूल रग समाप्त हुआ त्यो ही वहाँ कुछ भी दिखाई देना बन्द हो गया। हम पूछते है कि क्या अब वहाँ कुछ नही रहा ? आकाशका वह भाग तथा वे सब परमाणु तो वहाँ ही है, परन्तु दीखते नही। इसी कारण अमूर्तिक पदार्थों को अरूपी भी कहते हैं। अरूपीका अर्थ है बिना रगवाला, न कि बिना आकारवाला, क्योकि रूपका अर्थ रंग है आकार नही।

. शरीरसे मुक्त होकर जब चेतन अकेला रह जाता है तब वह आँखसे दिखाई नही देता। ऐसे 'चेतन' मुक्त जीव या सिद्ध भगवान् कहलाते है। उनका आकार अमूर्तिक तथा अरूपी होता है, वह दिखाई नही दे सकता। इसी प्रकार आकाश तथा अन्य अजीव पदार्थोका आकार भी अमूर्तिक होनेके कारण आँखसे देखा नही जा सकता।

५ सक्रिय तथा अक्रिय

जीव तथा अजीव दोनो ही पदार्थोमे सक्रिय और अक्रियके भेदसे भी भेद है। सक्रिय कहते हैं क्रिया करनेवालेको और अक्रिय-का अर्थ है क्रिया न करनेवाला। क्रियाका अर्थ है हिलना-डुलना, चलना-फिरना, सिकुडना-फैलना आदि। अर्थात् प्रत्येक काम जिसमे पदार्थको किंचित् भी हिलना-डुलना पडे क्रिया कहलाता है। जीव तथा अजीव इन दोनो पदार्थोके अनेक अवान्तर भेद हैं। उनमे-से कुछ भेद तो ऐसे है जो कि हिल-डुल सकते है और कुछ ऐसे हैं जो हिल-डुल नही सकते, सदा स्थिर रहते है। हिलने-डुलनेवाला पदार्थ क्रियावान् कहलाता है और स्थिर पदार्थ क्रियाहीन।

जितने भी मूर्तिक दृष्ट पदार्थ है वे सभी हिल-डुल सकते हैं अत सक्रिय है। शरीरके साथ रहनेवाला जीव भी शरीरके साथ ही चलता-फिरता है अत वह भी सक्रिय है। परन्तु कुछ अजीव पदार्थ अक्रिय है—जैसे आकाश सदा ही स्थिर रहता है। वे पदार्थ कहाँ है यह दिखाया नही जा सकता क्योंकि वे अमूर्तिक है। उनका विशेष विवरण आगे दिया जायेगा।

६. दोनो पदार्थोका सक्षिप्त परिचय

विश्वमे दो पदार्थ हैं—एक चेतन या जीव और दूसरा जड या अजीव। दोनोका विस्तार तो आगे क्रमपूर्वक किया जायेगा, यहाँ केवल उनका सक्षिप्त परिचय पा लेना योग्य है। चेतन या जीव उसे कहते है जो कि जान-देख सकता हो तथा दु.ख-सुख महसूस कर सकता हो। जड या अजीव उसे कहते हैं जो जान-देख न सकता हो और न ही जिसे दु ख-सुख होता हो। कीडेसे लेकर मनुष्य-पर्यन्त सब जीव है। और ईंट, पत्थर, लोहा, सोना, कपडा आदि सब अजीव है। जीव अमूर्तिक है, क्योकि इन्द्रियोसे कदापि देखा नही जा सकता। केवल अनुभवसे ही इस शरीरके भीतर महसूस किया जा सकता है। ईंट-पत्थर आदि अजीव मूर्तिक हैं क्योकि इन्द्रियोसे देखे जाते है।

७ जीवका सक्षिप्त परिचय

जीवोके पास देखने-जाननेके जो साधन हैं, उन्हे इन्द्रिय कहते हैं। वे इन्द्रियाँ पाँच हैं—स्पर्शन अर्थात् सारा शरीर, जिह्वा, नाक, आँख, कान। इनके अतिरिक्त मनको भी अन्तरग इन्द्रिय माना गया है। जाननेके इन साधनोमे हीनाधिकताकी अपेक्षा तथा अनेक जातिके शरीरोकी अपेक्षा जीव अनेक प्रकारके होते है। इन्द्रियोकी अपेक्षा उनके छह भेद हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चतुरि-

न्द्रिय, पचेन्द्रिय-असज्ञी, पंचेन्द्रिय सज्ञी। जिनके पास केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय हो वे एकेन्द्रिय जीव हैं जैसे-वृक्ष। जिनके पास स्पर्शन व जिह्वा ये दो इन्द्रियाँ हो वे द्वीन्द्रिय जीव है जैसे—लट, जोक आदि। जिनके पास स्पर्शन, रसना व घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ हो वे त्रीन्द्रिय जीव हैं जैसे—चीटी, कानखजूरा, बिच्छू आदि। जिनके पास इन तीनके अतिरिक्त चौथी आँख भी हो वे चतुरिन्द्रिय जीव हैं जैसे—मक्खी, भँवरा आदि। जिनके पास मनके अतिरिक्त सर्व इन्द्रियाँ हो उन्हे असज्ञी पचेन्द्रिय कहते है, जैसे—कुछ विशेष प्रकारके सर्प तथा मछली आदि। जिनके पास मनसहित सकल इन्द्रियाँ हो वे सज्ञी पचेन्द्रिय जीव हैं जैसे–मनुष्य, पशु, पक्षी आदि।

अन्य दर्शनकारोने सकल्प-विकल्पस्वरूप अन्तरग शक्तिको मन माना है, परन्तु जैन दर्शनमे मनका लक्षण कुछ अन्य ही है। इसीलिए यहाँ जीवके सज्ञी और असज्ञी ऐसे दो भेद हो जाने उचित हैं, जो अन्य दर्शनोमे नही पाये जाते। प्रकृतिजात स्वभावके अतिरिक्त देख-सुनकर कुछ अन्य बात भी सीख लें, जीवकी ऐसी शक्तिको यहाँ मन कहा जाता है। भले ही सकल्प-विकल्पकी शक्ति सभी जीवोमे सामान्य रूपसे पायी जाये, परन्तु नयी बात सीख लेनेकी शक्ति सभी जीवोमे नही पायी जाती। मनुष्य, घोडा आदि पशु, तोता आदि पक्षी जिस प्रकार सिखाने तथा पढानेपर नयी-नयी बातें सीख-पढ जाते हैं, चीटी-मक्खी आदि उस प्रकार सीख-पढ नही सकते। जिन जीवोमे इस प्रकार की शक्ति पायी जाती है उन्हें ही यहाँ सज्ञी अर्थात् समनस्क कहा गया है, और जिनमे यह शक्ति नही पायी जाती व असज्ञी अर्थात् अमनस्क कहे गये हैं। एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रिय तक वाले जीवोमे यह शक्ति सर्वथा नही पायी जाती, इसलिए वे सभी असज्ञी है। पचेन्द्रियोमे यद्यपि प्राय यह शक्ति पायी जाती है, परन्तु कुछ विशेष जातिके सर्प तथा

मछली आदि ऐसे भी पचेन्द्रिय जीव हैं, जिनमे यह शक्ति नही पायी जाती। वे असज्ञी पचेन्द्रिय है। शेष सभी पचेन्द्रिय जीव सज्ञी है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व वनस्पति ऐसे पांच प्रकार के एकेन्द्रिय जीव हैं। मिट्टी, पत्थर, लोहा, सोना आदि सर्व खनिज पदार्थ पृथिवी कहलाते है। जल, अग्नि, वायु सर्व-परिचित हैं। घास, फल, फूल आदिको वनस्पति कहते है। भले ही आजका जगत् इनको जड़ मानता हो, परन्तु वास्तवमे ये जीव हैं। इस बातकी सिद्धि आगे की जायेगी। ये पांच प्रकारके जीव क्योकि कीड़ो या मनुष्यो आदिकी भाँति चलते-फिरते नही हैं, इसलिए इन्हें स्थावर कहते है। द्वीन्द्रियसे लेकर सज्ञी पचेन्द्रिय तकके सर्व जीव क्योकि चल फिर सकते है, इसलिए उन्हें त्रस कहते है। इस प्रकार जीव दो प्रकारके होते हैं—त्रस तथा स्थावर।

वास्तवमे उपर्युक्त सभी भेद जीवके नही बल्कि उनके शरीरोके हैं। शरीर और जीव भले ही एकमेक दिखते हो और इसलिए आपको यह पता न चलता हो कि इनमे क्या भेद है। भले ही आप इस शरीरको ही जीव समझते हो अर्थात् इसे ही जानने-देखनेवाला समझते हो, पर वास्तवमे ऐसा नही है, क्योकि मृत्यु हो जानेपर शरीर पड़ा रह जाता है और वह जान-देख नही सकता। उसमे-से जो कुछ निकलकर चला गया है वह अमूर्तिक होनेके कारण आपके देखनेमे नही आता। वह कुछ है अवश्य। बस उसे ही जीव कहते है। वह इन्द्रियोसे दिखाई नही देता इसलिए वह अमूर्तिक है। यह अमूर्तिक जीव नित्य व सत् पदार्थ है। शरीर वास्तवमे जड़ है और अनित्य व असत् है। फिर भी चेतनयुक्त होनेके कारण इसे जीव कह दिया जाता है।

जीवोके उपर्युक्त भेदोको गौरसे देखनेपर पता चलता है कि जीवोके शरीर छह प्रकारके हैं—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रस। पृथिवी आदि पाँचो प्रकारके स्थावर जीवोके शरीर अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु व वनस्पति पाँचो ही जडवत् दीखनेवाले पदार्थ भिन्न जाति तथा स्वभाव- वाले हैं और भिन्न-भिन्न प्रयोगमे आते हैं। परन्तु कीडेसे लेकर मनुष्य पर्यन्त सभी त्रस जीवोके शरीर एक ही जाति तथा स्वभाव वाले है, क्योकि सभी रक्त मास आदिके बने हुए हैं। इसलिए काय या शरीरकी अपेक्षा जीवोके छह भेद हैं—पाँच स्थावर और एक त्रस।

अच्छे तथा बुरे कर्मोंके फलस्वरूप दु ख-सुख आदि भोगनेकी अपेक्षा जीवोको चार गतियोमे विभाजित किया गया है—नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देव। मनुष्योको छोडकर समस्त स्थावर तथा त्रस जीव तिर्यच गतिके कहलाते हैं। मनुष्य जीव मनुष्य गातिके है। ये दोनो गतियाँ तो सर्व प्रत्यक्ष हैं, परन्तु इनके अतिरिक्त भी जीवोकी दो गतियाँ और है—नरक और देव। ये दोनो क्योकि हमारे प्रत्यक्ष नही हैं, इसलिए इनपर विश्वास करना कठिन पडता है, परन्तु आगे इनकी सिद्धि कर दी जायेगी। नरक गतिके जीवोम प्रचुर दु ख होता है। तिर्यंचगतिमे यद्यपि दु ख है परन्तु नरकसे फिर भी कम। मनुष्योमे दु ख व सुख दोनो हैं, परन्तु देवोमे प्रचुर सुख ही होता है। इस प्रकार गतिकी अपेक्षा जीव चार प्रकारके होते हैं।

इन सभी जीवोमे कुछ स्थलचर अर्थात् पृथिवीपर चलनेवाले हैं, कुछ जलचर अर्थात् जलमे रहनेवाले है और कुछ नभचर अर्थात् आकाशमे उड़नेवाले है। इस प्रकार भी जीवोके तीन भेद किये जा सकते है। सर्व प्रकारके जीवोमे कुछ तो बडे हैं जो हमे

आँखसे दिखाई देते है, परन्तु कुछ इतने छोटे हैं कि उन्हे आँखसे नही देखा जा सकता। वे सूक्ष्म-निरीक्षण-यन्त्र अर्थात् माइक्रोस्कोप द्वारा देखे जा सकते है। इनको आजका विज्ञान वैक्टेरियाके नामसे पुकारता है। ये वैक्टेरिया भी दो प्रकारके होते है—स्थावर तथा त्रस। ये सभी तिर्यंच गतिके माने जाते हैं।

सभी प्रकारके बडे तथा छोटे ये जीव भी आगे अनेको जातियोमे विभाजित हो जाते हैं, जैसे पृथिवीके खनिज पदार्थ अनेको प्रकारके हैं। वनस्पतियाँ घास-फूस आदि अनेको प्रकारकी हैं। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय कीडे अनेको प्रकारके है। त्रीन्द्रिय आदि भी अनेको प्रकारके हैं। चारो गतियोके सभी भेद-प्रभेदोको जोड़ा जाये तो चौरासी लाख होते है। इन्हे ही जीवकी चौरासी लाख योनि कहते हैं।

इनमे-से मनुष्य तथा पशु-पक्षी तो माताके गर्भसे उत्पन्न होते है इसलिए गर्भज कहलाते हैं, परन्तु स्थावर तथा द्वीन्द्रियसे चतुरिन्द्रिय पर्यन्त तकके सर्व त्रस जीव माताके गर्भसे उत्पन्न नही होते। ऐसे सर्व जीवोको सम्मूर्छिम कहते है। गर्भज जीव तीन प्रकारके होते है—अण्डज, जेरज तथा पोतज। अण्डेसे उत्पन्न होने वाले अण्डज कहलाते हैं, जैसे—मुर्गी, कबूतर आदि। झिल्लीमे लिपटे हुए पैदा होनेवाले जेरज है जैसे—गाय, मनुष्य आदि। बिना ही झिल्ली अथवा अण्डेके उत्पन्न होकर तुरत ही भागने-दौड़नेवाले पोतज हैं जैसे—हरिन।

जिस प्रकार गर्भसे बाहर आनेके पहले गर्भमे रहनेवाले मास-पिण्डमे जीव रहता है उसी प्रकार अण्डेमे रहनेवाले सफेद तथा पीले रसमे भी जीव अवश्य रहता है। अण्डेको निर्जीव नही समझना चाहिए। अण्डा तथा मछली आदि सब जीव हैं और वे भी त्रस जातिके, जिनका शरीर मांसरूप है।

जीव सदा ही उपर्युक्त शरीरोको धारण करता तथा छोडता रहता है। अर्थात् जन्म-मरण करता हुआ एक शरीरसे दूसरे शरीरमे और दूसरेसे तीसरेमे बराबर घूमता रहता है। जीवके इस प्रकार जन्म-मरण करनेका नाम ही ससार है। यही सबसे बड़ा दुःख है। इसीसे ज्ञानी जन ससारको बन्धन कहते हैं और इसे छोडकर कुछ विशेष प्रकारकी आत्म-साधना किया करते हैं, जिससे उनका जन्म-मरण टल जाता है। फिर उन्हे नवीन शरीर धारण करना नही पड़ता। इसीका नाम मोक्ष है।

संसारी जीवोका स्वभाव सदा मलिन रहता है। उसमे अहंकार, क्रोध, मान, माया, लोभ, तृष्णा, ममता, शोक, भय आदि भाव बने रहते हैं। उसके इन मलिन भावोका नाम कषाय है। इन कषायोके कारण मन सदा चचल व चिन्तित रहता है, इसलिए ये भाव जीवनपर भार है। ज्ञानी जन भरसक इनको दबानेका प्रयत्न किया करते हैं, और धीरे-धीरे अभ्यास करते हुए एक दिन पूर्ण उज्ज्वल हो जाते हैं। वही इनकी मुक्ति व मोक्ष है। कषायोंके घटानेके अभ्यासका नाम ही मोक्ष मार्ग है।

८. अजीवका संक्षिप्त परिचय

अजीव यद्यपि इस दृष्ट जगत्को कहा गया है, परन्तु वास्तवमे वह दो प्रकारका होता है—एक मूर्तिक और दूसरा अमूर्तिक। जो इन्द्रियोसे जाना देखा जा सके वह मूर्तिक जैसे—ईंट, पत्थर, कपड़ा आदि सर्व दृष्ट जगत् मूर्तिक है। जो इन्द्रियोंसे जाना न जा सके वह अमूर्तिक है, जैसे—आकाश अर्थात् स्पेस (space)। मूर्तिक जड पदार्थको आगम भाषामे भौतिक पदार्थ या पुद्गल कहा जाता है, यह बात पहले बतायी जा चुकी है। यह सारा दृष्ट जगत् भौतिक अजीव पदार्थ है, पुद्गल है। यद्यपि यह अनेक रूपो व भेद-प्रभेदोवाला तथा अत्यन्त चित्र-विचित्र दिखाई

देता है परन्तु वास्तवमे जो दिखाई देता है वह सत् नही है, वह उस पुद्गलकी परिवर्तनशील अवस्थाएँ अथवा पर्यायें है। इसीलिए ज्ञानी जन इसको अनित्य, मिथ्या, माया तथा प्रपच कहते है। सभी जीवोके शरीर भी पुद्गलकी ही अवस्था-विशेष है इसलिए यह भी अनित्य है, मिथ्या है, माया है, प्रपच है।

मूल पुद्गल पदार्थ (element) तो परमाणु है, जिससे कि ये सभी पदार्थ बने हैं। अनेको परमाणु भिन्न-भिन्न प्रकारसे मिल-जुलकर इन पदार्थोका सृजन करते हैं। भले ही मिल-जुलकर उससे चित्र-विचित्र पदार्थ बन जायें, पर वह परमाणु स्वयं एक ही प्रकारका है। इसका विशेष कथन आगे किया जायेगा। वह इतना सूक्ष्म होता है कि आँखोसे तो क्या माइक्रोस्कोपसे भी दिखाई नही दे सकता। केवल उसके कार्यभूत इन दृष्ट पदार्थोंपर-से उसकी सत्ताका अनुमान लगाया जा सकता है। मूर्तिक जड पदार्थोंमे परमाणु ही सत् है। ये लोकमे अनन्तानन्त हैं। यद्यपि स्वयं इन्द्रियोसे दिखाई नही देता, परन्तु इससे बने हुए पदार्थ दिखाई देते हैं, इसलिए यह भी मूर्तिक है। अनेक परमाणुओके मिल जानेपर जो पदार्थ बनते हैं उन्हे 'स्कन्ध' कहते हैं। वे बडे-छोटे अनेक आकारो तथा अनेक स्वभावोको धारण करते हैं।

परमाणु हो या स्कन्ध, है दोनो पुद्गल ही। इसमे मुख्य चार गुण है—स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण। ठण्डा-गर्म, चिकना-रूखा आदि स्पर्श कहलाते है। खट्टा-मीठा आदि रस कहलाते हैं। सुगन्ध-दुर्गन्ध गन्ध कहलाते हैं। लाल, पीला आदि रग कहलाते हैं। लोकके सभी पदार्थोंमे केवल ये पुद्गल स्कन्ध ही ऐसे है जो कि टूट सकें या जुड़ सकें और इसका कारण भी यही है कि यह मूल पदार्थ नही, सत् नही। सत् या मूल पदार्थको तोड़ा-फोड़ा नही जा सकता। वह अखण्ड होता है और वह परमाणु ही है।

अमूर्तिक अजीव पदार्थ चार है—धर्म, अधर्म, काल तथा आकाश। यहाँ धर्म-अधर्मका अर्थ पुण्य-पाप न समझना। यहाँ ये शब्द एक विशेष जातिके पदार्थोंके नाम है। इसी प्रकार कालका अर्थ घण्टा, मिनट आदि न समझना, यह भी एक विशेष प्रकारका पदार्थ है। आकाश खाली स्थानको कहते है। ये ऊपर जो नीला-नीला दीखता है वह आकाश नही क्योकि आँखोसे दिखाई देनेके कारण वह मूर्तिक है। आकाश अमूर्तिक है। यह जो अपने चारो ओर ऊपर तथा नीचे खाली स्थान पडा है, जिसमे कि आप चलते, फिरते तथा रहते है, और अन्य वस्तुओको उठाते धरते हैं, जिसमे कि वायुयान अथवा स्पुत्निक दौडते फिरते हैं, जिसमे कि यह पृथिवी तथा चन्द्र-सूर्य आदि यथास्थान टिके हुए हैं उसे आकाश कहते है। आधुनिक भाषामे इसे स्पेस (space) कहते है। यह तोडा-फोडा या काटा-छाँटा नही जा सकता। न ही अग्नि आदिसे जलाया या गलाया जा सकता है, क्योकि अमूर्तिक है। इसीलिए यह नित्य है और सत् है। यह अत्यन्त व्यापक तथा महान् है, क्योकि जहाँ कही भी दृष्टि फैलाकर देखो, और कुछ दिखाई दे या न दे आकाश तो वहाँ है हो। यह सर्व ही जीव तथा पुद्गलोको अपने भीतर टिकने तथा रहनेके लिए स्थान देता है। यही इसका मुख्य लक्षण अथवा गुण है।

धर्म, अधर्म तथा काल ये तीनो भी अमूर्तिक पदार्थ हैं, इसीलिए हमे दिखाई नही देते। आकाशके ही साथ एकमेक होकर पडे हैं। अकाश तो अमूर्तिक होनेपर भी अपने चारो तरफ देखकर प्रतीतिमे आ जाता है, पर ये तीनो तो किसी प्रकार भी प्रतीतिमे नही आ सकते। इसलिए साधारणत. इनकी सत्ता पर विश्वास होना कठिन पडता है। परन्तु शास्त्रोमे इनका उल्लेख है, अतः इनका भी नाम व लक्षण जान लेना योग्य है, ताकि शास्त्र पढते

हुए कही इन पदार्थोंका नाम आने पर उलझ न जायें। आगे अजीव पदार्थका विस्तार करते हुए किसी प्रकार इन्हे सिद्ध भी किया जायेगा। परन्तु यहाँ तो इतना मात्र समझो कि ये तीनो जीव तथा पुद्गल के लिए मात्र सहायक होते हैं। धर्म पदार्थ इन दोनो को गमन करनेमे अदृष्ट रहकर सहायता देता है और अधर्म द्रव्य उन्हे ठहरनेमे सहायता देता है। इसी प्रकार सर्व ही पदार्थोंके परिवर्तन करनेमे काल द्रव्य सहायता करता है। ये ही उनके मुख्य लक्षण या गुण हैं।

९ जीव-अजीवका नाटक

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि लोकमे दो जातिके पदार्थ हैं—एक चेतन और दूसरा जड़। चेतनसे अन्त करण या अन्तरंग जीवनका निर्माण होता है और जडसे शरीरका। इन दोनोका सयोग ही विश्वकी समस्त व्यवस्था करता है। ये दोनो मिल-जुलकर एकमेक भी हो जाते हैं और बिछुड़ भी जाते हैं। यह नाटक है जिसके रहस्यको भौतिक जगत् समझ नही सकता। यही वह प्रपच तथा माया है जिसमे वह उलझा हुआ है। वास्तवमे यह सर्व प्रपंच अनित्य है, असत्य है, तदपि मानव इसे सत् मानकर इसके पीछे दौड रहा है।

इस रहस्यको समझनेके लिए भौतिक विज्ञानकी नही अध्यात्म विज्ञानकी आवश्यकता है, जो अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण केवल विचारणाका विषय है। इसे व्यर्थ समझकर मत छोड़ें, क्योकि यह एक विज्ञान है, और विज्ञान कभी व्यर्थ नही हुआ करता। धर्मका सम्बन्ध इसी विज्ञानसे है, क्योकि जैसा कि पहले बताया जा चुका है, धर्म नाम सुख तथा शान्तिका है और उसका निवास चेतनमे है, शरीरमे नही।

१०. पदर्थों को जाननेका प्रयोजन

इन सब पदार्थोको बतानेका प्रयोजन यहाँ आपको भौतिक विज्ञान पढाना नही है क्योकि यह विषय अध्यात्म विज्ञानके अन्तर्गत आया है। आत्मकल्याण अर्थात् सुख व शान्तिकी प्राप्ति ही एकमात्र इसे जाननेका प्रयोजन है सो कैसे ? यदि आप यह जान जायें कि ये सब दृष्ट जगत् तथा ये शरीर, कुटुम्ब, धन आदि पदार्थ अनित्य हैं, प्रपच है, यदि आप यह जान जायें कि जन्मसे मरण पर्यन्त कर्तव्य-अकर्तव्यको भूलकर सदा अन्याय तथा अनर्थमे वर्तन करते हुए भी क्यो आपके हाथ चिन्ताओके अतिरिक्त कुछ नही आता, मृत्युके समय क्यो सब कुछ यहाँ ही रह जाता है, यदि यह सब आपका है तो आपके साथ ही क्यो नही जाता—इत्यादि, तो आपकी प्रवृत्तिमे अन्तर पड़ जाये, आपको सन्तोष आ जाये, और आपके सर्व व्यवहार सत्य तथा न्यायपूर्वक होने लगें।

भैया ! यह सब दृष्ट प्रपच माया जाल है, जिसमे समस्त ससार उलझकर अपनी चेतन सत्ताको भूल बैठा है। यही कारण है कि जीवनमे सर्व उपर्युक्त समस्याएँ तथा अधर्म चले आ रहे है। आप पदार्थके स्वभावको नही जानते, आप मूल पदार्थको देखनेका प्रयत्न नही करते, आप सत्को देखनेका प्रयत्न नही करते, केवल बाहरमे ही जो कुछ देखने व जाननेमे आता है उसे ही सत् मान बैठते हैं और इसीलिए उसके पीछे दौड चले जा रहे हैं। हाथ क्या आना है ? बालू मथनेका परिश्रम करके भी मक्खन कौन प्राप्त कर सकता है ? यदि आप यह जान जाये कि यह सर्व माया तथा प्रपच है, विनाशिक तथा असत् है तो इसके पीछे आपकी जो व्यर्थ दौड़ हो रही है वह छूट जाये। तब बजाय असत्के आप सत्की खोज करें और उसीको प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। वह क्योंकि नित्य है, इसलिए एक बार हाथ आकर फिर विनष्ट न होगा,

और इस प्रकार अपने पुरुषार्थ की सफलता देखकर आप सन्तुष्ट तथा तृप्त हो जायेंगे। आनन्द-विभोर हो जायेंगे।

सत् तथा असत्का निर्णय कर लेनेपर आप जगतमे रहते हुए भी कमलकी भाँति भिन्न रहेंगे। अपने हर कार्यमे आप कर्तव्य-अकर्तव्यका विवेक सदा सामने रखेंगे, क्योकि तब आपको अपनी आन्तरिक नित्य चेतन सत्ता अधिक प्रिय होगी अपेक्षा इस बाह्य अनित्य प्रपचके, जिसे आप माया तथा धोखा समझ लेंगे। जालमे पक्षी उसी समय तक फँसते हैं जब तक कि उन्हे यह पता नही चल जाता कि इस सुन्दर दानेके नीचे जाल बिछा हुआ है, इसी प्रकार इस ससार चक्रमे व्यक्ति उसी समय तक फँसता है जब तक कि उसे यह पता नही चलता कि इन दृष्ट सुन्दर आकर्षणो तथा प्रलोभनोके नीचे माया छिपी हुई है। जिस प्रकार यह जानकर कि यह तो जाल है, पक्षी उसपर फैले हुए दानोका लालच नही करता और इस प्रकार उसमे फँस नही पाता, इसी प्रकार यह जानकर कि यह विश्वका समस्त दृष्ट विस्तार केवल माया है, प्रपच है, व्यक्ति इसमे यत्र तत्र फैले हुए आकर्षणो तथा प्रलोभनोका लालच नही करता और इस प्रकार उसमे फँस नही पाता। जालमे न फँसना ही पक्षीकी स्वतन्त्रता है, वही उसका आनन्द है। इसी प्रकार माया, मोह, ममता आदिमे न फँसना ही व्यक्तिकी स्वतन्त्रता है, वही उसका आनन्द है।

बस यही है इस सर्व पदार्थ-विज्ञानको जाननेका प्रयोजन। भैया! तुझे इस मायाके चक्करमे पडे हुए अनन्तकाल बीत गया, जीवनके पीछे जीवन आये और चले गये। परन्तु सदा तू इस मायाके पीछे दौड़ता रहा। जिस प्रकार मृगको रेत ही दूरसे जल दिखाई देता है और वह उसके पीछे दौड़-दौडकर अपने प्राण खो देता है पर उसकी प्यास नही बुझती, उसी प्रकार इस मायाके

पीछे दौडते-दौडते तू अपने प्राण खो देता है, पर तेरी तृष्णा शान्त नही होती। अब इस पदार्थ-विज्ञानको पढकर सत् तथा असत्मे, नित्य तथा अनित्यमे, निज स्वरूप तथा मायामे भेद समझ, सत्को प्राप्त कर और मायाके पीछे दौडना छोड। यही है सच्चे तथा स्थायी सुख की प्राप्तिका उपाय। बस यही है इस विज्ञानको पढनेका प्रयोजन।

अब इसी प्रयोजनकी सिद्धिके अर्थ चेतन तथा जड दोनो पदार्थोंका कुछ विस्तारके साथ विवेचन करता हुँ। उसे धैर्य तथा शान्तिके साथ पढ, युक्ति तथा तर्क द्वारा उसका मनन कर, और अनुभव द्वारा उसको खोजनेका प्रयत्न कर।

□

४

जीव पदार्थ सामान्य

१ जीव कौन, २. शरीर तथा जीव दो पदार्थ; ३. शरीर जड तथा जीव चेतन, ४. चेतनका वास्तविक स्वरूप; ५. अन्त करणका स्वरूप; ६. जीवका स्वरूप, ७. जीवका आकार; ८. जीवका अमूर्तत्व, ९. जीवके प्रदेश, १० जीवका परिणाम; ११ जीवकी संकोच विस्तार शक्ति; १२. शरीर प्रमाण जीवकी सिद्धि; १३. जीवकी एकता तथा अनेकताका समन्वय, १४ जीवोकी गणना, १५. पुनर्जन्मकी सिद्धि; १६ ससार तथा मोक्ष।

१. जीव कौन ?

अहो चैतन्यघनका अतुल प्रकाश ! जिसने प्रेरित करते हुए तथा चुटकियाँ भरते हुए इस गहन भोग-विलासके अन्धकारमे मुझे आज यह सौभाग्य प्रदान किया कि किंचित् मात्र अपनी महिमाके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो सकूँ। धर्मकी जिज्ञासाके सारभूत शान्ति तथा उसकी प्राप्तिके लिए पदार्थ-विज्ञान सम्बन्धी सामान्य बातें जान लेनेके पश्चात् आज मेरे अन्दर यह जाननेकी जिज्ञासा जागृत हुई है कि मैं कौन हूँ जिसमे कि यह शान्तिकी पुकार उठ रही है, मै कहाँ रहता हूँ और कहाँसे आया हू, मुझे कहाँ जाना है और क्या करना है। अर्थात् वास्तवमे चेतन या जीव क्या है ?

आजके भौतिक युगमे यद्यपि मानवको अपनी ज्ञान वृद्धिपर

बडा गर्व है। वह समझता है कि उसने सब कुछ जान लिया। परन्तु आश्चर्य है कि वह यह न जान सका कि वह स्वय कौन है। और यदि स्वयं ही को न जान सका तो सब कुछ जानकर भी क्या जाना ? अन्य सारी दुनियाकी बात जानकर भी जिसे यह पता नही कि तेरा घर कहाँ है, तो इधर-उधर ठोकरें खानेके अतिरिक्त और करेगा क्या ? यदि यही न जान सका कि वह सुख तथा शान्ति कहाँ रहती है, जिसके लिए कि तू इतना अथक परिश्रम कर रहा है, तो तू ही बता कि उसे प्राप्त करना क्या तेरे लिए सम्भव हो सकेगा ? सूई घरमे गिर जाये तो गलीमे खोजनेसे काम न चलेगा, घरमे ही प्रकाश करके खोजना होगा। जब तू अपनेको ही न जान सका, जिसके लिए कि यह सब कुछ है तो इस सबको भोगेगा कौन ? भोजन सामने रख कर भी यदि यह न जान सका कि इसे कहाँ खाया जाये तो इसे खायेगा कौन ? और पेट किसका भरेगा ? मुँहमे डालनेकी बजाय पेटपर पोत लेगा, क्योकि भूख तो वहाँ ही प्रतीत हो रही है। और यदि ऐसा कर लिया तो तू ही बता कि क्या पेट भरेगा ? उसके लिए खानेसे पहले यह जानना होगा कि इसे मुँहसे खाया जाता है। भूख भले पेटमे हो पर खाया पेटसे नही जाता। इसी प्रकार यह सर्व भौतिक साधन भले ही शरीरके लिए हो पर इन्हे भोगनेवाला शरीर नही कोई और ही है। यही कारण है कि शरीरके सर्व साधन उपलब्ध होनेपर भी मानव आनन्द तथा शान्तिका अनुभव नही कर रहा है। इन सबको भोगनेवाला वह असल मानव कौन है। यह सब कुछ जिसके जाननेमे आ रहा है, यह दु:ख या सुख जिसके महसूस करनेमे आ रहा है, यह सकल विज्ञानका प्रवाह जहाँसे निकला चला आ रहा है, वह जाननेवाला महिमावन्त साधन तथा पदार्थ क्या है ? विना उसको जाने तेरा सब कुछ जानना इकाई-विहीन शून्यवत् निरर्थक है।

सबको जानकर भी अपनेको न जानना ही तेरी सबसे बड़ी भूल है। इसीको अन्धकार कहा जा रहा है। कहाँ है तू ? तनिक प्रकाशमे आकर देख, उस प्रकाशमे जो कि गुरुजन तुझे दे रहे हैं। भैया! एक बार तनिक उसकी गहनताओमे डुबकी लगाकर उस परम तत्त्वकी ओर देख, क्योंकि वह बाहरमे दीखनेवाला नही है। जो कुछ तुझे दिखाई दे रहा है, तथा जिसपर तुझे विश्वास है, वह सब तू नही है और जो तुझे दिखाई नही दे रहा है तथा जिसपर तुझे विश्वास नही है, वही तू है। अर्थात् बाह्य जीवनमें नही, तू अन्तर-जीवनकी गुफामे छिपा बैठा है। वहाँ ही उतरकर देख, इन आँखोसे नही अन्तरकी आँखोसे, अन्त.करणसे, अन्तरकी विचारणाओ तथा सवेदनाओ से।

२. शरीर तथा जीव दो पदार्थ

पहले धर्मका स्वरूप दर्शाते हुए तुझे यह बात बतायी गयी है, कि जीवनके दो रूप हैं—एक बाहरका रूप, दूसरा अन्दरका रूप। बाहरका रूप है शरीर व इन्द्रियाँ तथा अन्दरका रूप है अन्त.-करण अर्थात् बुद्धि व मन। शरीर व इन्द्रियाँ बाहरमे दिखाई देती हैं, पर अन्त.करण केवल अन्दरमे अनुभव किया जा सकता है। शरीर व इन्द्रियोको सब जानते है, इसलिए उन्हे बतानेकी आवश्यकता नही, अन्त करणको कोई नही जानता इसलिए उसे बतानेकी आवश्यकता है। उसका विस्तृत स्वरूप मनोविज्ञान तथा कर्मसिद्धान्तके रूपमे 'कर्मरहस्य' नामकी पुस्तकमे बताया गया है। पाठकजन उसे पढ़कर इसका परिचय अवश्य प्राप्त करें। अब देखना यह है कि बाह्य और अन्तरग इन दोनोमे वास्तविक जीवन कौन-सा है।

जीवन कहते हैं उसको जो कि जीवे। जीना कहते हैं उसे जो जाने, देखे तथा महसूस करे। अब विचारिए कि इस डेढ मनके

पिण्डमे जानने, देखने तथा महसूस करनेवाला कौन है—यह शरीर या अन्त करण ? यद्यपि आँखोसे या भौतिक दृष्टिसे देखनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि यह शरीर ही अपनी आँखोसे देखता है तथा अन्य इन्द्रियोसे जानता है और दु ख-सुख महसूस करता है। यद्यपि भौतिक दृष्टिसे देखनेपर ऐसा महसूम होता है कि बाह्य और अन्तरंग जीवन कोई दो स्वतन्त्र पदार्थ नही हैं वल्कि एक ही पदार्थके दो रूप हैं, और अब तक बताया भी ऐसा ही गया है, परन्तु वास्तवमे ऐसा नही है। शरीर कुछ और पदार्थ है और अन्त करण कुछ और। शरीर भौतिक है, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पाच भूतोके सग्रहसे उत्पन्न हुआ है। परन्तु अन्त.करण चेतन है, ज्ञान-दर्शन तथा सवेदन रूप है। शरीर रूप-रगवाला है और अन्त करणका कोई रूप नही। अथवा जो कुछ यह विचारे या देखे वही इसका रूप है। दोनोकी जातिमे भेद है, इसलिए दोनो ही एक कदापि नही हो सकते। यह शरीर तथा अन्त.करण दो पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र पदार्थ हैं, शरीर जड है और अन्तःकरण चेतन[1]।

यह बात सुनकर आपको हँसी तो आ रही होगी, परन्तु कुछ विचार करके यदि निर्णय करोगे, तो बजाय मेरे ऊपर हँसनेके स्वय अपने ऊपर हँसने लगोगे। देखिए 'एक' उन्हे कहते हैं जो सदा एक रहे जैसे कि अग्नि व उष्णता सदा एक साथ रहते हैं। जहाँ अग्नि होती है वहाँ उष्णता अवश्य रहती है। एक क्षणको भी अग्नि बिना उष्णताके नही रह सकती। इसी सिद्धान्तको इधर

१. जैसा कि आगे बताया जायेगा, अन्त करण यद्यपि चेतन नही है, तदपि इसका आश्रय लिये बिना क्योकि चेतनका परिचय दिया जाना सम्भव नही है, इसलिए प्रथम भूमिपर उसे ही चेतन मानकर कथन किया जा रहा है।

भी लागू कीजिए। शरीर व अन्त करण एक तभी माने जा सकते है यदि ये दोनो एक साथ रहते हो, एक क्षणको भी शरीर विना अन्त.करणके न रहता हो। अब आप ही बताइये कि क्या यह सत्य है कि ये दोनो एक हैं।

भैया! भले ही दूध-पानीवत् मिल-जुलकर एकमेक हो जानेके कारण ये वर्तमानमे तुझे एक सरीखे दीख रहे हो, अर्थात् शरीर ही चेतन दीख रहा हो, परन्तु इसकी पोल उस समय खुलती है जबकि मृत्युके समय वह ज्योति इसमेसे निकल जाती है जिसके बल-बूतेपर कि यह डीगे हाक रहा है। अब इससे पूछो कि भो शरीर! तू तो चेतन था न, अब आँख होते हुए भी तू क्यो नही देख सकता नाक व कान होते हुए भी तू क्यो नही सूँघ व सुन सकता, जिह्वा होते हुए भी तू क्यो नही चख व बोल सकता, हाथ-पाँव होते हुए भी तू क्यो नही इस पुस्तकको पकड तथा चल-फिर सकता? आखिर कहाँ चली गयो तेरी सर्व स्फुर्ति? कोई भी अग भग या खराब नही हुआ है, पहलेकी भाँति ही सुगठित है, सारी इन्द्रियाँ भी तेरे पास हैं। आखिर किस बातकी कमी है जो कि तू अचेत है? इसके पास इसका अब कोई उत्तर नही, इसका सर्व दर्प विदा हो चुका है, मानो चेतनकी सत्ताको आज यह स्वीकार कर रहा है।

आज यह स्पष्ट कहता हुआ प्रतीत हो रहा है कि भो चेतन! मै बहुत लज्जित हूँ। आज तक सदा मैने तेरी अवहेलना की, परन्तु अब जान पाया कि तेरे तेजसे ही मै तेजवन्त था, तेरे प्रतापसे ही मैं प्रतापवन्त था। मैं समझता था कि आँख देखती है, परन्तु वास्तवमे आँखके पीछे बैठा तू ही देखता है। आँख तो केवल तेरे देखनेका साधन था, जैसे कि आँखके लिए चश्मा। जिस प्रकार चश्मा नही देखता, पर चश्मेके पीछे बैठी हुई आँख ही

देखती है, उसी प्रकार आँख नही देखती पर उसके पीछे बैठा हुआ तू ही देखता है। भले ही चश्मेके बिना आँख न देख सके पर इसपर से यह नही कहा जा सकता कि चश्मा देखता है, इसी प्रकार भले ही आँखके बिना तू न देख सके पर इसपर-से यह नही कहा जा सकता कि आँख देखती है। इसी प्रकार सर्व इन्द्रियोके सम्बन्धमे निश्चित करके आज मैं तेरी शरणमे आया हूँ। तू मुझे छोडकर न जा। मैं तेरे बिना मुर्दा हूँ। केवल मिट्टी हू, जिसे चितामे रखकर फूँक दिया जायेगा। तू ही वास्तविक तत्त्व है।

अब तू ही बता कि चेतन कौन है—शरीर या अन्त करण ? अब तू ही निर्णय कर कि ये दोनो एक हैं कि दो ? भैया ! जो कुछ इस मिट्टीके ढेरमे-से निकल गया है, जिसके रहनेपर ही ये हाथ-पाँव हिलते थे, जिसके रहनेपर ही जिह्वा चलती तथा बोलती थी, जिसके रहनेपर ही नाक-कान सूँघते तथा सुनते थे और जिसके रहनेपर ही यह आँख देखती थी, वही अन्त करण है, वही चेतन है, वही वास्तविक तत्त्व है। वही जानने, देखने तथा महसूस करनेवाला है। आज वह अपनी समस्त शक्तियोको समेटकर इसमे-से निकल गया और शरीर अकेला पडा रह गया। अत यह सिद्ध है कि शरीर तथा अन्त करण एक नही दो है।

३ शरीर जड तथा जीव चेतन

अब यहाँ सिद्धान्त निकाल लीजिए कि शरीर किसे कहते है और इसमे क्या-क्या गुण हैं, तथा अन्त करण किसे कहते हैं और इसमे क्या-क्या गुण हैं। अग्नि की उष्णतावत् गुण सदा पदार्थके साथ रहते है, इसलिए जो तथा जितना कुछ इस मुर्दा हालतमे शरीरके साथ रहा दिखाई देता है, वह तथा उतना मात्र ही शरीरका स्वरूप है, तथा जो व जितना इसमे-से लुप्त हो गया है

वह सब अन्त करणका था इतना समझ लीजिए। भले ही निकलकर जाता हुआ दिखाई न देता हो परन्तु निकलकर लुप्त हो जानेवाली शक्तियाँ तो ध्यानमे है ही। बस उतना कुछ ही चेतनका स्वरूप है।

हम देखते है कि चमडे-हड्डी का ढाँचा मात्र पडा है, जिसमे कुछ रूप एवं रग है, कुछ स्वाद एव गन्ध है, तथा कोमल कठोर आदि कुछ स्पर्श है। बस इतने कुछ ही इस शरीरके गुण है। क्योंकि यही सर्व गुण मिट्टीमे पाये जाते हैं इसलिए कहा जा सकता है कि शरीर वही पृथ्वी तत्त्व है, जिसमे रूप, रस, गन्ध व स्पर्श पाये जाते हैं, इसके अतिरिक्त कुछ नही। दूसरी ओर अन्त करण या चेतन तत्त्व है, जिसमे जानना, देखना, विचारना तथा महसूस करना आदि गुण पाये जाते हैं, क्योंकि ये सर्व शक्तियाँ शरीरमे-से लुप्त हो गयी हैं।

अत. सिद्धान्त बन गया कि जो जाने-देखे सो चेतन और जो जान-देख न सके सो अचेतन। चेतनको जीव कहते हैं और अचेतन को जड़। अन्त.करण चेतन है और शरीर जड़। अन्त.करण ही जीता है शरीर नही। इसलिए अन्तरग जीवन ही वास्तविक जीवन है, यह जीवन नही। सुख या शान्तिका सम्बन्ध उस अन्तरग जीवनसे ही है बाह्य जीवनसे नही क्योंकि उसमे महसूस करनेकी शक्ति नही। अन्तरंग जीवनको हम चेतन या जीव कहा करेंगे और बाह्य जीवनको जड या अजीव। इस चेतन पदार्थका ही विस्तृत स्वरूप दर्शाता हूँ।

४. चेतनका वास्तविक स्वरूप

इन्द्रिय व शरीरकी तो वात नही, वास्तवमे चेतन तो मन तथा वुद्धिके भी परे है अर्थात् विकल्पो व विचारणाओसे भी उसका

स्पर्श नही किया जा सकता। वह केवल अन्तरकी गहनतम गुफामे उतरकर देखा तथा अनुभव किया जा सकता है। इस प्रकारसे देखनेको स्वानुभव कहते हैं। जिस प्रकार किसी पदार्थको स्पर्श करनेपर उसके ठण्डे तथा गर्मपनेका अथवा कोमल तथा कठोरपनेका अनुभव होता है, जिस प्रकार किसी पदार्थ की सुन्दरताको देखकर कुछ आकर्षण तथा विकर्षणका अनुभव होता है, जिस प्रकार किसी इष्ट या अनिष्ट शब्दको सुनकर कुछ हर्ष तथा विषाद का अनुभव होता है, उसी प्रकार अन्दरमे उतरकर सर्व विकल्पोसे अतीत उस एक अद्वितीय तेजके दर्शनसे जो अनन्त आनन्दका अनुभव होता है उसे ही स्वानुभव कहते हैं। अन्य सर्व विषयों सम्बन्धी सुख-दुःख, आकर्षण विकर्षण, हर्ष-विषाद आदि दृष्ट है, अत. उनका अनुभव तो समझमे आ जाता है, परन्तु इन सबसे अतिरिक्त वह स्वानुभव क्या है, यह बात समझमे नही आती। और न ही कोई उसका उदाहरण देकर बताया जा सकता है, क्योकि वह बहुत गुप्त है, तथा सूक्ष्म है। अबतक आपमे-से किसीने सम्भवत उसका दर्शन किया नही है। उदाहरण उसी विषयका दिया जा सकता है, जो जानने-देखने तथा अनुभव करनेमे कभी आया हो। परन्तु जो विषय बिलकुल आज तक जिसके जानने तथा अनुभव करनेमे नही आया उस व्यक्तिको उसका उदाहरण भी देकर कैसे समझाया जा सकता है? उसका उपाय केवल उसका साक्षात् अनुभव करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नही है।

मोटे रूपमे हम आपकी *अन्तर्ध्वनिको* ओर सकेत करके बता सकते हैं। प्रत्येक व्यक्तिको अपने अन्त करणमे दो प्रकारकी आवाजें सुनाई दिया करती हैं—एक आवाज उसे विवेकशून्य होकर केवल धन तथा भोगोकी प्राप्ति करनेकी, अथवा न्याय-अन्यायके विवेकसे शून्य होकर जिस-किस प्रकार भी अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकी

प्रेरणा किया करती है। इस आवाजको सस्कार कहते हैं। तथा दूसरी आवाज उसे अन्याय करनेसे रोका करती हैं। भले ही उस आवाजका तिरस्कार करके कोई अन्याय करे, झूठ बोले अथवा घूस ले परन्तु वह आवाज़ तो आती ही है जिससे सब परिचित है। उसे ही अन्तर्ध्वनि कहते है (इस विषयका विस्तार शान्ति पथ प्रदर्शन नामकी पुस्तकमे देखा जा सकता है)। जो अन्तर्ध्वनि कि व्यक्तिको सदा न्याय तथा हितकी ओर झुकनेकी प्रेरणा दिया करती है, जो अन्तर्ध्वनि कि सदा संस्कारका विरोध करके व्यक्तिको उससे हटनेका उपदेश दिया करती है, और आगे जाकर जो अन्तर्ध्वनि कि उसे बाहरमे शरीर तथा इन्द्रियोका, अन्दरमे बुद्धि हृदय वह मनकी समस्त चचल विचारणाओका, संकल्प-विकल्पोका, अथवा दु ख-सुखके द्वन्द्वोका त्याग करके, निर्विचार निर्विकल्प तथा निर्द्वन्द्व होनेकी प्रेरणा किया करती है, वह अन्तर्ध्वनि न बुद्धिकी आवाज़ है और न मनकी। वास्तवमे वह अन्त करणके भी भीतर हृदयमे स्थित चेतनकी या आत्मस्वभावकी आवाज है। इसलिए कहा जा सकता है कि 'चेतन' अन्त.करणसे भी परे है। अबतक अन्त.करणको ही जो चेतन बताकर समझाया जा रहा है, वह केवल अभ्यासरहित स्थूल बुद्धिवाले प्राथमिक जनोको समझाने मात्रके लिए ही बताया गया है। वास्तवमे चेतन पदार्थ अन्त करण-से भी परे है।

उसको दर्शाना तथा बताना तो असम्भव ही है, फिर भी ऐसा समझ लीजिए कि जीवनमे-से यदि शरीर व इन्द्रियको निकालकर बाहर कर दें, बुद्धि व मनको भी निकाल दें, उनकी विचारणाओ, वेदनाओ व विकल्पोको भी निकाल दें, और सस्कारो को भी निकाल दें, तो क्या शेष रह जायेगा, यह विचारें ? इतना ही नही आगे जाकर इस अन्तर्ध्वनिको भी निकाल दें। अब जो कुछ

शेष रहा प्रतीति तथा अनुभवमे आये वही चेतन तत्त्व है। बात कुछ अटपटी-सी है, क्योकि इस प्रकार बाहर व भीतरसे सब कुछ निकाल देनेपर यहाँ कोरा शून्य रहा प्रतीत होने लगता है। परन्तु ऐसा न समझ भाई! शून्यकी जो प्रतीति तुझे हो रही है, उसका कारण यह नही है कि वहाँ कुछ है ही नही, बल्कि यह है कि तुझे इतनी सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेका अभ्यास नही है। सूक्ष्म दृष्टिसे देखने तथा अनुभव करनेपर वहाँ अब भी एक सूक्ष्म तेज प्रत्यक्ष होता है। जिसमे न विचारणा हे, न सुख-दुःखका द्वन्द्व और न सकल्प-विकल्प। वह पूर्ण निर्द्वन्द्व, निर्विकल्प व निराकार ज्ञानप्रकाश मात्र है। जिसके द्वारा तुझे शून्यकी प्रतीति हुई है बस वही वह तत्त्व है। शब्दकी शक्ति उसको स्पर्श नही कर सकती। उसे विशेष योगीजन ही देखनेको समर्थ हैं। उसके दर्शन अनन्त आनन्दमय होते हैं।

'यह निर्विकल्प प्रकाश मात्र तथा आनन्दमय ज्ञान क्या वस्तु है,' यह समझनेके लिए दृष्टान्त देता हूँ। कुछ सूक्ष्मतासे विचार करना। देखिए, नदीका जल यद्यपि तरगित तथा गँदला है, परन्तु क्या जल भी कभी तरगित या गँदला होता है? नदीमे-से यदि तरंग तथा गाद दोनोको दूर कर दिया जाये तो क्या वहाँ शून्य रह जायेगा? जिस प्रकार तरग व गँदलापन जलमे अवश्य है पर वह जलका रूप नही है, जल तो उनके पीछे रहनेवाला वह पदार्थ है जिसमे कि वे हैं। इसी प्रकार सकल्प-विकल्प तथा सुख-दु ख ज्ञानमे अवश्य है, पर वह ज्ञानका स्वरूप नही है। ज्ञान तो उनके पीछे रहनेवाला वह पदार्थ है, जिसमे कि वे प्रतिभासित हो रहे हैं। जिस प्रकार तरगें तथा गँदलापन दूर करनेपर भी जल अवश्य रहता है, परन्तु वह शान्त तथा स्वच्छ होता है, उसी प्रकार सकल्प-विकल्प तथा दु.ख-सुख दूर कर देनेपर भी ज्ञान अवश्य रह जाता है परन्तु वह निर्विकल्प तथा शुद्ध होता है।

और भी देखिए, स्वर्ण यद्यपि कडा, कुण्डल तथा डली आदिके रूपमे उपलब्ध होता है. परन्तु क्या कड़ा, कुण्डल या डली आदिकी आकृतियाँ स्वर्ण हैं ? स्वर्ण-पाषाणमे कीट तथा स्वर्णके जेवरमे यद्यपि ताम्र आदिका खोट उपलब्ध होता है, परन्तु क्या यह किट्टी व खोट स्वर्ण है ? स्वणमे-से यदि इन आकृतियोको तथा खोटको दूर कर दिया जाये तो क्या वहाँ शून्य रह जायेगा ? जिस प्रकार आकृतियाँ व खोट स्वर्णमे अवश्य हैं, पर वह स्वर्णका स्वरूप नही हैं, स्वर्ण तो उनके पीछे रहनेवाला वह पदार्थ है, जिसमे कि वे हैं। इसी प्रकार सकल्प-विकल्प तथा दु ख-सुख ज्ञानमे अवश्य हैं, पर वे ज्ञानके स्वरूप नही हैं। ज्ञान तो उनके पीछे रहनेवाला वह पदार्थ है जिसमे कि वे प्रतिभासित हो रहे हैं। जिस प्रकार सर्व आकृतियाँ तथा खोट दूर कर देनेपर स्वर्ण भले ही हाथोसे पकड़ा न जा सके परन्तु वह वस्तु स्वरूपसे जाननेमे अवश्य आ सकता है, जिसकी कोई आकृति-विशेष नही है। उसी प्रकार सकल्प-विकल्प तथा दु.ख-सुख दूर कर देनेपर भी ज्ञान अवश्य जाननेमे आ सकता है, जिसकी कोई आकृति या रूप-विशेष नही है।

जिस प्रकार सम्पूर्ण तरंगो तथा अशुद्धियोंसे शून्य जलको हम जल मात्र ही कह सकते हैं अन्य कुछ नही, और जिस प्रकार सम्पूर्ण आकृतियो तथा अशुद्धताओ से शून्य स्वर्णको हम स्वर्ण मात्र कह सकते हैं अन्य कुछ नही, उसी प्रकार सम्पूर्ण विकल्पसमूह तथा दु ख-सुखसे शून्य ज्ञानको हम ज्ञान मात्र कह सकते हैं अन्य कुछ नही। जिस प्रकार जल मात्र जलका स्वरूप है और स्वर्ण मात्र स्वर्णका स्वरूप है, उसी प्रकार ज्ञान मात्र ज्ञानका स्वरूप है। जिस प्रकार जलका स्वरूप तरलता, शीतलता तथा स्वच्छता मात्र ही जाननेमे आता है, और जिस प्रकार स्वर्णका स्वरूप पीलापन, भारीपन तथा चमकदार मात्र ही जाननेमे आता है, उसी

प्रकार ज्ञानका स्वरूप भी जानना, देखना तथा अनुभवन मात्र ही जाननेमे आता है। जिस प्रकार जलके स्वरूपकी कोई आकृति-विशेष नही होती, जिसे कि किसी प्रयोग-विशेषमे लाया जा सके, इसी प्रकार ज्ञानके स्वरूपकी भी कोई आकृति-विशेष नही होती जिससे कि किसी विशेष वस्तुको ही जाना जा सके। जिस प्रकार जल तथा स्वर्णका स्वरूप किसी स्थान-विशेषमे नही देखा जा सकता, विचारनेपर ज्ञानमे अवश्य आ जाता है, उसी प्रकार ज्ञानका स्वरूप भी किसी व्यक्ति-विशेषमे नही देखा जा सकता, पर विचारनेसे ध्यानमे अवश्य आ जाता है।

जिस प्रकार प्रकाशमे वस्तुएँ दीखती हैं परन्तु प्रकाश स्वय वे वस्तुएँ नही है, इसी प्रकार ज्ञानमे वस्तुएँ तथा संकल्प-विकल्प दीखते है, परन्तु ज्ञान स्वय उन वस्तुओ तथा संकल्प-विकल्पोस्वरूप नही है। जिस प्रकार प्रकाश व्यापक होकर वस्तुओको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार ज्ञान व्यापक होकर सर्व लोकको जानता है। इसीलिए ज्ञानके ज्ञानमात्र स्वरूपको ज्ञान, प्रकाश या ज्योति कह दिया जाता है, परन्तु वह कोई दीपकके प्रकाशवत् या सूर्यकी ज्योतिवत् नही है। जिस प्रकार कमरेमे रखे हुए दीपकका प्रकाश कमरेकी वस्तुओको ही प्रकाशित करता है उससे बाहरको नही, उसी प्रकार अन्त करणके सकल्प-विकल्पोमे रुका हुआ ज्ञान सकल्प-गत वस्तुओको ही जानता है उससे बाहरकी नही। जिस प्रकार कमरेसे निकलकर खुले आकाशमे रख देनेपर उस दीपकका प्रकाश वहाँ चारो ओर फैलकर एकदम वहाँकी सकल वस्तुओको प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार अन्त.करणके सकल्प-विकल्पोंसे निकालकर शून्यमे रख देनेपर ज्ञान व्यापकर विश्वकी सकल चेतन-अचेतन वस्तुओको युगपत् अर्थात् एकदम जना देता है।

जिस प्रकार दीपकका हीन प्रकाश अल्पमात्र वस्तुओको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार हम लौकिक व्यक्तियोका हीन ज्ञान अल्पमात्र वस्तुओको जानता है। जिस प्रकार सूर्यका पूर्ण प्रकाश सकल विश्वको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार योगी जनोका पूर्ण ज्ञान सम्पूर्ण विश्वको युगपत् जानता है। जिस प्रकार सूर्यके आगे बादलोका आवरण आ जानेसे सूर्यका प्रकाश बहुत धीमा हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानके आगे सकल्प-विकल्पोका आवरण आ जानेसे ज्ञानका प्रकाश भी बहुत धीमा हो जाता है। कमरेकी सीमाओमे रहनेवाला तुच्छमात्र भी प्रकाश यदि सम्पूर्ण वस्तुओको प्रकाशित करनेमे समर्थ नही तो इससे प्रकाशके स्वभावकी हीनता प्रकट नही होती, बल्कि दीपककी ही हीनता प्रकट होती है, इसी प्रकार सकल्प-विकल्पोकी सीमाओमे रहनेवाला हम लौकिक व्यक्तियोका तुच्छमात्र ज्ञान यदि सम्पूर्ण विश्वको जाननेमे समर्थ नही, तो इससे ज्ञानके स्वभावकी हीनता प्रकट नही होती, बल्कि व्यक्तिकी ही हीनता प्रकट होती है। जिस प्रकार बादलोके आवरणरहित सूर्यका प्रकाश पूर्ण होनेके कारण समस्त वस्तुओको युगपत् दर्शाता है इसी प्रकार सकल्पोके आवरण तथा सीमारहित योगियोका ज्ञान पूर्ण होनेके कारण समस्त विश्वको युगपत् जानता है।

ज्ञानका यह असीम तथा निरावरण रूप ही उसका स्वभाव है। वही चेतनका लक्षण है। क्योकि यह समस्त सकल्पो-विकल्पो आदिसे अर्थात् अन्त करणसे अतीत है, इसलिए इसे मन तथा बुद्धिसे परे कहा है। सकल्प-विकल्प चचल होते हैं, इस कारण इनमे रहनेवाला ज्ञान भी वायुसे ताडित दीपककी शिखावत् चचल होता है। ज्ञानकी चचलता ही व्याकुलताके रूपमे जानी जाती है। वही मानसिक दु ख है, वही आनन्दका आवरण है। सकल्प-विकल्पोसे रहित ज्ञान भी वायुरहित दीपशिखावत् स्थिर होता है।

स्थिरता ही ज्ञानका आनन्द है। इसलिए उस ज्ञान प्रकाशको आनन्दमय कहा गया है। इस प्रकार चेतनका जो 'निर्विकल्प तथा निर्द्वन्द्व आनन्दमय ज्ञान प्रकाश' मात्र लक्षण किया गया है सो ठीक ही है।

मैं समझता हूँ कि इस प्रकार उसकी महिमाका वर्णन करनेसे आपकी बुद्धि चक्करमे पड गयी है, अत. इस प्रारम्भिक दशामे आप इस चक्करमे न पडें, केवल अन्त करणको ही जाननेका प्रयत्न करें। इसको ठीक प्रकारसे पढनेका अभ्यास हो जानेके पश्चात् आप उपर्युक्त सूक्ष्मताओको भी स्पर्श करनेके योग्य हो जाओगे। यही कारण है कि पहलेसे अन्त करणको चेतन कहता चला आ रहा हूँ। वास्तवमे अन्तःकरण चेतन नही बल्कि चिदाभास है अर्थात् चेतन सरीखा दीखता है। जिस प्रकार दर्पणमे पडे हुए व्यक्तिके प्रति-बिम्बको ही 'यह अमुक व्यक्ति है' ऐसा कह दिया जाता है, इसी प्रकार अन्तःकरणमे पडे हुए चेतनाके प्रतिबिम्बको ही 'यह चेतन है' ऐसा कह दिया जाता है। वास्तवमे चेतन वह है जिसका कि प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, जिसके कारण कि संकल्प-विकल्प भी चेतनवत् प्रतीत होते है, और वही ज्ञान-प्रकाश मात्र चेतनका लक्षण है।

५ अन्त.करणका स्वरूप

चेतन पदार्थ बहुत सूक्ष्म तथा विचित्र है। बडे-बडे ज्ञानी इसको जाननेमे भूल खा जाते हैं। कारण यह है कि बिल्कुल चेतनवत् दीखनेवाला एक अन्त करण नामका दूसरा भी पदार्थ है जो चेतनका सूक्ष्म शरीर है। चेतन तथा अन्त करण दोनो दूध-पानीकी तरह मिलकर ही ससारमे रह रहे है और ऐसे ही सबकी प्रतीति मे आ रहे है। न वे दोनो पृथक्-पृथक् दृष्टिगत होते है और न उन्हे कोई पृथक-पृथक् करके जानना है। "चेतन ही अन्त करण

है और अन्त'करण ही चेतन है" ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु वास्तवमे ये दोनो पृथक्-पृथक् तत्त्व हैं, जिनको अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि ही देख सकती है। उस दृष्टिके अभावके कारण आप लोग उस भेदका प्रत्यक्ष सम्भवत. न कर सकें। फिर भी स्थूल रूपसे उस अन्त करणका परिचय यहाँ दे देना आवश्यक समझता हूँ, ताकि आगेके प्रकरणोमे जहाँ कही इस शब्दका प्रयोग करनेमे आवे वहाँ आप मेरा अभिप्राय समझ सकें। जब आप स्थूल रूपसे यह पदार्थ-विज्ञान पढ तथा सीख जायेंगे, तब आपमे सूक्ष्म रूपसे भी पढनेकी योग्यता आ जायेगी, और उस समय आपको वह सूक्ष्म रहस्य भी बता दिया जायेगा।

अन्त:करण कहते है जीवनके अन्तरंग रूपको। यह वास्तवमे चेतनका सूक्ष्म शरीर है जो ज्ञानकी विचित्रताओके रूपमे प्रतीत होता है। इसका विश्लेषण करनेपर इसे चार भागोमे विभाजित किया जा सकता है—१. सारासारका विचार करके अन्तरगमे वस्तुको जानना तथा पहचानना, २. धन, कुटुम्ब तथा शरीरादिमे अपनेपनेकी प्रतीति करना, ३ किसी भी बातका निर्णय करनेके लिए चिन्तवन करना या दु.ख-सुखका वेदन करना, ४ अनुमान ज्ञानके तर्क-वितर्क, सकल्प-विकल्प, इष्टता-अनिष्टता तथा राग-द्वेष आदि द्वन्द्व करना। बाह्य जीवनके भी चार अग हैं—१. शरीर, २. शारीरिक सु.ख-दुख, ३ धन-कुटुम्बादि, ४. इन्द्रिजन्य बाह्य ज्ञान। अन्तरग जीवनके उक्त चार भागोको ही पृथक्-पृथक् नामोसे कहा जाता है। वे नाम हैं—बुद्धि, अहंकार, चित्त व मन।

किसी भी पदार्थके सम्बन्धमे विचार करके तत्सम्बन्धी कुछ निर्णय तथा निश्चय करने रूप जो कार्य अन्दरमे किया जाता है उसे बुद्धि कहते हैं। "यह दूर दिखाई देनेवाला व्यक्ति कौन है ?"। ऐसा विचार करनेपर आपको जिसके द्वारा यह निश्चय होता है

कि यह तो मेरा मित्र ही चला आ रहा है, कोई शत्रु नही है, उसे बुद्धि कहते हैं। अर्थात् पदार्थको जानना, पहचानना तथा उसमे हिताहित विवेक करना बुद्धि है। बाहरमे तो इन्द्रियो द्वारा अनेक पदार्थोको आप जानते तथा देखते ही है, परन्तु भीतरमे भी देखा करते हैं। अपने मित्रसे दूर कही बैठे हुए, आँखें बन्द करके अपने उस मित्रके साक्षात् दर्शन किया करते हैं, इस प्रकार कि मानो वह आपके अन्दर ही बैठा है। तथा इसी प्रकार अन्य पदार्थोंका भी भीतरमे आपको साक्षात् दर्शन हुआ करता है। बस जिसके द्वारा आपको अपने भीतरमे यह दर्शन होता है उसे चित्त कहते हैं। भीतरमे होनेवाला यह साक्षात्कार अथवा चिन्तन व ध्यान चित्तके धर्म है। 'यह पदार्थ मेरा है और यह तेरा है' इस प्रकार धनादिक बाह्य पदार्थोंमे अपने स्वामित्व की या किसी औरके स्वामित्वकी स्थापना करके उन्हे भिन्न-भिन्न भावसे देखना, अपने पदार्थसे प्रेम तथा दूसरेके पदार्थसे द्वेष करना, ऐसी प्रवृत्ति सब जीवोमे पायी जाती है। अथवा "यह काम मैंने किया है, तू इसे नही कर सकता था। मैं बडा धनवान् हूँ, बलवान् हूँ, विद्वान् हूँ, रूपवान् हूँ, ऐश्वर्यवान् हूँ" इत्यादि गर्वपूर्ण अभिप्राय भी सबके अन्दरमे बैठे रहते हैं। बस अन्य पदार्थोमे स्वामित्वकी गर्वपूर्ण बुद्धिका नाम ही अहकार है। "तुम जो बात कह रहे हो मिथ्या है, क्योकि ऐसा देखनेमे नही आता। और जो मैं कहता हूँ वह ठीक है क्योकि यह बात सब ही स्वीकार करते है।", इस प्रकारकी विचारणाओको तर्क-वितर्क कहते हैं। "यदि यह काम हो गया तो ठीक नही तो बहुत नुकसान होगा। मुझे यह काम इस ढंगसे करना चाहिए था, परन्तु मैंने गलती की, इस प्रकार नही किया। अब क्या होगा, क्योकि युद्ध छिड गया है।", इस प्रकारकी वह विचारधारा जो प्रतिक्षण अन्दरमे चलती रहती है उसे सकल्प-विकल्प कहते हैं। "यह पदार्थ बहुत अच्छा है, किसी

प्रकार मुझे मिल जाये तो बहुत अच्छा हो। यह रोग बडा भयानक है, प्रभु इससे मेरी रक्षा करे", इस प्रकार पदार्थोमे अच्छे-बुरेकी या इष्ट-अनिष्टरूपकी कल्पना करना राग-द्वेष कहलाता है। इष्ट पदार्थकी प्राप्तिमे हर्ष और अनिष्ट पदार्थकी प्राप्तिमे दु:ख मानना, यह हर्ष-विषाद कहलाता है। इसी प्रकार अन्य भी अनेको द्वन्द्व अन्दरमे होते प्रतीत होते हैं। ये सर्व तर्क-वितर्क, संकल्प-विकल्प, इष्ट-अनिष्ट राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्व जिसमे उत्पन्न होते हैं उसे मन[1] कहते हैं।

बुद्धि, चित्त, अहकार व मन इन चारोको सग्रह कर देनेपर एक अन्त करण कहा जाता है। यह अन्त करण वास्तवमे शुद्ध चेतन नही है, परन्तु चेतनरूप दीखता है, क्योकि उपर्युक्त सर्व प्रकारकी विचारणाएँ ज्ञानात्मक हैं। ज्ञानमे-से ये सब प्रकारकी विचारणाएँ हट जानेपर जो शेष रहता है उसे चेतन कहते हैं। वह केवल साक्षी-भाव मात्र या ज्ञाता-द्रष्टा होता है। 'पदार्थ है' बस इतना जानना ही उसका काम है। वह अच्छा है कि बुरा, मेरा है कि तेरा, इत्यादि कल्पनाएँ ज्ञाता-द्रष्टा भावमे नही हुआ करती। 'वह कौन है ?' इस प्रकारकी विचारणायें भी वहाँ नही होती। वह सहज प्रकाशरूप होता है।

अन्त करण स्वयं द्वन्द्व रूप है इसलिए इसे चेतन नही कह सकते हैं। इसे जड भी नही कह सकते क्योकि यह जानता-देखता तो है ही, भले किसी रूपसे भी जाने-देखे। इसलिए इसे चेतन न कहकर चिदाभास कहना उपयुक्त है। या ऐसा कह लीजिए, कि यह है तो जड़, पर इसपर चेतनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है।

---

१. प्रयोजन-विशेषके कारण यहाँ मनका ग्रहण शास्त्र-प्रसिद्ध अर्थमें न करके लोक-प्रसिद्ध अर्थमें किया गया है।

कहनेके ढङ्ग है, किसी प्रकार भी कहो, यहाँ तो इतना ही समझना है कि चेतन और अन्त.करणके स्वरूपोमे भारी अन्तर है। इस अन्त करणमे बँधा हुआ चेतन ही जीव-भावको प्राप्त होता है। उसीका स्वरूप आगे बताते हैं। सर्व ही दृष्ट प्राणी जीव है पर चेतन[1] नही क्योकि अन्त.करणसे बँधे हुए हैं।

६. जीवका स्वरूप

चेतनका यह उपर्युक्त लक्षण वास्तवमे साधारण प्रतीतिका विषय नही है। उसके लिए किसी विशेष अन्त चक्षुकी आवश्यकता है। लोकका सर्व व्यवहार उस चेतनके सम्बन्धका नही है, परन्तु जीवके सम्बन्धका है। वही चेतन जब शरीर तथा अन्त करण द्वारा बँध जाता है तब जीव कहलाता है, अर्थात् शरीरधारी जितने कुछ भी कीडेसे लेकर मनुष्य पर्यन्त ये प्राणी दिखाई देते हैं, वे सब वास्तवमे चेतन तत्त्व नही बल्कि जीव है, परन्तु फिर भी चेतनसे प्रतिबिम्बित होनेके कारण उनको चेतन सृष्टि कहते हैं।

शरीरधारी चेतनको जीव कहनेका कारण भी यह है कि उसे दस प्राण धारण करके जीना पड़ता है और उन प्राणोको छोडकर मरना भी पडता है, जबकि चेतन न जीता है और न मरता है। इसीलिए चेतन सत् है अर्थात् नित्य है और जीव असत् है अर्थात् अनित्य है। पाँच इन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु

---

१ यद्यपि चेतन तथा जीवमें इस प्रकारका भेद जैन शास्त्रोमें प्राय: उपलब्ध नही होता, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे तत्त्वका परिचय देनेके लिए यहाँ इस प्रकारका विवेक उत्पन्न हो जाना पाठकके लिए आगे चलकर अत्यन्त हितकारी सिद्ध होगा। इस विषयमें केवल कुन्दकुन्द ही प्रमाण है।

तथा श्वासोच्छ्वास ये कुल दस प्राण कहलाते हैं। जो इन प्राणोसे जीवे सो जीव है। सभी शरीरधारियोको जानने-देखनेके लिए पाँचो इन्द्रियोका आश्रय लेना पडता है, मन, वचन व काय इन तीनो बलोका आश्रय लेना पड़ता है, नित्य श्वास भी लेना पड़ता है और इन सबके अतिरिक्त आयुके बन्धनमे इस तरह जकड़ा रहना पड़ता है कि जबतक आयु है तबतक तो जीये और आयु समाप्त होनेपर एक क्षण भी न जी सके। तब वह शरीर मर जाता है और पता लगने नही पाता कि इसके अन्दरका वह चेतन निकलकर कहाँ चला गया।

अतः शरीधारी सभी चेतन पदार्थ, कीड़ेसे मनुष्य पर्यन्त तकके सभी प्राणी, जीव अथवा प्राणी आदि कहे जाते हैं। इसपर-से इतना समझना कि चेतना तथा जीवमे कुछ अन्तर अवश्य है जो अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाने योग्य है। उस दृष्टिको ही वास्तविक अध्यात्मज्ञान कहते हैं। ठीक प्रकारसे तत्त्वको सुन या पढ़कर उसका मनन करें तथा मनन करके भी उसका निदिध्यासन करें, अर्थात् अपने अन्तर्जीवनकी तदनुसार विचारपूर्वक खोज करें और अनुभव करें, तो अवश्य ही वह दृष्टि आपको प्राप्त हो सकती है।

चेतन एक भाव है, जो केवल प्रकाशरूप है, परन्तु जीव एक द्रव्य है। भाव का कोई आकार नही होता, वह व्यापक होता है। परन्तु द्रव्यका तो आकार अवश्य होना चाहिए जैसा कि पदार्थ-सामान्यके प्रकरणमे पदार्थका स्वभाव चतुष्टय बताते हुए सिद्ध किया जा चुका है। क्योकि पदार्थ कहते हैं उसे जो कि गुणोका आश्रय हो या जिसमे गुण रहते हैं। जीव भी एक पदार्थ है जिसमे ज्ञान, सुख आदि अनेको गुण रहते हैं। अत. वह आकारवान् है और साथ-साथ परिवर्तनशील भी, जबकि 'चेतन'

भाव-मात्र होनेके नाते निराकार तथा स्थायी है। अत. चेतन तो नित्य ही है परन्तु जीवको किसी अपेक्षा अनित्य कहा जा सकता है। कारण कि इसको जन्म-मरण होता है जबकि चेतनको नही होता है।

७. जीवका आकार

अब प्रश्न होता है कि उस चेतनका तथा शरीरमे बसनेवाले जीवका आकार कैसा होता है ? सो भाई ! जैसा कि पहले बताया गया है चेतन तो प्रकाश मात्र है, इसलिए उसका कोई आकार नही होता। जिस प्रकार कि दीपककी शिखाका कोई आकार हो तो हो, पर उसके प्रकाशका क्या आकार ? प्रकाश सर्वथा निराकार तथा व्यापक होता है, इसलिए चेतन भी सर्वथा निराकार तथा व्यापक है।

परन्तु जीव-द्रव्य तथा चेतन-तत्वमे अन्तर होनेके कारण जीवके साथ यह नियम लागू नही होता। चेतनका कोई आकार भले न हो पर जीवका अवश्य है। इस समस्याको यो समझा जा सकता है कि जिस प्रकार दीपककी शिखा तथा दीपकके प्रकाशमे अन्तर है, उसी प्रकार जीव तथा जीवके चेतन-प्रकाशमे अन्तर है। जिस प्रकार प्रकाश निराकार होते हुए भी दीपशिखा साकार है, उसी प्रकार जीवका चेतन-प्रकाश निराकार होते हुए भी जीव स्वय साकार है अर्थात् उसकी कोई न कोई आकृति-विशेष अवश्य है।

जीवकी आकृति वास्तवमे उस शरीरकी ही है जिसमे कि वह वास करता है। आकार या आकृतिका प्रयोजन यहाँ केवल लम्बाई-चौडाई मोटाई आदिको रखने वाली किन्ही तिकोन-चौकोर या गोल आदि सूरतोसे है। जिस प्रकार आकाश यद्यपि व्यापक

होता है, परन्तु घडेका आकाश अर्थात् घडेके बीचकी पोलाहट उस घडेके ही आकारवाली होती है। अथवा जिस प्रकार प्रकाश यद्यपि व्यापक होता है, परन्तु घडेके बीचमे बन्द कर दिया जानेपर उसकी आकृति घडे-जैसी ही हो जाती है। इसी प्रकार जीवका आकार शरीरके जैसा ही होता है। कल्पना करो कि यह शरीर अन्दरसे बिलकुल पोला है अर्थात् इसमे हड्डी-मास कुछ भी नहीं है केवल ऊपरका यह चमडा मात्र है। अब इसके बीचमे उस पोलाहटकी जो आकृति प्रतीतिमे आती है, बस वही जीवका आकार जानो।

वैदिक दर्शनकार जीवका भी कोई आकार नही मानते, परन्तु जैन दर्शनकारो की तीक्ष्ण-बुद्धि इस प्रकारसे निराकार जीवको साकार मानना युक्त समझती है। इसका भी एक कारण है। लोकमे दो प्रकारसे पदार्थ जाननेमे आते है—एक पदार्थ-रूपसे और दूसरे उसके गुण या शक्ति-रूपसे। जिस प्रकार कि दीपक तथा दीपकका प्रकाश, इजन तथा इंजनकी शक्ति। शक्तिका कोई आकार नही होता, जैसे कि दीपकके प्रकाश या इजनकी शक्तिका कोई आकार नही है। परन्तु उस पदार्थका आकार अवश्य होता है जिसकी कि वह शक्ति है, जैसे दीपक तथा इजनका आकार अवश्य है। इसी प्रकार जीवको भी दो प्रकारसे देखा जा सकता है—जीव पदार्थ तथा उसकी शक्ति अर्थात् चेतना। चेतनाका भले कोई आकार न हो, क्योकि वह तो एक शक्ति है, परन्तु जीवका तो आकार अवश्य होना ही चाहिए। कोई भी शक्ति बिना किसी आकारवान् पदाथके स्वतन्त्र रहती हुई नही देखी जाती। जैसे कि दीपकका प्रकाश दीपकके बिना स्वतन्त्र नही रह सकता, इसी प्रकार जीवका ज्ञान-प्रकाश भी जीव पदार्थके बिना स्वतन्त्र नही रह सकता। गुण या शक्ति पदार्थके आश्रित ही रहती है स्वतन्त्र

नही। अत चेतनका या ज्ञानका भले आकार न हो परन्तु उस जीव पदार्थका आकार अवश्य होता है, जिसमे कि यह गुण निवास करता है या जिसमे कि यह चेतन शक्ति प्रतिबिम्बित होती है। बस जीवका यह आकार ही शरीरके आकारका जानना चाहिए।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि यदि जीवका आकार है तो शरीर से पृथक् हो जानेपर भी उसे दिखाई देना चाहिए। इसका उत्तर इतना ही जानना कि वह आकार अमूर्तिक तथा अरूपी होता है, जिसका स्पष्टीकरण पहले किया जा चुका है।

८ जीवका अमूर्तत्व

अब प्रश्न हो सकता है कि यदि जीवका कोई आकार है तो वह इन्द्रियोसे अवश्य दिखाई देना चाहिए जैसे कि शरीर। यह बात ठीक नही, क्योकि रग-रूप रखनेवालेको ही आकार नही कहते। रग और आकारमे बहुत अन्तर है। शरीरमे आँखोके द्वारा दो बाते एक साथ देखी जाती है—एक उसका काला-गोरापन और दूसरा तिकोन आदि आकार। यह बात ठीक है जितने कुछ भी पदार्थ दृष्ट हैं उन सबमे आँख इन दोनो बातोको एक साथ देखती है, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि जितने कुछ भी आकार है वे सब रङ्गवाले ही हैं। घडेके बीचकी पोलाहटका या आकाशका रङ्ग देखा नही जाता परन्तु उसका आकार विचारणा द्वारा जाना जाता है। इसी प्रकार शरीरमे रहनेवाले जीवका भी कोई रङ्ग नही होता यह ठीक हैं, परन्तु उसका आकार तो होता ही है जो शरीरकी भाँति ही हाथ-पाँववाला बडा या छोटा होता है।

रगविहीन आकार आँखोसे देखा नही जा सकता पर विचारणा द्वारा जाना जा सकता है। जिस चीज को आँख देखती है वही कुछ है, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ नही, ऐसा कोई नियम

नही है। आकाशको आंख नही देखती, फिर भी वह है तो अवश्य। इसलिए यहाँ आकाशका अर्थ केवल रंगविहीन लम्बाई चौटाईवाला सस्थान मात्र समझना, अन्य कुछ नही। 'जीव पदार्थ अमूर्तिक है' इसका यह अर्थ नही कि उसका कोई आकार नही। बल्कि इसका यह अर्थ है कि जीव किसी भी भौतिक इन्द्रियसे नही जाना जा सकता। फिर भी वह मन द्वारा विचार कर जाना जा सकता है, इसलिए अमूर्तिक होते हुए भी आकारवान् है। अमूर्तिकका अर्थ आकाररहित नही होता बल्कि इतना ही होता है कि वह इन्द्रियोसे नही जाना जा सकता।

६. प्रदेश

अब प्रश्न यह होता है कि यदि जीवका कोई आकार है अर्थात् उसकी कोई लम्बाई, चौडाई, मोटाई है तो बताइए कि वह कितना बडा है? यह जाननेके लिए हमे उसे मापना पडेगा। मापनेके लिए किसी गजकी आवश्यकता होती है। जीवको मापनेवाले उस गजका नाम 'प्रदेश' है। अत जीवका परिमाण जाननेसे पहले हमे प्रदेशका परिमाण जानना पड़ेगा।

लोकमे बडी तथा छोटी हर प्रकारकी वस्तु पायी जाती है, इसलिए वस्तुओको मापनेका गज ऐसा होना चाहिए, जिससे कि बड़ी तथा छोटी सभी वस्तुएँ मापी जा सकें। छोटे गजसे तो बडी वस्तु मापी जा सकती है, परन्तु बडे गजसे छोटी वस्तु नही मापी जा सकती इसलिए हमारा गज छोटेसे छोटा होना चाहिए। लोकमे सबसे छोटा पदार्थ परमाणु है। किसी पुद्गल स्कन्धको अर्थात् किसी भौतिक पदार्थको कल्पना द्वारा बराबर तोडते चले जानेपर उसका जो अन्तिम भाग प्राप्त हो, जिसका कि आगे टुकडा न किया जा सके उसे 'परमाणु' कहते हैं। भले ही वह हाथोमे पकडा या आंखोसे

देखा न जा सके, पर मन द्वारा अवश्य जाना जा सकता है। बस यह परमाणु ही हमारा गज है, जिससे कि हम किसी भी पदार्थको माप सकेंगे, वह पदार्थ जीव हो या आकाश।

परमाणु जितनी जगहको घेरता है उसे एक 'प्रदेश' कहते हैं। हमारे पास मापे जाने योग्य छह पदार्थ हैं, जिनके कि नाम पहले बताये जा चुके है, तथा जिनका विशेष विस्तार आगे किया जायेगा। उन छहोमे-से जिस भी पदार्थको मापा जाये उसीके एक परमाणु जितने एक भागको एक प्रदेश कहते है। भौतिक जो पुद्गल पदार्थ है उसका एक परमाणु जितना भाग तो स्वय परमाणु ही है, इसलिए परमाणु पुद्गल पदार्थका प्रदेश है। जीव पदार्थका एक परमाणु जितना भाग स्वय परमाणु नही है, परन्तु जीव पदार्थका एक प्रदेश है। इसी प्रकार आकाश पदार्थका एक परमाणु जितना भाग उसका एक प्रदेश है।

यहाँ इतना समझ लेना चाहिए कि जीवके प्रदेश या आकाशके प्रदेशका यह अर्थ नही कि ये पदार्थ भी पुद्गल स्कन्धकी भाँति अनेको पृथक् पृथक् परमाणुओ या प्रदेशोसे मिलकर बने हैं और इसलिए पुद्गल की भाँति हो तोडे भी जा सकते हैं। ऐसा नही है। वास्तवमे छहो द्रव्योमे केवल पुद्गल स्कन्ध ही तोडा तथा जोड़ा जा सकता है, इसलिए वह खण्डित है। परन्तु अन्य पाँचो द्रव्य न तोड़े जा सकते है और न जोडे जा सकते है, इसलिए वे अखण्डित हैं, जैसे कि आकाश। परन्तु इसका यह अर्थ नही कि वह मापे भी न जा सकें। अखण्डित पदार्थका भी मापा तो जा ही सकता है, जैसे कि आकाशमे एक लाख मीलकी कल्पना कर लेनेपर आकाशका टुकडा नही हो जाता या ४० गजके कपडेका थान कहने पर उस थानके पृथक्-पृथक् टुकडे नही हो जाते। इसी प्रकार किसी भी पदार्थमे कल्पना द्वारा प्रदेश-भेद करनेपर उस

पदार्थके टुकडे नही हो जाते। प्रदेश स्वयं परमाणु नही है, वल्कि उस अखण्ड पदार्थका उतना भाग है जितना कि एक परमाणु द्वारा मापा गया है।

१० जीवका परिमाण

बस इस प्रकार मापनेपर जीव पदार्थ असख्यात प्रदेशोवाला जाननेमे आता है, अर्थात् इसके गणनातीत प्रदेश हैं। इसका अर्थ इतना ही है कि यदि जीव पदार्थमे नीचेसे ऊपर, आगेसे पीछे तथा दायेंसे बायें सभी ओर परमाणुओको चिना जाये तो उन परमाणुओकी गणना असख्यात होगी। असख्यात प्रदेशोका यह अर्थ कदापि नही कि असख्यात पृथक् पृथक प्रदेशोसे मिलकर एक जीव पदार्थ बना हैं। वह अखण्ड है अर्थात् तोडा-जोडा नही जा सकता।

परन्तु असख्यात प्रदेश कहनेपर यह पता न चला कि आखिर वह कितना बडा है, क्योकि असख्यात कितने बडेको कहते हैं, यह ही हमे पता नही। इसलिए दूसरी प्रकारसे उसका माप करनेपर कहा जाता है कि वह लोक-परिमाण है। अर्थात् जीवको शरीरसे पृथक् होकर यदि फैलनेकी छूट दे दी जाये तो वह सारे लोकमे इस प्रकार व्याप्त हो जाये जैसे कि तिलोमे तेल। इसका तात्पर्य यह है कि जीव उतना ही बडा है जितना वडा कि लोक। आकाशका उतना भाग जितनेमे कि इस अखिल सृष्टिकी रचना हुई है 'लोक' कहलाता है। इसका विशेष कथन आगे आकाश-पदार्थके विस्तारमे आयेगा। वह लोक असख्यातप्रदेशी है और उतना ही वड़ा जीव-पदार्थ भी है।

११. जीवकी सकोच-विस्तार शक्ति

अव प्रश्न होता है यह कि पहले जिसका देह परिमाण बताया गया है, उसको ही अब लोक-परिमाण वताया जा रहा है। इन

दोनो बातोका मेल कैसे बैठे, क्योकि शरीर तो सारे लोक या ब्रह्माण्डसे बहुत छोटा है ?

इसका उत्तर यह है कि जीव पदार्थमे एक विशेष प्रकारकी सकोच-विस्तार शक्ति है जिसके कारण कि यह सिकुडकर छोटेसे छोटा हो सकता है और फैलकर महान्‌से महान् हो सकता है, जैसे कि दीप-प्रकाशको यदि घडेमे रखें तो घडे जितना और बडे कमरेमे रखें तो बडे कमरे जितना हो जाता है। उसी प्रकार यदि जीवको छोटे शरीरमे रहना पडे तो छोटा और बडे शरीर मे रहना पडे तो बडा हो जाता है।

अब प्रश्न हो सकता है यह कि छोटा होनेपर इसका शेष भाग कटकर पृथक् हो जाता होगा और बडा होनेपर उसी पृथक् भागमे से कुछ उसमे मिल जाता होगा। सो भी नही है, क्योकि पहले ही बताया जा चुका है कि जीव एक अखण्डित पदार्थ है, जिसे न तोडा जा सकता है और न जोडा। वह तो उसकी सकोच-विस्तार शक्तिका ही कार्य है कि बिना टूटे भी वह सिकुड़कर छोटा हो जाता है और बिना मिले ही वह फैलकर बडा हो जाता है। इस कमरेकी सारी वायु यदि मोटरकी एक ट्यूबमे भर दी जाये तो क्या कुछ शेष रह जायेगी ? इसी प्रकार लोक-परिमाण जीवको भी सिकोडकर यदि उस सूक्ष्म शरीरमे भर दिया जाये जो कि आँखोसे क्या माइक्रोस्कोपसे भी दिखाई नही दे सकता, तो इसका कोई भी भाग या प्रदेश छूट नही जाता, और यदि उसे फैलाकर हाथी के शरीरमे भर दिया जाये तो उसमे कुछ जुड़ नही जाता।

अत. लोक-परिमाण असख्यातप्रदेशी होते हुए भी उसको छोटे-बडे शरीर परिमाण होकर रहनेमे कोई विरोध नही है। छोटे-बडे किसी शरीरमे भी रहे, परन्तु प्रदेशो द्वारा जब भी उसे मापेंगे तब

ही वह असख्यात प्रदेशी मिलेगा। जिस प्रकार कि कपडेकी तह करके चाहे उसे छोटा थान बना दो चाहे बडा थान, वह कपडा ४० गज़ ही रहेगा।

साधारणत. 'जीव' लोकमे व्यापकर नही रहता, किसी-न-किसी शरीरमे ही रहता है। ऐसा भी नही होता कि शरीर-जितना भाग तो शरीरमे रह जाये और शेष भाग बिना टूटे ही बाहर आकाशमे फैला रहे। वह तो सारा-का-सारा ही उस शरीरमे समा जाता है। लोक-परिमाण कहनेका इतना ही तात्पर्य है कि यदि कदाचित् वह स्वयं पूराका पूरा फैल जाये अथवा यदि कल्पना द्वारा उसे पूरा-का पूरा फैला दें तो वह इस सारे लोकमे ही व्याप सकता है, इससे बाहर इसका एक प्रदेश भी नही जा सकता।

१२. शरीर-परिमाण जीवकी सिद्धि

अन्य दर्शनकार जीवको शरीर-परिमाण न मानकर उसे अणु-मात्र या अंगुष्ठ परिमाण मानते हैं। उनका कहना है कि वह स्वयं एक परमाणु मात्र है, परन्तु उसका प्रकाश इस पूरे शरीरमे है। परन्तु ऐसी मान्यता युक्त नही जँचती क्योकि ऐसा माननेसे अनेको दोष प्रतीत होते है।

किसी बड़े शरीरमे जब एक अणुमात्र जीव रहेगा तब वह शरीर भी अणुमात्र भागमे तो चेतन रहेगा और शेष भागमे जड़, अर्थात् वह केवल उतने भाग मात्रसे ही जान-देख सकेगा जितने भागमे कि जीव है, परन्तु ऐसा तो दिखाई नही देता। जीव का सारा शरीर ही छूकर जाननेकी शक्तिसे युक्त है। अत. कहना पड़ता है कि सारे शरीरमे व्याप कर ही वह रहता है।

इस शंकाका समाधान वे इस प्रकार करते हैं कि जीव तो अणु-मात्र है और शरीर के अणुमात्र भाग मे ही रहता है परन्तु उसका

प्रकाश सारे शरीर मे व्याप कर रहता है। ऐसा माननेपर भी कुछ ठीक प्रतीत नही होता। क्योकि इस प्रकार तो जब बडे शरीर मे रहेगा तब वहाँ उसका प्रकाश हल्का होगा, जैसे कि एक दीपकको यदि छोटे कमरे मे रखें तो अधिक प्रकाश दीखता है और यदि उसे ही बडे कमरे मे रखे तो थोड़ा प्रकाश दीखता है। जीवका प्रकाश है ज्ञान, इसलिए सूक्ष्म शरीरवाले जीवोको अधिक ज्ञान होना चाहिए, अपेक्षा बडे शरीरवाले जीवोके। परन्तु यह बात है इससे उलटी। सूक्ष्म जीवोका ज्ञान अत्यन्त अल्प होता है और मनुष्योंका अधिक। यद्यपि ऐसा कोई नियम नही कि बड़े शरीर-वालेको अधिक ही ज्ञान हो, क्योकि बड़े शरीरवाले हाथी से अधिक ज्ञान छोटे शरीर वाले मनुष्यको होता है। परन्तु फिर भी सूक्ष्म जीवो की अपेक्षा तो हर बडे शरीरधारी मे ज्ञान अधिक ही होता है।

तीसरे एक बात और भी है। वह यह कि जीवको दु:ख-सुखका वेदन समस्त शरीर मे ही होता है, किसी मस्तिष्क आदि नियत अणुमात्र स्थानमे नही। यदि शरीर के अन्य भागोमे जीव नही है, तो सुख-दु:खको वहाँ कौन महसूस करता है ? वहाँ सुख-दु ख होना ही नही चाहिए। यदि कहा जाये कि नाडियोंके द्वारा उस दु:ख-सुखका वेदन मस्तिष्क तक पहुँच जाता है और वहाँ बैठा हुआ वह अणुमात्र जीव उसका वेदन कर लेता है, जिस प्रकार टेलीफोन द्वारा आपकी बातको दूरस्थ व्यक्ति भी सुन लेता है। सो भी ठीक नही है, क्योकि इस प्रकार तो दु ख सुखकी प्रतीति सब जीवोको केवल मस्तिष्क मे ही हुआ करती। पाँवमे फोडा होना और पीडा मस्तिष्कमे होती। क्योकि टेलीफोन द्वारा सुननेवाला आपकी बात सुनता तो अवश्य है, परन्तु उसे अपने पासमे ही सुनता है, आपके पास मे नही। परन्तु ऐसा यहाँ नही है। शरीरके जिस भागमें पीडा होती है उसी भागमे वह महसूस होती है।

यदि इस दोषको दूर करनेके लिए यह कहा जाये कि पूरे शरीर मे व्याप्त वह प्रकाश ही महसूस कर लेता है, तब पूछना यह है कि वह प्रकाश जड है कि चेतन। यदि वह जड है तो महसूस नही कर सकता, यदि चेतन है तो वह जीव पदार्थ हो हुआ। और इस प्रकार जीवको सारे शरीर मे व्याप्त स्वीकार कर लिया गया।

यदि इस दोषको दूर करनेके लिए यह कहा जाये कि प्रकाश तो ज्ञानरूप है, जीव-पदाथ रूप नही। जिस प्रकार आप अपने स्थान-पर बैठे बैठे अपने ज्ञान द्वारा दूर-देशस्थ वस्तुको भी जान जाते हैं और उन्हे वहाँ-वहाँ रखी हुई ही जानते हैं, इसके लिए आपको फैलकर वहाँ जाना नही पडता, इसी प्रकार अपने स्थानपर बैठे बैठे ही अणुमात्र जीव अपने ज्ञान-प्रकाश द्वारा वहाँ-वहाँकी पीडाका अनुभव कर लेता है, और वह वेदन उसे वहाँ-वहाँ ही प्रतीत होता है जहाँ-जहाँ कि वह है। यह भी ठीक नही है : ज्ञान द्वारा जाननेका दृष्टान्त यहाँ लागू नही होता क्योकि जानने व महसूस करनेमे बहुत अन्तर है। आप दूसरोको तडफता हुआ देखकर ज्ञान द्वारा महसूस नही कर सकते। महसूस तो अपने शरीरकी पीडा ही होती है। अत सिद्ध हुआ कि जीव अणुमात्र नही बल्कि असख्य-प्रदेशी है और छोटे व बडे शरीरोमे स्वय सिकुडकर, या फैलकर या व्याप कर रहता है।

अन्य दर्शनकार उसे सर्व-व्यापक ही मानते है। उनका कहना है कि अखण्डित नित्य तथा सत् पदार्थ दो ही हो सकते हैं—अणु-रूप या सर्वव्यापक, जैसे कि परमाणु तथा आकाश। परन्तु उनका यह कहना भी कुछ अधिक विद्वत्तापूर्ण प्रतीत नही होता। मूल पदार्थ को अणु तथा सर्वव्यापक सिद्ध करनेके लिए अखण्डत्व, नित्यत्व तथा सत्त्वका हेतु देना दोषपूर्ण है, क्योकि ऐसा नियम नही देखा जाता। सभी जीव पृथक्-पृथक् अपने-अपने सकल्प-विकल्पोंके

तथा ज्ञान आदिके कर्ता हैं और अपने-अपने दु ख-सुखके भोक्ता हैं। अपने-अपने ही कर्ता हैं और अपने-अपने ही कर्मफल अर्थात् पुण्य-पाप आदिके भोक्ता है। इस दोषको दूर करनेके लिए वे हेतु देते है कि वास्तव मे आत्मा तो एक तथा सर्व-व्यापक ही है, परन्तु प्रत्येक शरीरके अन्त करणमे उसका प्रतिबिम्ब पृथक्-पृथक् रूपसे पड़ रहा है इसलिए सब पृथक्-पृथक् प्रतिभासित होते है, सो भी बात युक्तिकी कसौटीपर ठीक नही बैठती। क्योकि ऐसा हुआ होता तो एक साथ ही सब जीवोको क्रोध, दु.ख व सुख, निद्रा व जागृति आदि होनी चाहिए थी, जैसे कि एक ही व्यक्तिके अनेको दर्पणोमे पडे हुए सर्व प्रतिबिम्ब, उस व्यक्तिके हिलने-डुलनेपर एक साथ ही हिलते-डुलते प्रतिभासित होते हैं।

जीवोकी पृथक्-पृथक् क्रियाओपर-से, उनके पृथक्-पृथक् स्वभा-वोपर-से तथा पृथक्-पृथक् भोगोपर-से अथवा सुख-दु खपर-से यही बात सिद्ध होती है कि जितने कुछ भी कीडेसे मनुष्य पर्यन्त छोटे-वडे प्राणी दृष्टिगत होते हैं, उन सबके शरीरोमे भिन्न-भिन्न जीव हैं।

१३ जीवकी एकता तथा अनेकताका समन्वय

फिर भी जैनदर्शनकी व्यापक दृष्टि इन उपर्युक्त दोनो मान्यताओं को स्वीकार अवश्य कर लेती है। जैनदर्शन किसी भी तत्त्वको भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोसे देखता है, यही उसकी व्यापकता है। इस दर्शनका कहना है कि यदि उस पूर्वकथित चित्प्रकाशस्वरूप केवल भावात्मक तत्त्वको आप आत्मा या जीवतत्त्व कहना चाहते हैं, तब तो ठीक ही वह व्यापक है, क्योकि भाव कभी भी देश तथा कालसे सीमित नही किया जा सकता। जैसे क्रोध नामका भाव अथवा स्वर्णका पीतत्व कितना बडा है, और कब होता है, ऐसा कोई नही कह सकता। ज्ञान किस आकारका है और कब जानता

है इसका उत्तर नही दिया जा सकता। वह तो सर्वत्र सबको जानता है और सदा जानता है। उसका स्वरूप ही जानना है। फिर कभी व कही किसीको नही जाननेका प्रश्न ही नही हो सकता। परन्तु यदि शरीर-स्थित उस छोटे-बड़े कर्त्ता-भोक्ता जीव पदार्थको जो कि शरीरमे आता है, जन्म धारण करता है और मरनेपर उसमे-से निकलकर अन्यत्र चला जाता है, आप आत्मा या जीव कहना चाहते है तो उसे व्यापक कहना ठीक नही हो सकता। व्यापक पदार्थ न वडा होता है न छोटा, और न कही अन्यत्र जा-आ सकता है। वह सर्वत्र ठसाठस भरा रहता है। उसे हिलने डुलने को तथा आने-जाने को अवकाश कहाँ ?

इसी प्रकार यदि उस चित्प्रकाशकी सूक्ष्मताको ध्यानमे रखकर अणुरूप कहना चाहते हैं तब तो ठीक ही वह अणुरूप है। सूक्ष्म तत्त्वको अणु कहनेका व्यवहार देखा जाता है, परन्तु यदि बड़े-छोटे शरीरमे रहनेवाले उसके आकारको दृष्टिमे रखकर उसे अणुरूप कहना चाहते हैं तो यह बात ठीक नही है, क्योकि इसका निराकरण पहले ही कर दिया गया है।

वास्तवमे बात भी ऐसी है। चेतन तत्त्वका स्वरूप समझाते हुए तथा जीव पदार्थके नाम बताते हुए, पहले यह बताया भी जा चुका है कि चेतन तथा आत्मा शब्दका वह अर्थ नही है जो कि जीव शब्दका है। इसलिए सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर चेतन या आत्मा कोई और वस्तु है और जीव कोई और। चेतन या आत्मा भावात्मक तत्त्व है और जीव एक पदार्थ है। चेतन व आत्माका शरीरसे तथा उसके जन्म-मरणसे कोई सम्बन्ध नही है, परन्तु जीवका उससे सम्बन्ध है। इसलिए चेतन तथा आत्मा नित्य एक व व्यापक है, परन्तु जीव अनित्य, अनेक व अव्यापक हैं।

१४. जीवोंकी गणना

अब प्रश्न यह होता है कि यदि पृथक्-पृथक् शरीरमे पृथक्-पृथक् जीव हैं, अर्थात् शरीरोकी भांति जीव भी अनेक हैं, तो उनकी गणना क्या है, अर्थात् इस सारे विश्वमे वे कितने हैं। इस प्रश्नका उत्तर सहज है, कि वे उतने ही हैं जितने कि शरीर। बल्कि उनसे भी कुछ अधिक हैं, क्योकि शरीरधारी जीवोके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी जीव हैं जो मुक्त हो चुके है अर्थात् शरीर और अन्त.-करण आदिके बन्धनोसे छूट चुके है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जीव अनन्त हैं अर्थात् गणनातीत हैं ।

१५. पुनर्जन्म तथा उसकी सिद्धि

यह जीव इन चौरासी लाख योनियोमे नित्य ही जन्म-मरण करता हुआ बराबर घूमा करता है। जैसा-जैसा कर्म करता है, जैसे-जैसे संस्कार लेकर मरता है, उस-उसके अनुसार ही किसी योनि तथा शरीरको धारण करके जन्मता है। पुनर्जन्मका यह सिद्धान्त भारतीय सस्कृतिका मूल आधार है। भारत के सभी दर्शनकार इसे स्वीकार करते हैं, परन्तु मुस्लिम तथा ईसाई मत-जैसे विदेशी दर्शन इस सिद्धान्तको स्वीकार नही करते और न ही आजका भौतिक युग इसे स्वीकार करता है। प्रत्यक्ष ऐसा-सा प्रतीत होता है कि जन्मसे मरण पर्यन्त जो कुछ दिखाई देता है, बस उतना मात्र ही सत्य है। जन्मसे पहले क्या था और मृत्युके पश्चात् मैं कहां हूंगा यह कौन जानता है, और इसलिए पुनर्जन्मका सिद्धान्त कल्पना मात्र है।

भैया! इस भ्रमको दूर कर। वास्तवमे ऐसा नही है। तेरी इस धारणाका कारण केवल यही है कि तुझे अपनी इन्द्रियोपर तो विश्वास है, परन्तु अप्रत्यक्ष पर तुझे विश्वास नही है।

पर तू भूलता है, क्योकि आज भी जितनी कुछ बातोपर तुझे विश्वास है क्या वे सब तूने आँखोसे देखी है? चन्द्रमाकि प्रति जानेवाले स्पुत्निकको क्या तूने या तेरे सभी हिमायतियोंने अपनी आँखोसे देखा है? आजकी विज्ञानशालाओमे जो नये नये अनुसन्धान हो रहे हैं, क्या तू उन्हे आँखमे देख लेता है? पहले तू विमान अथा अग्निवाण आदिकी बात शास्त्रोमे पढ-पढकर हँसा करता था, आज क्यो विश्वास करने लग गया है? भैया! सभी बातें अपनी ही आँखोसे देखी जायें यह आवश्यक नही। कुछ बात कोई एक व्यक्ति देखता है, और कुछ बात कोई दूसरा। फिर सब परस्परमे एक दूसरेको अपनी-अपनी देखी-सुनी बातें बताते या लिखते है, और वह विषय लोगोकी श्रद्धामे प्रवेश पा जाता है। आजके समाचार-पत्रोमे आनेवाली सभी बातोको तो तू सच्ची समझता है, चाहे कितनी भी आश्चर्यकारी वे क्यो न हो, परन्तु शास्त्रोकी बातोपर तुझे विश्वास नही। इलाज हम क्या करें? भैया! यह बात पहले ही अच्छी तरह समझा दी गयी है कि शास्त्रकार भी उसी प्रकार वैज्ञानिक थे, जिस प्रकार कि वर्तमानके वैज्ञानिक। अन्तर केवल इतना है कि उनका विज्ञान अन्दरमे रहनेवाले चेतन पदार्थके सम्बन्धका था और आजका विज्ञान बाहरमे रहनेवाले इन शरीरादि भौतिक पदार्थोंके सम्बन्धका है। शास्त्रकार बिलकुल विरक्त तथा निःस्पृह थे। भला तू सोच तो सही कि जब भौतिक वैज्ञानिक जो कि रागी तथा स्वार्थी हैं, वे ही मिथ्या बात नही कहते तो वे निःस्वार्थी तथा विरागीजन मिथ्या बात कहकर आपको भ्रममे क्यो डालते?

खैर, फिर भी तेरी तसल्लीके लिए हम इस सिद्धान्तको तर्क द्वारा तथा प्रत्यक्ष द्वारा सिद्ध करते है। भैया! क्या तू इस बातका उत्तर दे सकता है कि एक नवजात शिशु जिसने अभी तक इस

दुनियामे कुछ भी नही देखा है वह मृत्युसे क्यो डरता है, तलवार लेकर उसे मारनेके लिए कोई उसपर झपटे तो रोता हुआ माताकी ओर क्यो दौडता है, भूख लगनेपर स्वतः ही माताके स्तनको मुखमे क्यो ले लेता है, हाथमे ही क्यो पकड नही रखता ? ये तथा अन्य भी इसी प्रकारकी अनेको बातें उसको किसने सिखायी ? इसके सिवा आपके पास क्या उत्तर है कि यह उसके पहलेके सस्कार हैं ? भले ही व्यक्तिको यह याद न रहा हो कि वह पहले कहांसे मरकर आया है परन्तु मृत्युके प्रतिका भय यह दर्शाता है कि पहले जो अनेक बार उसने मृत्यु सम्बन्धी महान् कष्ट उठाया है उसका भयकारी भाव आज भी उसके अन्तःकरणपर अकित है। मनुष्यके साथ ही यह बात हो एसा नही है, चीटीसे लेकर हाथी तक चौरासी लाख योनिके सभी प्राणी इस सम्बन्धमे समान हैं अर्थात् सब उत्पन्न होते ही मृत्यु से डरते है। बस यही बात इसका प्रमाण है कि यह जीव पहले अनेको बार मर-मरकर जन्म ले चुका है और जन्म-जन्मकर मर चुका है। जन्मने व मरनेवाले उसके शरीर भले ही अब उसके साथ न हो परन्तु वह स्वय वही है जो कि पहले मरा था।

भैया। क्या तू नही जानता कि किसी व्यक्तिके साथ कोई दुर्घटना हो जानेके कारण वह अपनी स्मृति खो दिया करता है, और फिर वह अपने माता-पिता तथा घरको भी पहचान नही सकता। उसको सबकी बातोपर आश्चर्य होने लगता है, और स्वय भूला-भूला सा विचित्र प्रकार से रहने लगता है। इसी प्रकार किसी अन्य दुर्घटनासे उसे वह भूली हुई स्मृति याद भी आ जाया करती है। तब वह समझ पाता है कि वास्तवमे आज तक वह भूला हुआ था। आजसे पहले वह अन्य सभी की बातें सुनकर हँसता था, परन्तु आज स्वय अपनी भूलपर हँसता है। जब एक ही शरीर मे

हो और चीटी आदि अन्य-अन्य प्राणियोके चेतन उन-उनकी पृथक्-पृथक् जातियोके हो, सो बात नही है, और न ही ऐसा होना सम्भव है। ऐसा होनेपर जीव-स्वभावके सम्बन्धमे कोई सिद्धान्त ही निर्धारित नही किया जा सकेगा, और पूर्वकथित सस्कार नामकी कोई चीज न रह सकेगी। परन्तु वे कर्म-सिद्धान्त' नामक पुस्तकके अन्तर्गत तर्क, अनुभव तथा आगम तीनोके आधार-पर सिद्ध कर दिये गये हैं। इसलिए यही समझना कि चेतन पदार्थ तो एक स्वभाववाला ही है, परन्तु विभिन्न सस्कारोके कारण उसके भिन्न रूप हो जाते हैं। जैसे सस्कार इस जन्ममे सग्रह करता है वैसा ही शरीर मरनेके पश्चात् वह धारण करता है। जैसे कि कोई व्यक्ति जिसकी भावना सदा ऐसी रहती है कि आप कब हटें और मै आपकी वस्तु उठाऊँ, वह अवश्य ही मरकर बिल्ली या इसी प्रकृतिका कोई अन्य प्राणी बनेगा। इसी प्रकार छल-कपटके संस्कार-वाला व्यक्ति लोमडी और क्रूर परिणामवाला व्यक्ति सिंह बनेगा। क्योकि ऐसे-ऐसे शरीरोको धारण करके ही उसे अपने पूर्व संस्कारो-को ठीक प्रकारसे भोगनेका अवसर प्राप्त हो सकेगा।

१६ संसार तथा मोक्ष

जीवका जन्म-मरण ही उसका ससार कहलाता है और यह अन्तःकरणके भावोके अनुसार हुआ करता है। इसका कारण भी यह है कि जैसा कि सर्वदा बताया जा रहा है—ससारी जीवका जीवन दो प्रकारका है—एक अन्तरग जीवन और दूसरा बाह्य जीवन। अतरग जीवन अन्त करण है और बाह्य जीवन है शरीर। इन दोनोका क्षीर-नीरवत् घनिष्ट सम्बन्ध है, जिसेसे कोई भी इन्कार नही कर सकता, क्योकि यह बात सबकी प्रतीतिमे आती है कि अन्त करणमे क्रोध रूप ताप आनेपर शरीर भी तपने लगता है, शरीर भी काँपने लगता है। कोई बड़ा अपराध हो जानेपर अन्त.-

करण जब ग्लानिसे युक्त होकर मलिन हो जाता है तो शरीर भी मलिन तथा निस्तेज प्रतीत होने लगता है। अत जीव मरणके समय जैसे अन्त करणसे युक्त होकर जाता है वैसा ही शरीर लेकर जन्म पाता है।

क्योकि जीवन दो प्रकारका है इसलिए जन्म-मरणरूप ससार भी दो प्रकारका है—एक अन्तरग ससार और दूसरा बाह्य ससार। अन्तरंग ससार अर्थात् जन्ममरण अन्त करणमे होता है और बाह्य समार शरीरमे। अन्त.करणमे हर क्षण विकल्पोकी जो अटूट धारा चलती है वही अन्तरंग ससार है। और एक शरीरके पीछे दूसरे शरीरके आ-आकर जाने और जा-जाकर आनेकी जो अटूट धारा चलती रहती है वही बाह्य ससार है। इन दोनोमे केवल इतना ही अन्तर है कि अन्तरंग ससाररूप जन्म-मरण बहुत शीघ्रतासे होता है और बाह्य संसाररूप जन्म-मरण कुछ देरसे होता है, परन्तु दोनोके स्वरूपमे कोई भेद नही है। जिस प्रकार नवीन शरीरके आनेका नाम जन्म है और पहले शरीरके जानेका नाम मरण है उसी प्रकार नये विकल्पके आनेका नाम अन्त.करणका जन्म और पहले वाले विकल्पके जानेका नाम अन्त करण का मरण है।

इन दोनो प्रकारोके ससारोमे अन्तरंग ससार ही प्रमुख है क्योकि बाह्य ससारका बीज वही है। जिस प्रकार बीज सदा छोटा होता है और उससे उत्पन्न होनेवाला वृक्ष बडा, इसी प्रकार बाह्य ससारका बीजरूप जो अन्तरग ससार है वह सूक्ष्म है। अन्तरगकी चचलतासे ही बाहरकी चचलता है। अन्तरगकी चचलता रुक जानेपर बाहरकी चचलता भी अवश्य रुक जाती है। जिस प्रकार बीज नष्ट हो जानेपर बाह्य ससारकी उत्पत्ति असम्भव है।

जन्म मरणरूप अन्तरग तथा बाह्य ससार अथवा चचलता ही

जीवके लिए सबसे बडी व्याकुलता है, जो अत्यन्त तापकारी है। इसीलिए ज्ञानीजन ससारको दुख-कूप कहते हैं। ससारसे छूटनेका नाम ही मोक्ष है, अर्थात् जन्म-मरणसे छूटनेका नाम ही मोक्ष है। कौन-से जन्म मरणसे छूटना ? दोनोंसे। बाह्य जन्म-मरण हमे दिखाई देता है इसलिए हम उससे डरते भी है परन्तु उसका बीज-भूत जो अन्तरग ससार है वह हमे दिखाई नही देता और इसलिए हम उससे डरते भी नही हैं। यही कारण है कि हम ससारसे छूटनेकी इच्छा करते हुए भी उससे छूट नही पाते। यदि वास्तवमे ससारसे छूटनेकी अर्थात् जन्म-मरणके सकटसे मुक्ति पानेकी इच्छा है तब तो अवश्य ही उसका बीज जो अन्तरग ससार है उसे नष्ट करना होगा। उसे नष्ट करना सम्भव है क्योकि वह हमारे अपने आधीन है। अन्त.करणमे मन द्वारा सकल्प-विकल्प हम स्वय उत्पन्न करते हैं और इसी प्रकार उन्हे रोक भी सकते हैं, भले ही उसके लिए काफी परिश्रम तथा अभ्यासकी आवश्यकता हो।

✻

५

जीव पदार्थ विशेष

१ जीव तथा चेतनमें अन्तर, २. अन्तःकरण तथा इन्द्रियोका सक्षिप्त रूप, ३ ससारी तथा मुक्त जीव, ४ इन्द्रियोकी अपेक्षा जीवके भेद, ५. मनकी अपेक्षा जीवके भेद, ६. त्रसस्थावरकी अपेक्षा जीवके भेद, ७ त्रस-स्थावर जीवोंमें जीवत्वकी सिद्धि, ८ गतियोकी अपेक्षा जीवके भेद, ९ नरक तथा स्वर्गकी सिद्धि १०. कायकी अपेक्षा जीवके भेद, ११. सचार तथा निवासकी अपेक्षा जीवके भेद, १२ सूक्ष्म जन्तु विज्ञान, १३ चौरासी लाख योनि, १४. जीवोका उत्पत्ति क्रम, १५. अण्डेमें जीवकी सिद्धि, १६ सूक्ष्म जीवोकी उत्पत्ति, १७ जीवोका स्वभावचतुष्टय, १८ जीव पदार्थका सक्षिप्त सार।

१ जीव तथा चेतनमे अन्तर

अहा हा ! कितना विचित्र और सुन्दर है चेतनका यह निर्विकल्प रूप। परन्तु अरे-अरे ! अनादिकालसे माया प्रपचमे उलझी हुई तेरी बुद्धि आज उसके दर्शन करनेमे समर्थ नही है। खेद ! महाखेद !। खैर कोई बात नही, अब भी कुछ नही बिगडा। भूला न जानिये जो साँझ पडे घर लौट आये। एक बार पूर्ण विश्वासके साथ उस जीव पदार्थकी अनेक दृष्ट-विशेषताओको जान। फिर उन सर्व विशेषताओके अन्दर प्रवेश करके उस सामान्य-प्रकाशको खोजनेका प्रयत्न कर। यदि ऐसा किया तो इसमे तनिक भी सशयको अवकाश

नही कि वह तेरे अनुभवमे आ जायेगा, और यदि ऐसा हो गया तो तू कृतकृत्य हो जायेगा, प्रभु बन जायेगा। उसी रूपको ध्यानमे रखकर ज्ञानीजन आत्मा तथा परमात्माको एक बताया करते हैं, जीव तथा ब्रह्मको एक कहा करते है। जब ज्ञानीजन ऐसा कहते है कि वह परमात्मा घट-घटमे बसता है, अरे! वह तुझमे भी निवास करता है, तब उनका लक्ष्य उस चेतनकी ओर होता है, जिसका परिचय कि पहले दिया जा चुका है।

परन्तु वही चेतन जब बुद्धि, चित्त, अहकार तथा मनके अर्थात् अन्तःकरणके तथा शरीरके बन्धनो मे पडकर सकुचित हो जाता है, जब वह शरीरोका स्वामी बन जाता है, तब वह जीव कहलाने लगता है। क्योकि शरीरादिका स्वामी बन जानेपर उसे जाननेके लिए पाँच इन्द्रियोका आश्रय लेना पडता है, मन, वचन तथा काय बलका आश्रय लेना पडता है, श्वासोच्छ्वासका आश्रय लेना पड़ता है और आयुके पाशमे बँधकर रहना होता है। पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास तथा आयु ये दस प्राण कहलाते हैं। क्योकि शरीरधारी जीव इन दस प्राणोके आश्रयसे जीते है इसलिए जीव कहलाते हैं।

२ अन्त करण तथा इन्द्रियोका संक्षिप्त स्वरूप

जीव जिस पिण्डमे रहता है, उसे शरीर कहते हैं। जीवके जानने, बोलने तथा मनन करने आदिके साधनोको इन्द्रिय कहते है। यह बात पहले ही बता दी गयी है कि वास्तवमे जाननेवाली आँख आदि इन्द्रियाँ नही है परन्तु वे केवल जाननेकी साधन मात्र हैं, जैसे कि आँखके लिए चश्मा। ये इन्द्रियाँ पाँच है—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण। स्पर्शन कहते हैं स्पर्श करके या छूकर जाननेके साधनको। जीवका सारा शरीर हाथ, पाँव, पेट,

कमर आदि ही उसकी स्पर्शन-इन्द्रिय है, क्योंकि जिस प्रकार देख-कर केवल आँख ही जान सकती है हाथ नही, उस प्रकार छूकर जाननेका कोई निश्चित स्थान नही है। सारे शरीरसे ही गरमी-सर्दी आदिका भान हो सकता है। खट्टा, मीठा, कडवा, कसायला तथा चरपरा ये पाँच रस कहलाते है। इन रसोको रसन करनेके या चखकर जाननेके साधनको रसना-इन्द्रिय कहते हैं। जिह्वा ही रसना-इन्द्रिय है। सुगन्ध तथा दुर्गन्ध ये दो प्रकारकी गन्ध हैं। इस गन्धको जिघ्रण करके अर्थात् सूँघकर जाननेके साधनको घ्राण-इन्द्रिय कहते हैं। शरीरमे रहनेवाली नाक ही घ्राण-इन्द्रिय है। काला, नीला, लाल, पीला तथा हरा ये पाँच रग है। अथवा तिकोन, चौकोर आदि तथा मोटा-पतला आदि, लम्बा-छोटा आदि, तिरछा-सीधा आदि आकार कहलाते हैं। इन रगो तथा आकारोको देखकर जाननेका साधन आँख है। इसे ही नेत्र-इन्द्रिय कहते हैं। शब्द अनेक प्रकारका है—यथा मुझसे बोली जानेवाली मनुष्यो तथा पशुओकी भाषा, बादलोकी गर्जना अथवा घण्टा, हारमोनियम आदि बाजोकी ध्वनियाँ। इन सब प्रकारके शब्दोको सुनकर जानने-का साधन कान है। इसे ही श्रोत्र या कर्ण-इन्द्रिय कहते हैं।

छूकर जाननेके अतिरिक्त स्पर्शन इन्द्रिय या शरीरका अन्य भी काम है—भूख-प्यास आदि महसूस करना, खाना, पीना, मूत्र तथा मल-त्याग करना आदि। इसी प्रकार रसना इन्द्रियका चखनेके अतिरिक्त बोलना भी काम है। घ्राण या नासिका इन्द्रियका सूँघनेके अतिरिक्त श्वास लेना भी काम है। नेत्र तथा कर्ण इन्द्रियके एक-एक ही काम हैं—देखना तथा सुनना।

इन सबके अतिरिक्त मन भी एक इन्द्रिय माना गया है। इसका वर्णन आगे किया जायेगा।

३. संसारी तथा मुक्तकी अपेक्षा जीवोके भेद

यद्यपि चेतनाका कोई भेद या प्रकार नही होता, तदपि जीव अनेक प्रकारका होता है, क्योकि वह शरीर धारण करता है तथा उससे युक्त होता है। जो शरीर धारण करता है वह अनेक प्रकार का होता है। अन्त करण भी अनेक प्रकारका होता है। इन शरीरो-के कारण तथा अन्त करणके कारण वह अनेक आकृतियोका तथा अनेक स्वभावोका दिखलाई देता है। लोकमे सर्व ही जीव क्योकि इन बन्धनोमे बँधे हुए हैं इसलिए चित्र-विचित्र हैं। जिस प्रकार जल नामक पदार्थ यद्यपि एक प्रकारका ही है, चाहे तालावका हो या कुएँका, परन्तु अपनी-अपनी उत्पत्ति तथा निवास स्थानकी अपेक्षा उसे अनेक प्रकारका कहा जाता है—यथा वर्षाका जल, जोहडका जल, तालाबका जल, कुएँका जल, नदीका जल, सागरका जल इत्यादि। उसी प्रकार जीव नामका पदार्थ यद्यपि एक प्रकारका ही है, चाहे मनुष्यका जीव हो या गायका। परन्तु भिन्न-भिन्न शरीरोमे उत्पत्ति तथा निवास स्थानकी अपेक्षा उसे अनेक प्रकारका कहा जाता है—यथा मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतग आदि। जलमे रहनेवाले, पृथ्वीपर चलनेवाले, आकाशमे उडनेवाले, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय इत्यादि। अब इन शरीरधारी ससारी जीवोके इन्ही भेद-प्रभेदोका कुछ सक्षिप्त-सा परिचय देता हूँ।

जीव पदार्थ जिसे पहले असख्यात प्रदेशी तथा शरीरके आकार-का कहा गया है, बराबर नये-नये शरीर धारण करता रहता है, यह बात सर्व प्रत्यक्ष है, तथा इसकी सिद्धि भी पहले कर दी गयी है। नये-नये शरीरोमे इस प्रकार जन्म-मरण करनेका नाम संसार है। उस ससार अर्थात् जन्म-मरण करनेमे ही जो उलझ रहे है उन्हे संसारी कहते हैं, जैसे—हम, तुम, सब। परन्तु कुछ ऐसे जीव भी हैं तथा आगे भी होगे जो साधना-विशेषके द्वारा इस जन्म-मरणके

प्रपचको जीतकर शरीर तथा अन्त करणके बन्धनोसे छूट जाते हैं और फिर कभी इन बन्धनोमे नही पडते। ऐसे जीवोको मुक्त जीव कहते हैं, क्योकि छूटनेका नाम ही मोक्ष है और छूटे हुए का नाम मुक्त। ऐसे जीव हमको दिखाई नही दे सकते, क्योकि वे शरीर रहित हैं और दिखाई देनेवाला शरीर ही होता है, जीव या आत्मा नही। ससार तथा मोक्षके स्वरूपका विवेचन 'शान्ति पथ प्रदर्शन' नामकी पुस्तकमे किया गया है, वहाँसे जानना। यहाँ तो केवल इतना ही बताना इष्ट है कि जीव दो प्रकारके है—एक ससारी और दूसरे मुक्त। मुक्त जीवके कोई भेद नही होते क्योकि उसके साथ शरीर तथा अन्त.करण नही होता। शरीरके भेदसे ही जीवके भेद हैं, इसलिए शरीरधारी जीवोके अनेक भेद हैं, जो आगे वर्णन किए जायेंगे।

४. इन्द्रियोकी अपेक्षा जीवके भेद

इन पाँच इन्द्रियोमे-से किसी जीवके शरीरमे केवल एक इन्द्रिय होती है और किसीके शरीरमे दो-तीन आदि। सभी प्रकारके शरीर हमे इस पृथ्वीपर दिखाई देते हैं। जिनके पास एक इन्द्रिय होती है उन्हे एकेन्द्रिय जीव कहते हैं। इसी प्रकार दो इन्द्रियोवालेको द्वीन्द्रिय, तीनवालेको त्रीन्द्रिय और चारवालेको चतुरिन्द्रिय कहते है। जिनके पाँचो इन्द्रियाँ है उन्हे सकलेन्द्रिय या पचेन्द्रिय जीव कहते है।

इन्द्रियको धारण करनेका एक सुनिश्चित क्रम है। इस क्रमको अपने शरीरपर-से पढा जा सकता है। यदि हम अपने शरीरपर नीचेसे ऊपरकी ओर देखते चलें तो पहले नम्बरपर स्पर्शन इन्द्रिय अर्थात् यह सारा शरीर आता है, दूसरे नम्बरपर रसना या जिह्वा आती है, तीसरे नम्बरपर नाक या घ्राण, चौथे नम्बरपर नेत्र या आँख और पाँचवें नम्बरपर कर्ण या कान आते हैं। जीवोंके शरीरो मे जो हीन या अधिक इन्द्रियाँ प्रकट होती हैं, वे भी इसी क्रमसे होती हैं। इस क्रमका प्रकृति कभी उल्लघन नही करती। कहनेका

तात्पर्य यह है कि एकेन्द्रिय जीवोके पास पहले नम्बरवाली एक स्पर्शन इन्द्रिय ही हो सकती है। दूसरे-तीसरे नम्बरवाली रसना या घ्राण आदिमे से कोई भी एक इन्द्रिय हो जाये ऐसा कभी नही हो सकता। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीवोके पास पहली और दूसरी स्पर्शन तथा रसना यह दो इन्द्रियाँ ही होती है, इनके स्थानपर कोई अन्य दो नही। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवोके पास स्पर्शन, रसना तथा घ्राण अर्थात् शरीर, जिह्वा तथा नाक ही होती है अन्य नही। चतुरिन्द्रियके पास स्पर्शन, रसना व घ्राणके साथ नेत्र या आँख आ मिलती है पर कान नही। पंचेन्द्रिय जीवोके पास कर्ण समेत पाँचो इन्द्रियाँ होती है।

एकेन्द्रिय जीवोके उदाहरण हैं वृक्ष आदि। दो इन्द्रियोमे केंचुआ, लट आदि रेंगकर चलनेवाले कीड़े होते है, क्योकि इनके पास शरीरके अतिरिक्त जिह्वा भी होती है। त्रीन्द्रिय जीवोके उदाहरण हैं चीटी गिजाई या कानसलाई, बिच्छू, कानखजूरा आदि पाँवसे चलनेवाले कीड़े, क्योकि इनके पास स्पर्शन, रसनाके अति-रिक्त नाक भी होती है। चतुरिन्द्रिय जीवोके उदाहरण हैं मक्खी, मच्छर, भिर्र आदि उडकर घूमनेवाले कीडे, क्योकि इनके पास नेत्र भी होते हैं। और पचेन्द्रिय जीवोके उदाहरण है मछली, सर्प, गाय, तोता, मनुष्य आदि। इन उदाहरणोपर-से इन्द्रियोकी अपेक्षा जीवोके भेद-प्रभेद जाने जा सकते है।

एकेन्द्रियवाले जीवोके शरीरमे कुछ विशेषता है जो आगे बतायी जायेगी। दोसे लेकर पाँच इन्द्रिय तकके जीवोमे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय ये तीन प्रकारके जीव **विकलेन्द्रिय** कहलाते हैं, क्योकि इनके पास पूरी इन्द्रियाँ नही है, विकल अर्थात् कम इन्द्रियाँ हैं। पचेन्द्रिय जीव **सकलेन्द्रिय** कहलाते हैं, क्योकि इनके पास सकल अर्थात् पूरी इन्द्रियाँ है।

५ मनकी अपेक्षा जीवोके भेद

पाँच इन्द्रियोके अतिरिक्त एक छठी इन्द्रिय भी है। ये पाँच इन्द्रियाँ तो बाह्य है परन्तु वह छठी इन्द्रिय अन्तरंग है। उसका नाम है मन। यह इन्द्रिय अत्यन्त सूक्ष्म है, अत इसका विशेष परिचय यहाँ दिया जाना शक्य नही है। यहाँ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि तर्क-वितर्क या सकल्प-विकल्प करनेकी अन्तरग शक्तिका नाम मन है। अप्रत्यक्ष होनेके कारण इसे इन्द्रिय न कहकर नो-इन्द्रिय कहा जाता है। नो का अर्थ है किंचित् अर्थात् कुछ-कुछ। अप्रत्यक्ष होनेके कारण यह इन्द्रिय भले न हो परन्तु विचारनेपर इसका कार्य कुछ-कुछ प्रत्यक्ष होता है, अत इसे कुछ कुछ इन्द्रिय कहना न्याय है। इस प्रकारकी शक्ति सभी जीवोमे नही पायी जाती। एकसे लेकर चार इन्द्रिय तकके जीवोमे तो यह शक्ति बिलकुल है ही नही। पचेन्द्रिय जीवोमे भी कुछ ऐसे है जिनके पास कि यह शक्ति नही है। जैसे कि कुछ विशेष प्रकारकी मछलियाँ, छिपकली, कुछ विशेष प्रकारके सर्प आदि। पशु-पक्षी यद्यपि प्राय: इस शक्तिसे युक्त देखे जाते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं जिनमे यह शक्ति नही पायी जाती। यद्यपि ऐसे कोई पशु-पक्षी प्राय: देखनेमे नही आते तदपि शास्त्रोमे उनका उल्लेख पाया जाता है। इस शक्ति युक्त जीवोको समनस्क या सज्ञी कहा जाता है और इससे रहितको अमनस्क या असज्ञी।

यहाँ शका हो सकती है कि विचारनेकी शक्ति तो चीटी आदिकमे भी पायी ही जाती है, फिर उन्हे असज्ञी क्यो कहा गया ? सो ठीक है। विचारनेकी शक्ति उनमे है अवश्य परन्तु विशेष प्रकारकी जो शक्ति यहाँ कहना इष्ट है, वह इनमे नही पायी जाती। विचारणा-शक्ति दो प्रकारकी है—एक साधारण, दूसरी विशेष। साधारण विचारणा केवल अपने हित-अहित अथवा

प्रेम-द्वेषरूप होती है, परन्तु विशेष विचारणा शिक्षा ग्रहणरूप होती है। सामान्य तथा विशेष विचारणाके सूक्ष्म भेदको जाननेके लिए आपको अन्त.करणका विश्लेषण करके अच्छी तरह पढना होगा। अन्त'करणके अन्तर्गत चार चीजें बतायी गयी हैं—बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा मन। यहाँ केवल इतना समझना है कि क्या चीटी और क्या मनुष्य सभी इस बातको विचारते हैं कि ऐसा काम करनेसे भला होगा और ऐसा काम करनेसे बुरा। इधर जाना हमारे लिए हितकारी है और इधर जाना अहितकारी। यह पदार्थ हमारे लिए इष्ट है और यह अनिष्ट इत्यादि। छोटे या बड़े सभी प्राणी अपने-अपने भोज्य पदार्थके प्रति ही गमन करते हैं। चीटी यद्यपि नही देख सकती परन्तु दूरसे ही अग्निकी गर्मीको स्पर्श द्वारा महसूस करके यह जान जाती है कि आगे कोई अनिष्ट पदार्थ है। अवश्य ही वह यह विचारती होगी कि इधर जायेगी तो जल जायेगी। इसलिए इधर जाते-जाते पलट जाती है। एक चीटी दूसरी चीटीके साथ अपने दो अग्र बालो द्वारा कुछ संकेत विशेष करके उससे बातें किया करती है, जिसके कारण वह जाते-जाते यह सिद्ध करती है कि चीटी आदि सर्व ही विकलेन्द्रिय जीवोमे विचारनेकी शक्ति अवश्य है। इस प्रकारकी हिताहित रूप विचारणा-शक्ति साधारण कही जाती है, क्योकि सामान्य रूपसे सबमे पायी जाती है।

दूसरी विचारणा-शक्ति शिक्षा ग्रहण सम्बन्धी है। चीटी आदि क्षुद्र प्राणी अपनी-अपनी जातिके अनुसार तो अवश्य भोजनादिकी प्राप्तिके लिए गमनागमन रूप कार्य करते रहते हैं, परन्तु यदि आप इन्हे अपनी तरफसे कोई नयी बात सिखाना चाहे तो वे सीख नही सकते। तोता, मैना, कबूतर, कुत्ता, घोड़ा आदि सभी प्राणी पढाये जानेपर अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार हीन या अधिक कुछ ऐसी

नयी बातें भी पढ जाते हैं, जो कि उन-उनकी ही जातिके अन्य प्राणी नही जानते हैं। इस प्रकारसे चीटी, मक्खी आदि नही पढाये जा सकते। जो एक चीटी जानती है तथा विचारती है वही उसकी जातिकी सभी जानती तथा विचारती है। इसी प्रकार जो एक मक्खी जानती तथा विचारती है वही उसकी जातिकी सभी जानती तथा विचारती हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि तोता, मैना, कबूतर, कुत्ता, घोड़ा, मनुष्य आदिकोमे कुछ विशेष प्रकारकी शक्ति अवश्य है, जो दूसरे जीवोमे नही है। बस उसे ही यहाँ विशेष विचारणा-शक्ति कहा गया है।

जिनमे वह विशेष विचारणा है वे मनवाले **संज्ञी** कहलाते है और जिनमे वह नही है वे मन रहित **असज्ञी** कहे जाते हैं। इसी बातको यो भी कह सकते हैं कि अन्त करणके चार अगोमे-से बुद्धि, चित्त और अहकार तो सभीके पास हैं परन्तु मन किसीके पास है और किसीके पास नही। जिनके पास मन नहीं है ऐसे एकेन्द्रिय-से चार इन्द्रिय तकके जीव असज्ञी कहे जाते हैं। और जिनके मन है वे सज्ञी कहलाते हैं।

इस प्रकार पचेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं—सज्ञी तथा असज्ञी। सज्ञीके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। असज्ञीके उदाहरण यद्यपि निश्चित रूपसे नही दिये जा सकते हैं, क्योकि पशु व पक्षियोमे जिन जीवोसे हमारा नित्य वास्ता पडता है वे सभी सज्ञी हैं। फिर भी कुछ विशेष प्रकारकी मछलियाँ तथा सर्प आदि असज्ञी अवश्य हैं। मनुष्य तो नियमसे असज्ञी होते ही नही हैं।

६. त्रस-स्थावरकी अपेक्षा जीवके भेद

उपर्युक्त बताये हुए जीवोको हम अन्य प्रकारसे भी विभाजित कर सकते हैं। कुछ जीव ऐसे होते है जो भय तो खाते हैं परन्तु

भय खाकर अपने स्थानसे अन्यत्र अपनी रक्षा करनेके लिए भाग नही सकते—जैसे कि वृक्ष यद्यपि भय तो खाता है परन्तु भाग नही सकता। ऐसे जीवोको स्थावर कहते हैं। दो इन्द्रियसे लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व ही क्षुद्र कीडे, पशु-पक्षी तथा मनुष्य आदि भी भी भय खाते हैं और अपनी रक्षाके लिए भागते भी हैं। इस प्रकारके सर्व जीव त्रस कहलाते हैं। एकेन्द्रिय सभी जीव स्थावर होते हैं।

एकेन्द्रिय स्थावर जीव आगममे पाँच प्रकारके कहे गये हैं— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति। भूगर्भमे उत्पन्न होनेवाले खनिज पदार्थ सभी **पृथ्वी** कहे जाते हैं—जैसे मिट्टी, पत्थर, लोहा, ताँबा आदि। वाष्प तथा वर्षासे लेकर समुद्र पर्यन्तका सभी प्रकारका जल जल कहलाता है। ज्वाला, चिनगारी, अगारा आदि सभी अग्नि कहे जाते हैं। साधारण वायु तथा आक्सीजन आदि गैसें सब **वायु** कहे जाते हैं। घास, बेल, वृक्ष, पौधा, पत्ता, डाली टहनी आदि **वनस्पति** कहे जाते हैं।

७ त्रस-स्थावर जीवोंमे जीवत्वकी सिद्धि

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति इन पाँचोमे-से वनस्पतिमे जीवत्वका होना आज सबको स्वीकार है, क्योकि उसके अनेको लक्षण सर्व-प्रत्यक्ष हैं और बोस बाबूके अनुसन्धानोके कारण आजके विज्ञानने भी इसे स्वीकार किया है। आहार, भय, मैथुन तथा परिग्रह ये चार बातें हैं, जिनपर-से कि किसी भी शरीरमे जीवत्वकी सिद्धि की जाती है। शरीरके पोषणके लिए जो कुछ भी अपने-अपने योग्य भोजन-पान ग्रहण किया जाता है, उसे 'आहार' कहते हैं। शरीरके विनाशका कारण उपस्थित हो जानेपर जो डर लगता है और अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न होने लगता है उसे भय कहते हैं। स्त्रीके हृदयमे पुरुषके साथ सम्भोग करनेकी

और पुरुषके हृदयमे स्त्रीके साथ सम्भोग करनेकी जो इच्छा उत्पन्न होती है उसे **मैथुन** कहते हैं। अपने जीवन निर्वाहके लिए सामग्रीका इकट्ठा करना **परिग्रह** कहलाता है।

जिस प्रकार मनुष्यमे ये सब बातें पायी जाती हैं, उसी प्रकार केचुआ, मक्खी, चींटी आदि सभी कीडोमे तथा पशु-पक्षियोमे भी पायी जाती हैं, यह बात प्रत्यक्ष है। इसपर-से यह विश्वास होना कठिन नही कि द्वीन्द्रियसे लेकर सज्ञी पचेन्द्रिय तकके सभी त्रस जीवोके शरीरोमे जीवत्व अवश्य है। जबतक शरीरमे ये चारो लक्षण पाये जाते हैं तबतक ही हम उस शरीरको जीवित कह सकते हैं। और इन लक्षणो के अभावमें उसे मृत कहते हैं। जिस प्रकार कि मनुष्यके मुरदा शरीरमे ये चारो बातें नही रहती उसी प्रकार कीडो आदिके शरीरोमे भी मरनेके पश्चात् ये बातें देखी नही जा सकती।

त्रस जीवोकी ही भाँति वृक्ष आदि वनस्पतिमे भी ये चारो बातें अवश्य देखी जाती है। जबतक ये चारो बातें देखी जाती हैं तबतक ही वह वृक्ष जीवित समझा जाता है, जैसे कि हरा-भरा वृक्ष या घास आदि। जब इनका अभाव हो जाता है तब उस वनस्पतिका शरीर मरा हुआ समझा जाता हैं, जैसे कि ठूँठ या लकडी आदि। वृक्षमे इन चारो बातोको दर्शाता हूँ। वृक्षमे आहार ग्रहणकी इच्छा होती है इसलिए वह अपनी जडें पृथ्वीमे दूर तक फैला लेता है और उनके द्वारा जल खीचता है। जिधर अधिक नमी पाता है उधर ही जडें फैलाता है। जहाँ निकटमे ही जल मिल जाता है वहाँ अपनी जडोको अधिक फैलानेकी आवश्यकता नही समझता, परन्तु जहाँ जल बहुत दूर मिलता है वहाँ अपनी जडें लम्बी बना लेता है। यही कारण है कि रेगिस्तानमें उत्पन्न होनेवाले वृक्षोकी

जडें अधिक लम्बी होती हैं। इसके अतिरिक्त जिस दिशासे धूप या प्रकाश आता है यह अपनी टहनी और फूलोका मुख भी उस दिशाकी ओर घुमा देता है। कुछ मास-भक्षी वृक्ष तथा घास भी पाये जाते हैं जो कि किसी मनुष्य अथवा पशु-पक्षीके निकट आते ही अपनी पतली-पतली डालियोंके अग्रभागोको जो कि बहुत नुकीले होते है, उनके शरीरमे घुसा देते हैं और उनके द्वारा उनका समस्त रक्त चूस लेते हे। इसपर-से यह सिद्ध होता है कि वृक्षमे आहार ग्रहणकी इच्छा अवश्य है।

वृक्ष भय भी खाता है। बोस साहबने इस बातको भली भाँति सिद्ध किया है कि आँधी आदि आनेसे पहले ही वृक्षोका हृदय काँपने लग जाता है, उनकी धडकन बढ जाती है। विष देनेसे वे मर जाते है और क्लोरोफार्म देनेसे मनुष्यकी भाँति अचेत हो जाते हैं। आक्सीजन देनेपर सचेत हो जाते हैं। बोस साहबने वृक्षोको साँस लेते देखा है, उन्होने वृक्षोंके हृदयकी धड़कन सुनी है, उनकी नाडी भी धड़कती हुई देखी है। छुई-मुईका पोधा तो प्रत्यक्ष ही आपका शरीर छू जानेपर भयके मारे अपने अग सिकोड लेता है।

वृक्षोमे मैथुन भाव भी अवश्य होता है। कुछ वृक्ष तभी फलते-फूलते हैं जबकि उनपर विशेष प्रकारकी बेलें चढा दी जायें, और इसी प्रकार कुछ लताएँ भी तभी फलती-फूलती हैं जबकि उनको किन्ही विशेष वृक्षोपर चढाया जाये। पपीता बहुत अच्छा फल देता है यदि पपीतेके खेतमे ही कुछ मादा पपीतेके वृक्ष भी लगा दिये जायें। लाजवन्ती नामका पोधा पुरुषका साया पड़नेपर ही अपने अंग सिकोड लेता है और स्त्रीका स्पर्श पाकर खिल उठता है।

वृक्षोमे परिग्रहकी भावना भी अवश्य है। इसी कारण रेगिस्तानमे जहाँ कही भी जल देखनेको नही मिलता वहाँ वृक्षोकी

निकटवाली पृथ्वीमे नमी देखी जाती है, जो कि उस वृक्षके द्वारा चारो ओरका पानी खीचकर एकत्रित करते रहनेके कारण ही होती है।

इस प्रकार वनस्पतिमे निश्चित रूपसे जीवत्वकी सिद्धि होती है। क्योकि मरे हुए वृक्षो अर्थात् ठूँठोमे अथवा कटी हुई लकडीमे ये लक्षण देखनेको नही मिलते, इसलिए वे मृत हैं।

पृथ्वीमे यद्यपि वनस्पतिकी भाँति चारो बातें दिखाकर निश्चित रूपसे तो जीवत्वकी सिद्धि नही की जा सकती, परन्तु खानमे रहनेपर ही खनिज पदार्थ वृद्धि पाते है खानसे बाहर निकलनेपर नही, यह एक लक्षण ही ऐसा है जिसपर-से कि यह जाना जाता है कि खानमे रहनेवाला पदार्थ जीवित था और काटकर वहाँसे बाहर निकाल देनेपर वह मर गया है। इसके अतिरिक्त खानमे कुछ प्राकृतिक खराबियाँ उत्पन्न हो जानेपर भी वृद्धि रुक जाती है या कम हो जाती है, जिससे प्रतीत होता है कि खानके शरीरमे रोग हो गया है और उसका इलाज भी किया जाता है। इन लक्षणोपर-से जीवत्वकी सिद्धि होती है। खानमे रहते हुए ही पदार्थ जीवित है बाहर निकलनेपर नही।

जल, अग्नि तथा वायु पृथ्वीसे भी अधिक सूक्ष्म है, अतः इनमे जीवत्वकी सिद्धिके योग्य लक्षण हमे दिखाई नही देते। परन्तु सूक्ष्म दृष्टिवाले योगीजन इनमे भी जीवत्वका प्रत्यक्ष करते हैं। जल तथा वायुके जीवत्वसे तात्पर्य उन क्षुद्र कीडोसे नही है जो कि इनमे रहते है और जिनका साक्षात् माइक्रोस्कोपसे होता है। वे तो पृथक् जीव हैं जो कि इनमे पृथक्से पैदा होते हैं। उन सबका अपना-अपना स्वतन्त्र जीवत्व है, जिस प्रकार कि हमारे शरीर तथा पेटमे रहने वाली कृमि-राशि। जल तथा वायु नामके जो पदार्थ हैं, जिससे कि

प्यास बुझती है अथवा श्वास लिया जाता है, वे स्वयं जीवित हैं तथा मर भी जाते हैं, जैसे कि पानीको यदि अग्निपर रखकर गर्म कर दिया जाये तो वह मर जाता है।

पृथिवी, अग्नि, जल, वायु तथा वनस्पति इन पाँचोमे-से हमें वनस्पतिमे भयका प्रत्यक्ष होता है, पर वह अपनी रक्षाके लिए भाग नही सकता इसलिए उसे स्थावर कहना उचित है। इसी प्रकार पृथ्वी तथा अग्नि ये दोनो भी अपने स्थानसे अन्यत्र गमन नही कर सकते इसलिए स्थावर हैं। परन्तु जल तथा वायुको कैसे स्थावर कहा जा सकता है, जबकि वे भागते हुए देखे जाते है। सो भाई, वे भागते अवश्य हैं परन्तु भय खाकर भागते हो ऐसा कोई नियम नही। भागना उनका स्वभाव ही है, इसलिए उन्हे भी स्थावर कहनेमे कोई विरोध नही आता।

इन पाँचोसे वनस्पतिको सभी मतवाले जीव मानते हैं। वैदिक दर्शनकार इसे उद्भिज्ज योनि मानते हैं। अन्य चारको प्रायः अजीव या जड़ माना गया है। परन्तु जैन दर्शनकारने इन्हे भी जो जीव स्वीकार किया है, यह उसकी सूक्ष्म दृष्टिका ही फल है।

८. गतियोकी अपेक्षा जीवके भेद

अन्य प्रकारसे भी जीवोंके भेद-प्रभद किये जा सकते है और वे हैं जीवकी चार गतियाँ या जातियाँ। जीवकी मुख्यत. चार गति मानी गयी हैं—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। नारकी जीव अत्यन्त क्रूर प्रकृतिके, अत्यन्त भयानक तथा विकराल आकृतियोके होते हैं। एक दूसरेको मारने-काटनेमे ही उनको सुख मिलता है। वे लोग इस पृथिवीके नीचे किन्ही पाताल लोकोमे रहते हैं। मनुष्यो को छोडकर सभी स्थावर तथा त्रस जीवोकी सृष्टि तिर्यंच कहलाती है। पशु-पक्षी आदि तो तिर्यंच हैं ही, क्षुद्र कीड़े तथा पृथिवीसे

वनस्पति पर्यन्त के सर्व स्थावर जीव भी तिर्यंच कहलाते है। मनुष्य हम लोग है ही। देव नारकियोसे बिलकुल उलटे होते हैं, अर्थात् ये अत्यन्त सौम्य प्रकृतिके और अत्यन्त सुन्दर व मनोहर आकृतिके होते हैं। सदा ही विनोद व विलासमे इनका जीवन व्यतीत होता है। ये पृथिवीसे ऊपर किसी स्वर्गलोकमे रहते हैं। मनुष्यो तथा तिर्यंचो की भाँति नारकियो तथा देवोका शरीर चमडे व हड्डीका बना हुआ नही होता, किसी विशेष प्रकारका ही होता है, जिसका साया तक नही पडता। उनका शरीर वैक्रियिक होता है अर्थात् वे अपनी मर्ज़ीसे उसे छोटा या बडा, हलका या भारी, एक या अनेक आदि रूपोको बना सकते हैं।

तिर्यंच तथा मनुष्य तो क्योकि इसी पृथिवीपर बसते हैं और सबको दृष्ट है, इसलिए उनकी सत्तापर सबको विश्वास है, परन्तु नारकी तथा देव क्योकि यहाँ नही बसते और दृष्ट भी नही हैं, इसलिए वे कोई हैं या नही ऐसा सशय बना रहता है। वे हैं ही है इस बातको यद्यपि प्रत्यक्ष कराया नही जा सकता परन्तु सभी मत-मतान्तरोमे यहाँ तक कि मुसलमानो तथा ईसाइयोके यहाँ भी इन्हे किसी न किसी रूपमे स्वीकार अवश्य किया गया है। भले ही आपको विश्वास न हो पर आगममे उनका वर्णन किस प्रकारसे किया जाता है, इसे अवश्य जानना चाहिए।

नरकलोक इस पृथिवीके नीचे स्थित है उसे पाताल लोक, दोज़ख या Hell कहते है। इस लोकमे गर्मी तथा सर्दी दोनो ही इतनी तीव्र होती हैं कि यदि हम लोग वहाँ चले जायें तो हमारा यह स्थूल शरीर वहाँकी गर्मीसे भस्म होकर राख बन जाये और सर्दीके कारण खण्ड-खण्ड होकर बिखर जाय। यह तो नारकी जीवोके वैक्रियिक शरीरकी विशेषता है कि इतनी गर्मी तथा सर्दीमे रहते हुए भी उनका शरीर जलता नही या खण्ड-खण्ड नही होता,

परन्तु तत्सम्बन्धी तीव्र वेदना तो उनको भी होती ही है। इसी प्रकार वहाँकी मिट्टी इतनी दुर्गन्धित है कि हम जैसोका दिमाग फट जाये पर वे लोग उसे सहन करते हुए ही वहाँ रहते हैं। उस लोक मे खानेको अन्नका एक भी दाना तथा पीनेको एक भी बूँद पानी नही मिलता। उन लोगोको भूख-प्यास इतनी लगती हैं कि इस पृथिवीका सारा अन्न खाकर तथा सागरका सारा जल पीकर भी एक व्यक्तिकी तृप्ति न हो, परन्तु इस भूख तथा प्यासकी वेदना सहते हुए, बिना खाये-पीये ही उन्हे वहाँ रहना पडता है। वहाँकी नदियो का जल सडे हुए रक्त तथा राध सरीखा दुर्गन्धित होता है। उसमे यदि कोई हम-सा व्यक्ति गिर जाये तो हमारा शरीर क्षण-भरमे जल जाये। ऐसे जलको वे लोग कदाचित् यदि प्यासकी वेदना से आतुर होकर पी लें तो उनका कलेजा जलने लगता है, जिससे अत्यन्त तीव्र वेदना होती है। वहाँ के वृक्षोंके पत्ते तलवारकी भाँति तीखी धारवाले तथा नुकीले होते हैं। उनपर बड़े-बडे तीखे काँटे भी होते हैं। उन्हें सेमर वृक्ष कहते हैं। उसका पत्ता यदि कदाचित् शरीरपर गिर पड़े तो इसको खण्ड-खण्ड कर दे। तथा अन्य भी अनेकों पदार्थ उस लोकमे ऐसे होते है जिनके स्मरण मात्रसे हृदय काँप उठता है परन्तु वे लोग अपने पूर्वकृत पापका फल भोगनेके लिए वहाँ ही रहते हैं। यह लोक एकके नीचे एक सात भागो मे विभक्त है। यही सात भाग सात नरकके नामसे प्रसिद्ध है। ज्यो-ज्यो नीचे-नीचेके लोकोमे जाते हैं त्यो-त्यो अधिक-अधिक दु ख या दु खकी सामाग्री प्राप्त होती है।

वहाँके रहनेवाले जीव नारकी कहलाते है। उनका शरीर वैक्रियिक होता है। वैसे तो स्वभाव से ही उनकी आकृति विकराल तथा भयानक होती है, परन्तु वैक्रियिक शरीरकी विशेषता के कारण वे अनेको प्रकारकी अति भयानक आकृतियाँ भी एक दूसरेको कष्ट

देनेके लिए बना लिया करते हैं। उन लोगोकी आकृति अत्यन्त कुटिल तथा क्रूर हुआ करती है। उन्हे सदा मार-काट ही भाती है। वे एक क्षण भी खाली नही बैठते, सदा मरते-मराते तथा काटते-कटाते ही रहते हैं। उनके शरीरकी विशेषताके कारण मर-कटकर भी वे मरते-कटते नही, क्योकि जिस प्रकार पारा बिखरकर पुन. मिल जाता है उसी प्रकार कट-कटकर भी उनका शरीर पुनः मिल जाता है। इसलिए जितनी आयु लेकर वे जाते हैं उतने काल तक दु ख भोगते हुए वहाँ जीवित ही रहते हैं, मरते नही है। शरीरकी विशेषताके कारण आत्महत्याके द्वारा भी उस दु खसे पिण्ड नही छुड़ा सकते। वे लोग परस्परमे एक दूसरेको पकडकर कभी करोतसे चीर डालते हैं, कभी उन्हे अग्निमे झोक देते हैं, कभी उबलते तेलके कड़ाहेमे डाल देते हैं, कभी कोल्हूमे पेर देते है, कभी गर्म करके लाल किये गये लोहेके स्तम्भके साथ चिपटा देते हैं, कभी उनका मुख सडासियोसे फाडकर उन्हे अग्नि द्वारा गलाया हुआ ताँबा पिला देते हैं, कभी उन्हे कँटीले वृक्षोपर चढाकर घसीट लेते हैं, जिससे उनका शरीर विदीर्ण हो जाता है—इत्यादि अनेक प्रकारसे दु ख देते रहते हैं। उन्हे सदा वैर विरोधकी बातें ही याद आती हैं। इस प्रकार नरक गतिके जीव प्रचुर दु ख भोगते हुए नरक लोकमे निवास करते है। पूर्व भवोमे अत्यन्त पाप कर्म करनेवाले व्यक्ति ही यहाँ जन्म लेते है। इन लोगोकी आयु भी बहुत लम्बी अर्थात् लाखो-करोड़ो वर्षोंकी होती है। इतने काल तक वे बराबर अपने पाप कर्मोंका फल भोगते रहते हैं।

देवगतिमे नरकगतिसे बिल्कुल उलटी व्यवस्था है। देवलोक-को स्वर्ग, बहिश्त या Heaven कहते हैं। यहाँ सर्व ही बातें अत्यन्त सुहावनी, सुन्दर व तृप्तिकर होती हैं। सर्व प्रकारके विषयभोगकी सामग्री तथा सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ भी यहाँ अति सुलभ

हैं। इन लोगोके शरीर अत्यन्त सुन्दर तथा वैक्रियिक होते हैं, जिसके कारण ये अनेको सुन्दर-सुन्दर तथा मनभावने रूप धारण कर लेते हैं। इन लोगोका स्वभाव अत्यन्त मृदुल होता है। वे सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। यद्यपि उनमे भी बडे व छोटे दर्जे होते हैं परन्तु सब सुखी होते हैं। उनके राजाका नाम इन्द्र है, जिसका वैभव अतुल होता है। उनकी आवश्यकताएँ यद्यपि अल्प होती है परन्तु उनके पास भोग सामग्री अधिक होती है। देवोके रहनेके घरोको विमान कहते है।

एकके ऊपर एक करके यह स्वर्गलोक १९ भागोमे विभक्त हैं। पहले सोलह भाग कल्पके नामसे प्रसिद्ध हैं। १७वें भागको ग्रैवेयक कहते हैं, जो स्वय नौ भागोमे विभाजित है, और इसलिए इसे नवग्रैवेयक कहते है। अठारहवाँ भाग अनुदिश कहलाता है, जिसमे देवोके रहने योग्य नौ स्थान या विमान हैं। उन्नीसवें भागको अनुत्तर कहते हैं जिसमे पाँच विमान हैं। १६ स्वर्गोंमे ऊपर ऊपरके स्वर्गोंमे आवश्यकताएँ कम कम होनेके कारण सुख अधिक-अधिक है। यहाँ तक राजा-प्रजाकी कल्पना रहती है, इसलिए इन्हे कल्प कहते हैं। इन स्वर्गोंके पृथक्-पृथक् इन्द्र भी होते हैं। परन्तु इससे ऊपरके तीन भागोमे राजा प्रजाका भेद नही है, इसलिए उन्हे कल्पातीत कहते है। वहाँ कोई इन्द्र नही होता या यो कह लीजिए कि वहाके रहनेवाले सभी अपने-अपने इन्द्र हैं। इसलिए वहाँके रहनेवालोको अहमिन्द्र कहते हैं। इन भागोमे भी ऊपर-ऊपर जानेपर आवश्यकताएँ घटती जाती है और सुख बढता जाता है। सबसे ऊपर-वाले अनुत्तर स्वर्गके पाँच विमानोमे बीचवाले विमानका नाम सर्वार्थसिद्धि है। स्वर्गमे यह सबसे उत्तम स्वर्ग माना जाता है क्योकि यहाँ रहनेवाले देव अत्यन्त तृप्त तथा सन्तुष्ट होते है। स्वर्ग-लोकमे रहनेवाले देवोको स्वर्गवासी, विमानवासी या कल्पवासी देव कहा जाता है।

स्वर्गके अतिरिक्त कुछ और भी देव होते हैं, जो कुछ छोटी जातिके माने जाते हैं। इनके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारा नक्षत्र आदि लोकोमे रहनेवाले देवोको ज्योतिषदेव कहते हैं। पृथिवीके नीचे एक भावनलोक है, जिसमे कुछ सुन्दर भवन हैं। इन भवनोमे रहनेवाले लोग भवनवासी देव कहलाते हैं। असुरगण, राक्षसगण, नागदेवता, वायुदेवता, जलदेवता, अग्निदेवता, श्येन या सुपर्ण (पक्षी विशेष) देवता इत्यादि देवता जो भारतमे प्रसिद्ध है वे सब इसी जातिमे सम्मिलित हैं। इस पृथिवी-तलके किन्ही चौराहोपर या वृक्षकी कोटरोमे या सूने मकानोमे, श्मशान भूमियोमे तथा इसी प्रकार वन-खण्ड आदि प्रदेशोमे रहनेवाले भी कुछ देव होते हैं, जिन्हे व्यन्तर कहते हैं। भूत, प्रेत आदिके रूपमे जो प्रसिद्ध हैं वे सब इसी जातिके हैं। व्यन्तर देव सबसे नीची जातिके होते हैं।

ये सब ही प्रकारके देवलोग पूर्वकृत पुण्य कर्मोंका फल भोगनेके लिए ही इस गतिमे जन्म धारण करते हैं। अधिक धर्मात्मा तथा ईश्वरपरायण व्यक्ति स्वर्गवासी देव बनते हैं और ईश्वरपरायण होकर भी पापवृत्ति करनेवाले जीव अपने-अपने योग्य नीचो जातिके देव होते हैं।

६ नरक तथा स्वर्गकी सिद्धि

आजके जगत्का ऐसा विश्वास है कि नरक-स्वर्ग कोई वस्तु नही है। जो कुछ है इसी पृथ्वीपर है। यही नरक है और यही स्वर्ग, क्योकि यहाँपर उत्कृष्ट प्रकारका सुख तथा दु ख दोनो उपलब्ध होते है। उत्कृष्ट दु खमे ग्रस्त प्राणी नरककी वेदनाका अनुभव कर रहा है और उत्कृष्ट प्रकारके सुखमे मग्न प्राणी स्वर्ग-सुखका अनुभव कर रहा है।

तिर्यंच गतिवाला जो पालतू कुत्ता मखमलके गद्देपर सोता है,

तथा जिसकी सेवाके लिए दो नौकर हैं, स्वर्ग-सुखका अनुभव कर रहा है। जिसपर ५० मन भार लदा है, वेचारेसे एक कदम भी नही पटता, जीभ बाहरको लटक रही है, मुँहसे झाग पड़ रहे हैं, हाँफते-हांफते कलेजा फटा जाता है, गरमीके दिन होनेके कारण प्यासके मारे सारे शरीरमे अग्नि व्याप रही है, गरदन घायल हो गयी है, दोनो तरफ लटक रही है, फिर भी ऊपरसे डण्डोंके कडे आघात सह रहा है, जिससे उसकी चमडी भी कही-कहींसे उघड गयी है, डण्डेके आगे लगी हुई कील उसके अण्ड-कोषमे चुभायी जा रही है। ऐसा भैंसा नरककी वेदनाका अनुभव कर रहा है। अथवा वह गधा नरककी वेदनाका अनुभव कर रहा है, जिसकी कमरपर बहुत बड़ा घाव है, और कौवे बैठ-बैठकर उसे अपनी तीखी चोचसे ठोग रहे हैं। अथवा वह बूढी गाय नरकका दु ख भोग रही है, जिसने दूध देना बन्द कर दिया है, जिसे स्वामीने घरसे बाहर निकाल दिया है, जो भूखी-प्यासी गलियोमे घूमती है, कही कुछ भी खानेको नही मिलता, जीभसे सूखी पृथिवीको चाटकर सन्तोष कर लेती है, सर्दीकी रातोमे खुले आकाशके नीचे ही बैठकर ऊपरसे पडनेवाले ओलोके कडे आघात सह रही है, और सर्दीमे ठिठुर-ठिठुरकर प्राण छोड रही है। अथवा वे अनाथ पक्षीगण नरककी वेदना सहन करते हैं, जो कि सर्दीकी तुषार बरसाती रातोमे वृक्षोपर बैठे उसके पत्तोमे छिपकर कुहरे व ओले आदिसे अपनी रक्षा करनेका व्यर्थ प्रयत्न कर रहे है।

इसी प्रकार मनुष्य गतिमे भी बडे-बडे राजे महाराजे तथा बडे बडे सेठ साहूकार जिनके पास कि भोगके सम्पूर्ण साधन उपस्थित हैं, जिनके चारो ओर सेवक लोग रहते हैं, जिनके पास सुन्दर सुन्दर स्त्रीयें हैं, स्वर्गका सुख भोग रहे हैं। और वह बेचारा

लाचार कोढी नरककी वेदनाका अनुभव कर रहा है, जिसपर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, जिसे तीन दिनसे कुछ खानेको भी नही मिला है, जो सड़कके किनारे पडा तडप रहा है। अथवा वे व्यक्ति नरकके दु ख भोग रहे है जो दुष्काल पड़ जानेके कारण अस्थिपजर मात्र शेष रहा गये हैं, और अपनी गोदके बच्चोको भी मारकर खा रहे है।

भैया! ठीक है इस पृथिवी पर भी हमको प्रचुर सुख तथा दु ख दोनो उपलब्ध होते हैं। उन सुखोको स्वर्ग-सुख और दु.खोको नरक-दु ख कह भी दिया जाता है, परन्तु वास्तवमे ये स्वर्ग वा नरक नही हैं। स्वर्ग उसे कहते हैं जहाँ शारीरिक दु खका लेश भी नही है और नरक उसे कहते हैं जहाँ शारीरिक सु.खका लेश भी नही है। स्वर्गमे किंचित् मात्र भी शारीरिक दु.ख नही होता, जबकि सुखीसे सुखी मनुष्य तथा तिर्यंचमे भी कुछ न कुछ दु खका लेश अवश्य पाया जाता है। इसी प्रकार नरकमे किंचित् मात्र भी शारीरिक सुख नही होता, जब कि दु खीसे दुखी मनुष्य तथा तिर्यंचमे भी कुछ न कुछ सुखका लेश अवश्य पाया जाता है।

मनुष्य गतिमे बड़ेसे बड़े धनपतियोको यद्यपि सर्व प्रकारका सुख है, परन्तु क्या कभी उनके शरीरमे रोग नही आता? उनका शरीर चिन्ताओके भारसे प्रायः अस्वस्थ रहता है। उनको रात्रिको पूरी नीद सोनेका भी अवसर कहाँ है? उन्हे चैनसे बैठकर बाल-बच्चोंके साथ बोलनेका तथा खाना खाने तकका सुख भी कहाँ है? अत कहा जा सकता है कि उनमे प्रचुर सुखके साथ-साथ दु खका अंश भी अवश्य विद्यमान है। इसी प्रकार प्रचुर वेदनाका अनुभव करनेवाला वह कोढी भी कदाचित् किसी राहगीरसे एक पैसा पाकर अथवा एक आधा ग्रास रोटीका खाकर अथवा प्यासा होनेपर कदाचित् पानी पीकर क्या कुछ भी सुख महसूस नही करता है?

अत. कहा जा सकता है कि उसमे प्रचुर दु.खके साथ-साथ सुखका अश अवश्य विद्यमान है ।

तिर्यंच गतिमे उस पालतू कुत्तेको भी इसी प्रकार कदाचित् दूसरे कुत्तोके साथ लडते हुए, या किसी मनुष्यके प्रति भोकते हुए छोटे-मोटे आघात सहने पड़ते ही हैं। अत. कहा जा सकता है कि उसमे प्रचुर सुखके साथ-साथ कुछ न कुछ दुःखका अंश अवश्य है। इसी प्रकार ठेलेमें जुते हुए उस भैंसको जब कभी भी घरपर जाकर कुछ चारा आदि खानेको या पानी पीनेको मिलता है तब तो वह सुखका अनुभव करता ही है। इसी प्रकार वह गधा और गाय भी कभी-कभी भोजन आदि पानेपर प्रसन्न होते ही है। पक्षी भी भले रात्रिको ठिठुरते रहे हैं पर सवेरा होनेपर आनन्दमे भरकर चहचहाते तथा फुदकते ही है। छोटे-छोटे कोडे भी भोजन आदिकी सामग्री प्राप्त होनेपर प्रसन्न होते ही हैं। वृक्ष तथा लताएँ भी यद्यपि गर्मीके मारे मुरझाकर मरी-मरी हो जाती हैं, परन्तु सवेरेकी ठण्डी-ठण्डी हवा लगनेपर अथवा जड़मे पानी पड़ जानेपर हर्षके मारे हँस-हँसकर झूमने लगती है। अत. कहा जा सकता है कि तिर्यंचोमे भी प्रचुर दु खके साथ-साथ सुखका अश अवश्य है।

इतना होनेपर भी मनुष्य तथा तिर्यंच दोनो योनियाँ समान नही कही जा सकती। साधारणत. मनुष्य तिर्यंचोकी अपेक्षा ऊँचे माने जाते हैं। पालतू कुत्तेकी अपेक्षा भी वह दुखी कोढी ऊँचा गिना जाता है। इसका कारण यह है कि मनुष्यके पास विशेष प्रकारकी बुद्धि है जो तिर्यंचोको प्राप्त नही है। उस बुद्धिके कारण वह स्वतन्त्रतासे अपने सुखके साधनाको यथा-योग्य प्राप्त कर सकता है, जबकि तिर्यंच पराधीन हैं और अपने सुखके साधनोको स्वय उत्पन्न करना नही जानते हैं। इसी बुद्धिके कारण सिह-

जैसा बलवान् पशु भी एक मनुष्यके निर्बल बालक तकसे भय खाता है ।

कर्म-सिद्धान्त नामक पुस्तकके अन्तर्गत यह बात भली-भांति सिद्ध कर दी गयी है कि किसी भी जीवको दु ख-सुख, लाभ-हानि जीवन-मरण आदि सब अपने-अपने कर्मके अनुसार ही मिलते हैं। जैसा भी कोई कर्म करेगा, वैसा ही उसका फल मिलेगा। अत. जितने प्रकारके कर्म है उतने ही प्रकारके फल भी लोकमे अवश्य होने चाहिए। तारतम्यकी अपेक्षा तथा पुण्य-पापके सम्मिश्रणकी अपेक्षा कर्म अनन्तो प्रकारके हो जाते हैं और उनके फल भी अनन्तो प्रकारके ही होते है। तदपि मानसिक संस्कार मुख्यतः चार कोटिमे विभाजित किये जाते हैं।

पहला प्रकार उन सस्कारोका समझिए जिनके कारण मन सदा ही मलिन रहता है, दूसरेके दु खकी कोई भी परवाह नही कारत, दूसरेके जीवनका शोषण करके स्वय गुलछर्रे उडाता है। परिग्रह-सचयका भाव मुख्यत. इसी कोटिमे आ जाता है। दूसरा प्रकार उन सस्कारोका समझिए, जिसके कारण मन मलिन तो अवश्य हो जाता है, परन्तु यह भी भाव बना रहता है कि दूसरेपर यह प्रकट न होने पावे कि मैंने उसे दु ख दिया है। अर्थात् स्पष्ट रूपसे किसीका शोषण करना उसे अच्छा नही लगता, इस कारण कुछ उज्ज्वलता उसमे अवश्य रहती है। मायाचारीके भाव मुख्यत. इसी कोटिमे आते हैं। ये दो पापकी दिशाके सस्कार है, और इसी प्रकार दो पुण्यकी दिशाके समझिए। प्रेम व मृदु सस्कार हृदयमे रखते हुए सर्व लौकिक व्यवहार करना तीसरी कोटिका कर्म है, जिसके कारण यद्यपि मन उज्ज्वल रहता है परन्तु लौकिक प्रवृत्ति होनेके कारण मलिनता भी बनी रहती है। नि स्वार्थ सेवा, ईश्वर-परायणता, व्रत, शील, सयम, तप आदि चौथे प्रकारके सस्कार हैं जिनके द्वारा मन अत्यन्त उज्ज्वल रहता है।

परिग्रह संचयके भावसे मन हर समय अत्यन्त मलिन रहता है, इसलिए यह प्रचुर प्रकारका पापकर्म है। मायाचारीके भावसे मन यद्यपि मलिन रहता है, परन्तु कभी-कभी कृत्रिम प्रेमकी भावनाके कारण उज्ज्वलता भी रहती है, इसलिए यह पहलेकी अपेक्षा छोटा पापकर्म है। प्रेम व मृदु भावसे मन उज्ज्वल रहता है परन्तु लौकिक प्रवृत्तिके कारण कुछ मलिनता भी रहती है, इसलिए यह कुछ कम दर्जेका पुण्यकर्म है। नि स्वार्थ सेवा तथा ईश्वर-परायणता आदिके भावोसे मन अत्यन्त उज्ज्वल रहता है, इसलिए यह प्रचुर पुण्यकर्म है।

प्रचुर पापका फल प्रचुर दु ख होना चाहिए जो तिर्यंचोमे सम्भव नही है और इसी प्रकार प्रचुर पुण्यका फल भी प्रचुर सुख होना चाहिए जो मनुष्योमे सम्भव नही है। प्रचुर दु ख उसे कहते हैं जहाँ बिल्कुल सुख न हो और ऐसा फल नरकमे ही सम्भव है। इसी प्रकार प्रचुर सुख उसे कहते हैं जहाँ दु ख बिल्कुल न हो और ऐसा फल देवोमे ही सम्भव है। मध्यम दर्जेके पापका फल तिर्यंच और मध्यम दर्जेके पुण्यका फल मनुष्य है। इस प्रकार चार प्रकारके मानसिक भावोका फल पानेके लिए चार प्रकारकी गतियोका होना आवश्यक है। अत भले ही प्रत्यक्ष न हो परन्तु नरक व देवगति हैं अवश्य। यह कोई न्याय नही है कि जो चीज़ हमको दिखाई नही देती वह है ही नही। विज्ञानने जिन चीज़ोको खोज निकाला है वे कभी भी मानवको प्रत्यक्ष नही थी फिर भी वे चीज़ें थी तो अवश्य, तभी तो खोजी जानी सम्भव हो सकी।

यद्यपि भाव चार प्रकारके है, और चार ही प्रकारके उनके फल बता दिये गये हैं परन्तु ये केवल सामान्य रूपवाले मानसिक भाव तथा उनके फल हैं। इनके साथ वचन तथा शरीरके पाप-पुण्यरूप कर्मोका सम्मेल भी होता है। बस उन कर्मोके

तारतम्यके कारण ही एक गतिके अन्तर्गत अनेक प्रकारके हीन तथा अधिक सुख-दुःखके फल बन जाते हैं।

१०. कायकी अपेक्षा जीवके भेद

शान्ति-प्राप्ति या धर्म सम्बन्धी विषयमे जीव पदार्थ ही प्रमुख है, क्योकि धर्म तथा अधर्मका उदय इसीमे होता है। जीव कहो या चेतन कहो एक ही बात है। यद्यपि वह एक रूप ही है, परन्तु बाह्य शरीरकी उपाधियोके कारण अनेक प्रकारका देखनेमे आता है। अत. उसका विस्तृत ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उसके ये सब उपाधिकृत भेद-प्रभेद जानने आवश्यक है। इसके अतिरिक्त आगे धर्म-प्रवृत्ति सम्बन्धी उपदेशोमे अहिंसा आदिको समझनेके लिए तथा तत्सम्बन्धी विवेक जागृत करनेके लिए भी जीवके भेद-प्रभेदोका स्पष्ट भान होना आवश्यक है। अब तक इन्द्रियोकी अपेक्षा, मनके सद्भाव तथा अभावकी अपेक्षा, त्रस स्थावरकी अपेक्षा तथा चार गतियोकी अपेक्षा उसके भेद-प्रभेद बनाये गये। अब एक और प्रकारसे भी उसके भेद करके बताता हूँ, और वह प्रकार है षट्कायकी अपेक्षा भेद।

वास्तवमे ये भेद जीवके न होकर जोवके शरीरकी जातियोके हैं और इसीलिए इनको कायकी अपेक्षा भेद कहा गया है, क्योकि कायका अर्थ शरीर है। इन्द्रियोकी तथा मनकी अपेक्षा जो पहले दो भेद किये हैं, उनमे जीवके ज्ञानके साधनो पर लक्ष्य रखा गया है। त्रस-स्थावरवाले तीसरे भेदमे जीवत्वके जो चिह्न आहार, भय, मैथुन, परिग्रह हैं इनपर लक्ष्य रखा गया था। गतियोवाले चौथे भेदमे जीवोके सुख-दु ख आदिके भोगपर लक्ष्य रखा गया है। अब काय-वाले इस पाँचवें भेदमे जीवके साथ जो शरीर लगा हुआ है उसकी कितनी जातियाँ हैं, इस बातपर लक्ष्य रखा जायेगा। यद्यपि ये भेद शरीर या कायकी जातियोके हैं परन्तु क्योकि ये शरीर जीवके

हैं, और लोकमे जहाँ कही भी जीव देखा जाता है वहाँ इन शरीरोमे ही देखा जाता है, इसलिए इसे कायके भेद न कहकर जीवके ही भेद कह दिया गया है। जीवके काय या शरीर मुख्यत छह प्रकारके होते है, इसलिए जीवोको षट्कायके जीव ऐसा कहा जाता है।

त्रस स्थावरके भेदोंके अन्तर्गत बताया गया था कि स्थावरके पांच भेद हैं—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति, और त्रसके पांच भेद हैं—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तथा सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय। इस प्रकार यद्यपि जीवोके शरीर १० प्रकारके होते हैं, फिर भी यहाँ छह ही प्रकारके काय कहे गये है। इसका कारण क्या है यह बताता हूँ। देखिए, इन दसो भेदोमे हम देखते हैं कि जिस प्रकार पृथिवी, जल, अग्नि, वायु व वनस्पति ये पाँचो पृथक्-पृथक् जातिके शरीर हैं, उस प्रकार त्रसके भेद पृथक्-पृथक् जातिके नही है। पृथिवी एक ठोस पदार्थ है, जो किसीके भी खाने-पीनेके काममे नही आ सकती। जल एक तरल पदार्थ है, जिससे प्यास बुझती है। अग्नि, प्रकाश तथा ज्वाला स्वरूप विचित्र ही पदार्थ है जिसमे भस्म कर देने की शक्ति है। वायु सचाररूप एक भिन्न ही जातिका पदार्थ है, जिससे श्वास लिया जाता है। वनस्पति एक पृथक् ही जाति है, जो खानेके काम आती है। पाँचोके प्रयोग पृथक्-पृथक् हैं, पाँचो-का रूप पृथक् है, पांचोकी बनावट पृथक् है। परन्तु त्रस शरीरके पाँचो भेदोके रूप व बनावट एक ही जातिके हैं। पाँचो ही रक्त-मासादिके बने हुए हैं। भले ही उनमे जाननेके साधन जो इन्द्रियाँ है उनकी अपेक्षा भेद हो परन्तु जहाँ तक उस पदार्थसे सम्बन्ध है-जिससे कि उस शरीरका निर्माण हुआ है वह पाँचोमे एक जातिका हैं। इसलिए पाँच जातिके स्थावर—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, व वनस्पति तथा एक जातिके त्रस। इस प्रकार सब मिलकर छह जातिके शरीर

या काय हैं, जिनमे कि जीव निवास करता है। इन भेदोकी अपेक्षा षट्कायके जीव कहलाते हैं।

गतियोकी अपेक्षा देखनेपर तिर्यंच गतिके सब भेद तो ऊपरवाले छह भेदोमे आ ही गये। मनुष्य भी सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय त्रसोमे गर्भित है। परन्तु नारकियो तथा देवोके शरीर इन भेदोमे नही गिने गये हैं, क्योकि उनका शरीर एक विशेष ही प्रकारका अर्थात् वैक्रियिक होता है, जो न तो इस पृथिवी मण्डलपर कही दिखाई देता है, और न ही हमारे-तुम्हारे नित्यके व्यवहारमे या किसी प्रयोगमे आता है। छह भेद केवल उन्ही जीवोके हैं जो कि इस पृथिवी पर रहते हैं तथा जिनके साथ हमे नित्य व्यवहार करना पडता है। अत काय की अपेक्षा जीवके उपर्युक्त छह ही भेद समझना।

११. सचार तथा निवासकी अपेक्षा जीवोके भेद

अब तक जितने भी जीवोके भेद-प्रभेद किये गये हैं, उन सबको गमनागमन तथा निवासकी अपेक्षा भी विभाजित किया जा सकता है। कुछ जीव तो ऐसे है जो पृथिवीपर ही उत्पन्न होते हैं, पृथिवी-पर ही चलते-फिरते है और पृथिवीपर ही रहते हैं—जैसे मनुष्य, गाय आदि। कुछ ऐसे हैं जो पृथिवीपर उत्पन्न होते है, पृथिवीपर ही चलते-फिरते है और पृथिवीमे बिल बनाकर रहते है जैसे—चूहा, सर्प, चीटी आदि। कुछ ऐसे है जो जलमे ही पैदा होते है, जलमे ही चलते फिरते हैं और जलमे ही रहते हैं जैसे—मछली। कुछ ऐसे है जो जलमे भी पैदा हो जाते हैं, और नमोवाली पृथिवीमे भी, जलमे भी रह सकते है, पृथिवीपर भी और पृथिवीके भीतर बिलोमे भी, जैसे—मैंढक। कुछ ऐसे हैं जो पृथिवीपर पैदा होते है, आकाश या वायुमे चलते-फिरते हैं और पृथिवीपर या वृक्षो आदि पर रहते हैं जैसे—पक्षी, मच्छर, मक्खी आदि। कुछ ऐसे हैं जो वायुमे ही उत्पन्न होते है, वायुमे ही चलते-फिरते है, वायुमे ही रहते हैं जैसे—

क्षुद्र कीटाणु। पृथिवीपर विचरण करनेवालोको थलचर कहते हैं, जलमे चलने-फिरने तथा रहनेवालोको जलचर और आकाममे चलने-फिरने व रहनेवालोको नभचर कहते हैं। इस प्रकार सचार तथा निवासकी अपेक्षा भी जीवके तीन भेद हैं—थलचर, जलचर व नभचर।

१२ सूक्ष्म जन्तु विज्ञान

ये सर्व जीवके भेद-प्रभेद इतने ही हो जितने कि हम नित्य आँखोसे देखते है, सो बात नही हैं। ये तो अत्यन्त स्थूल शरीरवाले जीव है। इनके अतिरिक्त भी बहुतसे क्षुद्र तथा सूक्ष्म जीव लोकमे तथा इस वायुमण्डलमे ठसाठस भरे पडे हैं, जिनका जानना अत्यन्त आवश्यक है। आओ! हम तुम्हे सूक्ष्म दृष्टि प्रदान करें, जिससे कि तुम जैव-सृष्टिकी विचित्रताको देख सको।

कुछ जीवोके शरीर तो इतने बडे हैं जो कि मीलोंसे दिखाई दे जाते हैं जसे—वृक्ष। कुछके शरीर इतने बडे हैं जो कुछ निकट आनेपर दिखाई देते हैं जैसे—मनुष्य, पशु, पक्षी आदि। कुछ ऐसे हैं जो अत्यन्त निकट आनेपर दिखाई देते हैं जैसे—चीटी, मक्खी आदि। कुछ इतने क्षुद्र हैं कि अत्यन्त निकट आनेपर भी साधारण दृष्टिसे नही देखे जा सकते, बडे गौरसे देखो तभी दिखाई देते हैं जैसे—अति क्षुद्र वे मच्छर जो कदाचित् आपके शरीरपर बैठकर जब काटते हैं, तभी उस स्थानपर अत्यन्त गौरसे देखनेपर आपको बालके अग्रभाग-जैसा क्षुद्र सफेद या काले रंगका एक जीव चलता हुआ दिखाई देता है। इनसे भी आगे कुछ इतने क्षुद्र होते है जो अत्यन्त गौरसे देखनेपर भी दिखाई नही देते, परन्तु सूक्ष्म निरीक्षण यन्त्र (माइक्रोस्कोप) की सहायतासे स्पष्ट दिखाई दे जाते हैं। इनसे भी आगे कुछ इतने क्षुद्र होते है जो यन्त्र द्वारा भी

देखे नही जा सकते, परन्तु वस्तुओपर पड़नेवाला उनका प्रभाव अवश्य प्रतीतिमे आता है, जैसे कि अनेक प्रकारके रोगोत्पादक सूक्ष्म कीटाणु। इनसे भी आगे कुछ इतने सूक्ष्म होते है, जिनका कुछ प्रभाव भी प्रतीतिमे नही आता, परन्तु वे जीव होते अवश्य है। ये सब बातें ठीक-ठीक बुद्धिमे बैठा लेनी चाहिए।

इस प्रकारके क्षुद्र तथा सूक्ष्म जीव सर्वत्र ठसाठस भरे पडे है। क्या पृथिवीके भीतर और क्या पृथिवीके ऊपर, क्या जलके भीतर और क्या जलके ऊपर, क्या वायुके भीतर, क्या फल-फूल आदि वनस्पतिके भीतर और क्या उनके ऊपर, क्या द्वीन्द्रियसे चतुरिन्द्रिय तकके कीड़े-मकोडेके शरीरोके भीतर, क्या पशु-पक्षी एवं मछलियो आदिके शरीरोके भीतर और क्या मनुष्योके शरीरोके भीतर सर्वत्र ये सूक्ष्म तथा क्षुद्र जीव अपना अड्डा जमाये बैठे हैं।

इनमे भी वे जीव जो कि आँखोसे दिखाई दे जाते है, उनके सम्बन्धमे तो कुछ विशेष बताना नही है क्योकि उन्हे सब कोई जानते हैं—जैसे कि गीली पृथ्वी खोदनेपर उसमे चलते-फिरते अनेको जीव दिखाई देते हैं, अथवा कुएँसे या तालावसे भरे गये जलको यदि किसी वस्त्रमे-से छान लिया जाये तो उस कपडेपर चलते-फिरते अनेको छोटे-छोटे जीव दिखाई देते है, वायुमण्डलमे सचार करते हुए छोटे-छोटे अत्यन्त क्षुद्र कीट पतग भी सबके प्रत्यक्ष हैं, वरवटी, पीपलवटी, गोभी आदि कुछ वनस्पतियोमे भी यदि गौरसे देखा जाये तो ऐसे छोटे-छोटे उडते हुए जीवोका साक्षात्कार किया जा सकता है। पशु-पक्षियो व मनुष्योके पेटमे कितने इस प्रकारके जीव रहते हैं, यह सब जानते है। विष्टा व गोवर आदिमे देखनेपर वे दिखाई भी देते हैं। इसी प्रकार रक्तमे ऐसे असंख्यात जीव निवास करते हैं। आँखोसे दीखनेवाले ये सब छोटे प्राणी त्रस जीव है इतना ध्यानमे रखना चाहिए, क्योकि ये चलते-फिरते देखे जाते हैं। भले

ही अत्यन्त क्षुद्र होनेके कारण प्रतीतिमे न आयें परन्तु उनका शरीर भी रक्त-मासादिका ही बना हुआ होता है।

इनके अतिरिक्त कुछ वे जीव जो आँखसे दिखाई नही देते, सूक्ष्म निरीक्षण य त्र द्वारा देखे जाते है। आजकी वैज्ञानिक अनुसन्धान शालाओमे नित्य ही यन्त्रोके द्वारा खोज-खोजकर कुछ इस विचित्र प्रकारके जीव-जन्तुओका पता लगाया जा रहा है, जिनका हमारे शारीरिक स्वास्थ्यके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि सुईके अग्रभाग जितने स्थानमे भी अनेको निवास करते है। जल, दूध, रक्त आदि तरल पदार्थोमे अथवा रोटी-भात आदि गीले अन्नमे अथवा फल-फूलोमे अथवा शाक-भाजीमे सरलतासे उत्पन्न हो जाया करते है।

सबका परिचय तो यहाँ दिया जाना कठिन है, परन्तु उदाहरण के रूपमे कुछ यहाँ बता देना पर्याप्त समझता हूँ। जल, दूध या रक्त की एक बूँदको एक शीशेकी प्लेटपर डालकर उसपर दूसरी शीशेकी प्लेट रख देनेपर फालतू-फालतू जल, दूध या रक्त प्लेटोसे बाहर निकल जाता है। उन प्लेटोंके बीच कितना कुछ रह जाता होगा यह आप अनुमान कर लीजिए। अब ज्यो की त्यो उन जुडी हुई प्लेटोको उस यन्त्रके नीचे ले जाकर देखनेपर आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि उन दोनो प्लेटोके बीचमे एक-दो नही सैकडो जीव स्वतन्त्रतासे तैरते फिरते हैं, बिलकुल उस प्रकार जिस प्रकार कि मछली जलमे तैरती है, अथवा केंचुए पृथ्वी पर रेंग-रेंगकर चलते हैं। वहाँ उन चलने-फिरनेवाले जीवोंके साथ झुण्डके झुण्ड वृक्ष, घास, फूस आदि भी दिखाई देते है। एक पूरी सृष्टि उस स्थानमे वास करती है, जिसका साधारण बुद्धिमे आना कठिन है, और इसलिए सम्भवत आपको विश्वास भी न आये। परन्तु हाथ कगन को आरसी क्या ? आजके वैज्ञानिक युगमे इस बातकी सिद्धि कठिन

नही है। कोई भी व्यक्ति इस प्रकारकी अनुसन्धान-शालामे जाकर प्रत्यक्ष अपनी आँखसे देख सकता है, अथवा 'माइक्रो-बाइलॉजी' विषयक साहित्य पढकर जान सकता है, अथवा किसी भी डॉक्टरसे पूछकर विश्वास कर सकता है।

ऐसे सूक्ष्म जीवोकी सत्तापर जैनदर्शन सदासे बहुत ज़ोर देता चला आया है और आगे आनेवाले खान-पान सम्बन्धी (दे शान्ति-पथ-प्रदर्शन) विवेकका मूल आधार यही विज्ञान है। ऋषिजनोको बिना किसी यन्त्रके ही उनका साक्षात् होता था। वे जानते थे कि इन सूक्ष्म जीवोका मानवके शरीर तथा मनपर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है, इसलिए उन्होने बहुत सूक्ष्म दृष्टि से खाद्य पदार्थोमे भक्ष्य-अभक्ष्यका विवेक जागृत कराया है जिसका उल्लेख 'शान्तिपथ-प्रदर्शन' नामक पुस्तकमे कुछ किया गया है। यहाँ आपको केवल इतना ही जान लेना चाहिए कि इस प्रकारके जीव सर्वत्र पाये जाते हैं एव उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकारके जीवोको आजका विज्ञान बैक्टेरिया नामसे पुकारता है। इनकी मुख्यतया तीन जाति है—बैक्टेरिया, मोल्ड तथा ईस्ट। इन तीनोमे-से पहले दो तो वनस्पतिकायवाले आर्थात् स्थावर होते हैं, और तीसरा भेद चलने-फिरने वाले त्रस जीवोका है। इनके उत्तर भेद करनेपर हज़ारो भेद हो जाते हैं। जैनागम भी ऐसे सूक्ष्म जीवोको त्रस व स्थावर दोनो प्रकारका मानता है। ज्यो-ज्यो कोई भी खाद्य पदार्थ बासी होता जाता है या सडता जाता है त्यो-त्यो उसमे इनकी वृद्धि होती जाती है। उनको उत्पत्ति तथा वृद्धिकी मोटी-मोटी पहचानें बताता हूँ।

दूधसे दही या पनीर बनाना वास्तवमे उसमे बैक्टेरियाकी वृद्धि द्वारा ही होता है। किसी फल या अन्य खाद्य-पदार्थकी गन्ध तथा

स्वाद बदल जाना उसमे बैक्टेरियाकी वृद्धिकी सूचना देता है। मोल्डका काम रंग पैदा करना अथवा पदार्थोंपर काई या फूई पैदा करना है। पीतल के बरतनोमें शाक-भाजी आदि रखनेपर उनमे जो नीला रंग उत्पन्न हो जाता है अथवा दूध तथा घी आदिके बरतनोपर भी जो कभी-कभी नीला या ब्राउन रंग देखनेमे आता है, वह मोल्डकी वृद्धिका सूचक है। इसी प्रकार पापड़, अचार या वासी शाक-भाजी पर प्रायः जो सफ़ेद या ब्राउन अथवा काले-नीले रगकी फूई लग जाया करती है वह सब उन पदार्थोंमे 'मोल्डकी' वृद्धिकी सूचना देती है। ईस्ट जीव त्रस होते हैं। इनका काम पदार्थ को सड़ाकर उसमे नशा उत्पन्न कर देना है। जिस पदार्थमे इस प्रकारके जीव उत्पन्न हो जाते हैं उसमे-से स्वतः वुदवुदे उठने लगते हैं और घुड़प-घुपड़का शब्द होने लगता है। ऐसे पदार्थोंमे मादक शक्ति उत्पन्न हो जाया करती है, जो वृद्धि पाकर मनुष्योको पागल कर देती है। गरमीके दिनोमे सन्तरे या अन्य रसीले फलोमे अथवा दहीमे जो वुदवुदे-से उत्पन्न हुए देखे जाते हैं वे सब इसी प्रकारके जीवोका प्रताप है। पदार्थोंको सड़ाकर जो शराब या ताड़ी आदि वनायी जाती है, जिसके पानीसे मनुष्यको नशा हो जाता है, वह सब इसीकी कृपा है।

यद्यपि थोड़ी मात्रामे तो ये जीव जल, दूध तथा फल आदि प्रत्येक पदार्थमे स्वाभाविक रूपसे रहते हैं, परन्तु उपर्युक्त प्रकारसे पदार्थके वासी हो जानेपर, सड़ जानेपर, या रग गन्ध व स्वाद आदि वदल जानेपर, यह समझ लेना चाहिए कि उन जीवोकी मात्रा इतनी वढ़ गयी है कि एक बूँद या सुईके अग्रभाग मात्र पदार्थमे वे असख्योकी गणनामे विद्यमान हैं। इसीलिए ऐसी अवस्थामे वे पदार्थ स्वास्थ्यके लिये वहुत हानिकारक हो जाते हैं। डॉक्टर तथा जैनसिद्धान्त दोनो ही जो ऐसे पदार्थोंके प्रयोगका निषेध करते हैं, उसका यही कारण है।

इस सम्बन्धमे डॉक्टरोकी अपेक्षा जैन दर्शनकारोकी दृष्टि बहुत अधिक सूक्ष्म है। इसी कारण भोजन शुद्धिके प्रकरणमे (दे शान्तिपथ-प्रदर्शन) अनेको ऐसी वस्तुओको अभक्ष्य बताकर उनके खानेका निषेध किया गया है, जिनके खानेमे आजका मानव हानि नही समझता।

१३ चौरासी लाख योनि

इस प्रकार इन्द्रियोकी अपेक्षा, मनकी अपेक्षा, त्रस-स्थावरकी अपेक्षा, गतियोकी अपेक्षा, षट्कायकी अपेक्षा, सचार तथा निवास-स्थानकी अपेक्षा, स्थूलता तथा सूक्ष्मताकी अपेक्षा जीवोके भेद-प्रभेद करके जीव पदार्थकी विस्तृत सृष्टिका परिचय दिया गया। ये भेद इतनेपर ही समाप्त हो जाते हो ऐसा नही है। आगे भी प्रत्येक के अनेक प्रभेद किये जा सकते है।

एक पृथ्वीवाला भेद अनेक प्रकार का है—जैसे मिट्टी, पत्थर, ताँबा, लोहा सोना इत्यादि। इसमे-से ताँबा व लोहा आदि प्रत्येक धातु भी पृथक्-पृथक् अनेक प्रकारकी है। इसी प्रकार जल भी अनेक प्रकारका है, जैसे—कुएँका जल, तालाब व जोहड़का जल, पर्वतके झरनेका जल, वर्षाका जल आदि। इन सब जलोकी प्रकृति भिन्न-भिन्न है। इनमेसे भी प्रत्येक जल अनेक प्रकारका है जैसेकि कुएँ का जल ही भिन्न-भिन्न देशोमे भिन्न-भिन्न प्रकृतियो व स्वभाववाला होता है। मेघ, वाष्प, कुहरा आदि भी जलकी जातियाँ हैं। इसी प्रकार अग्नि भी अनेक प्रकार की ही जैसे–इंधनकी अग्नि, काण्डेकी अग्नि, चिनगारी, ज्वाला आदि। वायु भी अनेक प्रकारकी है जैसे—साधारण वायु, आक्सीजन, हाइड्रोजन गैस इत्यादि।

वनस्पतिके हज़ारो-लाखो भेद है जिनका बताना कठिन है। कुछ घास जातिकी हैं, कुछ लता जातिकी हैं, कुछ गन्ने या बाँस

जातिकी हैं, कुछ धान्य जातिकी है, कुछ वैक्टेरिया जातिकी है, कुछ फल-फूल जातिकी हैं। कुछ रस देनेवाली हैं, कुछ स्वास्थ्यको लाभ-दायक हैं, कुछ हानिकारक हैं। कुछ पशुओ के खानेकी हैं, और कुछ पशुओ व मनुष्योके खानेकी है। कुछ जडी बूटियो तथा मसालोंके रूप-वाली हैं। उसमे-से एक-एक भिन्न-भिन्न देशमे उत्पन्न होनेके कारण, तथा भिन्न-भिन्न प्रकृतिको रखनेके कारण पृथक् पृथक् जातियो की हो जाती है जिन सबका गिनाया जाना कठिन है।

द्वीन्द्रिय जीव अर्थात् रेंगकर चलनेवाले कीडे, जोक, अन्नमे पड़ जानेवाली लट, विष्टाका कीडा आदि कितने प्रकारके हैं, सो प्रभु ही जानते है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीव अर्थात् दीमक, चीटी, गिजाई, इन्द्रगोप, बिच्छू, कानखजूरा आदि कितने प्रकारके हैं, यह कहा नही जा सकता। उनमे भी बिच्छू आदि एक-एक ही भेद कितने प्रकारके हैं—कोई बड़ा, कोई छोटा, कोई पहाडी, कोई मैदानी, कोई रेगिस्तानी, कोई कम विषैला, कोई अधिक विषैला, कोई काला, कोई ब्राउन। इसी प्रकार चतुरेन्द्रिय जीव—मक्खी, मच्छर, भिर्र, ततैया, भँवरा, मधु-मक्षिका आदि कितने प्रकारके हैं यह भी कौन गिना सकता है। वहाँ भी मक्खी आदिके एक-एक भेद अनेक-अनेक प्रकारके हैं क्योकि पहाडी मक्खी, मैदानी मक्खी, रेगिस्तानी मक्खी आदिकी लम्बाई-चौडाई, रंग-रूप, विष व प्रकृति आदिमे बडा भेद पाया जाता है।

पचेन्द्रियोमे गाय, बैल, घोड़ा, गधा, कुत्ता, बकरी, हिरण, सिह, रीछ आदि पशु कितने प्रकारके हैं, तोता मैना कबूतर आदि पक्षी कितने प्रकारके हैं जलमे पाये जानेवाले मछली, कछुआ, सागरके बडे मच्छ, सागरका घोडा, सागरका भैसा आदि सागरके कितने प्रकारके प्राणी हैं, इसका अनुमान भी नही लगाया जा सकता। मनुष्योमे भी भारतका मनुष्य, यूरोपका मनुष्य, चीन या जापानका

मनुष्य भवमे रूप, बल व प्रकृति आदि के अन्तरसे महान् भेद पाया जाता है। एक-एक देशके मनुष्य भी उत्तरी व पश्चिमी आदि दिशाओ में रहनेवालोकी अपेक्षा अथवा जगलो तथा नगर-ग्रामोमे बसनेवालोकी अपेक्षा, म्लेच्छ व आर्य आदि अनेको जातियोमे विभाजित हैं। म्लेच्छ भी यवन, पुलिन्द, कोल, भील आदि अनेको प्रकारके माने जाते है। आर्य भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि अनेको प्रकारके हैं। आगे ब्राह्मण, वैश्य आदि भी अनेको जातियो तथा प्रकृतियो मे विभाजित है। इसी प्रकार नारकी तथा देव भी अनेक-अनेक प्रकार के हैं।

इन सब भेद-प्रभेदोमे-से सम्भवत हमने हजारवाँ भाग भी नही देखा है, और न ही इस भवमे देखनेकी आशा है। अत. अपने देखने मात्रपर सन्तुष्ट नही होना चाहिए। जीवोकी सृष्टि बहुत चित्र-विचित्र है। आगम ही इसका ठीक प्रमाण है। उपर्युक्त सभी भेद-प्रभेद मिलकर कुल चौरासी लाख होते हैं। इन्हे ही जीवोकी चौरासी लाख योनियाँ कहा जाता है। भारतके सभी दर्शनकारोने ये चौरासी लाख योनियाँ स्वीकार की हैं।

१४. जीवोंका उत्पत्ति क्रम

इन चौरासी लाख योनियोके चित्र-विचित्र जीव विभिन्न प्रकारोसे उत्पन्न होते हैं। इस लिए यहाँ सक्षेपमे जीवोकी उत्पत्तिके सम्बन्धमे भी कुछ बता देना चाहिए। जीवो का जन्म तीन प्रकार से होता है—सम्मूर्च्छिम, गर्भज तथा उपपादज। बिना माता-पिताके संयोगके जो जीव स्वय इधर-उधरके परमाणुओके सम्मेलसे पैदा हो जाते हैं उन्हे सम्मूर्च्छिम कहते है, जैसे—गायका गोबर तथा गधेका मूत्र मिलनेसे बिच्छू पैदा हो जाते हैं। बरसातके मौसममे घास-फूसकी भाँति अनेको विकलत्रय मच्छर, गिजाई, इन्द्रगोप

आदि तथा पचेन्द्रिय मेढक आदि स्वत उत्पन्न हो जाते है। वीज, मिट्टी तथा जलके सयोगसे जो वनस्पति उत्पन्न होती है वह भी सम्मूर्च्छिम ही है। इसे अमैथुनिक सृष्टि कहते हैं। वैदिक दर्शनकार विकलेन्द्रिय सूक्ष्म सृष्टिको स्वेदज और वीजसे उत्पन्न होनेवाली वनस्पतिको उद्भिज्ज कहते हैं। एकेन्द्रियसे चतुरेन्द्रिय पर्यन्त तकके सभी जीवोको जैन दर्शन सम्मूर्च्छिम मानता है। पचेन्द्रियोमे भी मेढक आदि कुछ जीव इसी जातिके हैं, क्योकि इन जीवोमे माता-पिताका भेद नही पाया जाता।

दूसरे प्रकारके जीव गर्भज हैं। माता-पिताके सयोगसे अर्थात् माताके उदरमे स्थित गर्भाशयमे माताका रज और पिताका वीर्य मिल जानेसे जिन जीवोकी उत्पत्ति होती है, वे गर्भज कहलाते हैं। गाय, घोडा आदि पशु, तोता, चिडिया आदि पक्षी तथा मनुष्य सब इसी जातिके हैं। गर्भज जीव कुछ काल पर्यन्त माताके गर्भमें रहकर ही वृद्धिको पाते हैं और नियत काल पश्चात् जब उनका शरीर पूरा हो जाता है तो योनि-द्वारसे बाहर निकलकर इस पृथिवीपर रहते हुए वृद्धिको पाते है। शिशु, बालक, युवा, प्रौढ वृद्ध आदि अनेक अवस्थाओमे से गुज़रते हुए आयु पूर्ण होनेपर मृत्युको प्राप्त होते है। गर्भज जीव भी तीन प्रकारके होते हैं— अण्डज, जरायुज तथा पोतज। अन्डेसे उत्पन्न होनेवाले अण्डज कहलाते हैं जैसे चिडिया, तोता, सर्प आदि। जेर या जरायु अर्थात् झिल्लीमे लिपटे हुए होनेवाले जरायुज कहलाते हैं जैसे—गाय, घोड़ा, मनुष्य आदि। उत्पन्न होनेके पश्चात् इनकी झिल्ली फट जाती है और उसके भीतरसे जीव बाहर निकल आता है। पोतज जीव कुछ विशेष प्रकारके होते है जो न अण्डमे उत्पन्न होते है न झिल्लीमे। बल्कि गर्भसे निकलते ही भागने-दौडने लगते हैं जैसे मृगका बच्चा।

उपपादज जन्म देव तथा नारकियोका होता है, जो हमारे प्रत्यक्ष नही है। आगम हमे बताता है कि वे लोग बिना मात-पिताके स्वय ही अपने योग्य स्थानमे पैदा हो जाते है और आध-पौन घण्टेके भीतर ही भीतर पूरे यौवनको प्राप्त हो जाते हैं।

इस पृथिवीपर हमारे नित्य देखनेमे आनेवाले दो ही भेद है— सम्मूर्च्छिम व गर्भज। यद्यपि विकलेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम जीव चीटी, मक्खी आदिकोके भी अण्डे होते है, परन्तु वे माता-पिताके सयोगसे माताके गर्भाशयमे उत्पन्न नही होते, बल्कि उन प्राणियोके रहनेके स्थानोंमे, उनके शारीरिक मैल, मिट्टी तथा जलके संयोगसे स्वत: बाहरमें उत्पन्न हो जाते हैं और वहाँ ही वृद्धि पाते रहते है। कुछ दिन पश्चात् अण्डे बडे हो जानेपर जीव उन्हे तोडकर उनमेसे बाहर निकल आते हैं। यद्यपि मक्खी आदि किन्ही जीवोमे माता-पिताका सयोग या मैथुन भी देखा जाता है, परन्तु फिर भी उनके अण्डे माताके गर्भाशयमे उत्पन्न नही होते, बल्कि उनके मल मूत्र आदिका सयोग पाकर बाहरकी मिट्टी आदिमे ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए मैथुन होते हुए भी उन्हे गर्भज नही कह सकते।

सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर सम्मूर्च्छिम जीव भी गर्भजकी भाँति रज तथा वीर्यके मिलनेसे ही उत्पन्न होते हैं। जैसे कि वृक्षका बीज तो गर्भाशय तथा रजके स्थानपर है, पृथिवी योनि है और जल वीर्यके स्थानपर है। इसी प्रकार चीटी आदिके रहनेके स्थानका गुप्तस्थान बिल आदि योनि है, उनके शरीरका मैल रज है और मिट्टी, जल आदि वीर्य हैं। परन्तु यहाँ केवल माताके गर्भाशयकी अपेक्षा होनेके कारण उन्हे गर्भज न कहकर सम्मूर्च्छिम कहा जाता है।

कुछ जीव गुप्त या ढके हुए योनिस्थानमे उत्पन्न होते है, कुछ खुले वायु मण्डलमे उत्पन्न होते हैं और कुछ आधे खुले व आधे

ढके हुए योनिस्थानोमे उत्पन्न होते है। गर्भज सर्व ही जीवोका तथा बीजसे उत्पन्न होनेवाले वृक्ष आदिका योनिस्थान गुप्त या ढका हुआ रहता है, क्योकि ये माताके गर्भ या बीजके भीतर उत्पन्न होते है। मेढक तथा भिर्र ततैये आदिका योनि स्थान खुला हुआ रहता है, क्योकि ये खुले आकाशके नीचे या छत्तो आदिमे पैदा होते हैं। चीटी आदिकोका योनिस्थान आधा खुला व आधा ढका हुआ है क्योकि ये बिलो आदिकोमे पृथिवीके नीचे या किसी ईंट-पत्थर आदिके नीचे उत्पन्न होती हैं।

कुछ जीव गर्म स्थानोमे उत्पन्न होते हैं, कुछ ठण्डे स्थानोमे उत्पन्न होते है और कुछ थोडा ठण्डा और थोडा गर्म ऐसे स्थानोमे उत्पन्न होते है, गर्भाशयमे उत्पन्न होनेवाले जीव गर्म योनिके जानना, क्योकि गर्भाशयमे माताके शरीरकी गरमी रहती है। पृथिवीके नीचे या इंट-पत्थर आदिके नीचे नमीमे उत्पन्न होनेवाले सभी विकलेन्द्रिय तथा वनस्पति ठण्डी योनिके जानना, क्योकि ऐसे स्थानोमे ठण्ड होती है। अथवा बरसातमे उत्पन्न होनेवाले जीव ठण्डी योनिके है। गरमीके मौसममे जलपर उत्पन्न होनेवाले सर्व जीव गर्म-ठण्डी योनिके समझें।

कुछ जीव सचित्त योनिमे अर्थात् जीवित प्राणीके शरीरमे उत्पन्न होते हैं। कुछ अचित्त योनिमे अर्थात् मिट्टी आदि जड़ पदार्थोंमे उत्पन्न होते हैं और कुछ सचित्त-अचित मिली-जुली योनिमे उत्पन्न होते हैं। गर्भज जीव सचित्तयोनिके है क्योकि माताका शरीर जीवित है। पृथिवीके भीतर अथवा बिलोमे अथवा भिर्र आदिकोके छत्तोमे उत्पन्न होनेवाले जीव अचित्त योनिके हैं, क्योकि ये सभी स्थान जड हैं। शरीरमे उत्पन्न होनेवाले कृमि आदिक मिली-जुली योनिके है, क्योकि यद्यपि शरीर जीवित है परन्तु वह उनकी उत्पत्तिका मूल आधार नही है। वे जीव स्वतन्त्र

हैं। और उनकी उत्पत्ति भले ही उदर आदिमे हो, परन्तु स्वतन्त्र रीतिसे वहाँ उनका सम्मूर्च्छिम जन्म होता है।

१५ अण्डेमे जीवकी सिद्धि

यहाँ एक बात और विशेष बतानेकी है। वह यह कि गर्भज हो या सम्मूर्च्छिम, गर्भाशयमे या बीज आदिमे जीवका प्रवेश उसी क्षण हो जाता है जब कि रज व वीर्य अथवा बीज व जल अदिका सयोग हो जाये। परन्तु पहले ही क्षणमे हमारी स्थूल दृष्टि उसके कोई भी लक्षण देख नही पाती। जब तक कि गर्भ कुछ बढ़ न जाय अर्थात् गर्भाशयमे एक मास पश्चात् माँस-पिण्ड न बन जाये, अथवा अण्डे आदिका कोई आकार न बन जाय या पृथिवीके नीचे रहते हुए बीज फूट कर उसमे सूक्ष्म-सा अकुर दिखाई न देने लग जाये, उस समय तक साधारण व्यक्तिको तो क्या डॉक्टरो तकको भी यह पता नही चल पाता कि यहाँ जीव उत्पन्न हो चुका है। इसी-लिए आजके कुछ व्यक्ति ऐसा कहते सुने जाते है कि अण्डोमे जब तक सफेद व पीला पानी सा ही रहता है तवतक उसमे कोई जीव नही होता। वह तो उसमे तब आता है जब कि अण्डेके भीतर उस जीवके कुछ अंगोपाग बनने प्रारम्भ हो जाते हैं। अत. आप लोगो को उनके ऐसा कहनेपर भ्रममे नही पड़ना चाहिए। वास्तवमे बिना जीवकी अवस्थितिके गर्भमे माँस पिण्डकी, अण्डेमे अगोपागो आदिकी, तथा बीजमे अकुरकी उत्पत्ति हो ही नही सकती।

कोई भी पदार्थ एकदम नही बन जाया करता। गर्भमे मनुष्यकी उत्पत्ति तथा वृद्धि किस क्रमसे होती है इस बातको हम सब जानते हैं। प्रथम क्षणमे ही अर्थात् रज तथा-वीर्यके मिलते ही गर्भाशयमे जीव प्रवेश पा जाता है। तब वहाँ प्रथम रात्रिमे रज-वीर्यका मिश्रण मात्र होता है। सातवें दिन वह बुद्बुदाकार हो जाता है जो

वृद्धिगत होता हुआ क्रमश. पन्द्रह दिनमे पित्ताकार और एक मासमे पिण्डाकार होता है। दूसरे महीने उसमे सिर तथा धड़का आकार प्रकट होता है, तीसरे महीने हाथ-पाँव आदि और चौथे महीने अँगुलियाँ प्रकट होती हैं। पाँचवें महीनेमे आँख-नाक आदि प्रकट होते हैं। तब कही जाकर शरीर पूरा होता है। दो-तीन महीनेमे पुष्ट होकर बाहर आने योग्य बनता है।

यही क्रम अण्डेमे भी समझना। माता-पिताका रज-वीर्य गर्भाशयमे मिलने पर वह केवल एक बिन्दु मात्र होता है। जीव उसमे तभी प्रवेश पा जाता है। उस बिन्दुकी वृद्धि अन्यथा होनी सम्भव नही। वह जीव ही माताके शरीरमे-से कुछ रस धीरे-धीरे खीचकर एकत्रित करता रहता है। कुछ दिन पश्चात् उस एकत्रित किये हुए रसके ऊपर अण्डेका छिलका बनने लगता है। माताके उदरसे बाहर आ जानेके पश्चात् यद्यपि अण्डा कुछ और रस ग्रहण नही करता, और उस समय तक उसमे केवल सफेद व पीले रसके अतिरिक्त कुछ और होता भी नही, परन्तु यह रस गर्भाशयमे स्थित उसी मांस-पिण्डवत् है जिसमे अभी अगोपाग नही निकले है, फिर भी उसमे जीव विद्यमान है। माता द्वारा अण्डा सेये जानेपर अन्दर ही अन्दर वह रस फूल-फूलकर वृद्धिगत होता है और उसमे अगोपाँग भी प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त क्रमसे ही अण्डेमे शरीरका निर्माण होता है।

जिस प्रकार गर्भाशयमे पडे हुए उस मास-पिण्डकी हत्या एक महान् अपराध समझा जाता है, क्योकि वह मास-पिण्ड साधारण मास-पिण्ड नही है, बल्कि एक प्राणधारी मनुष्य है, उसी प्रकार अण्डेमें पडा हुआ वह सफेद व पीला रस भी कोई साधारण वस्तु नही है, बल्कि एक प्राणधारी जीव है, जो कुछ ही दिनो के पश्चात् सांगोपाग शरीर लेकर प्रगट होनेवाला है।

१६. सूक्ष्म जीवोंकी उत्पत्ति

यहाँ तक स्थूल जीवोकी उत्पत्तिके सम्बन्धमे बताया गया। अब सूक्ष्म जीवो के अर्थात् बैक्टेरिया आदिके सम्बन्धमे भी बताता हूँ। बैक्टेरिया आदि सब प्रकारके सूक्ष्म जीव सम्मूर्च्छिम होते है और अनुकूल वातावरण पाकर स्वयं ही उत्पन्न हो जाते हैं। इनकी आयु अत्यन्त अल्प होती है, इसलिए ये उत्पन्न हो-होकर बहुत शीघ्र मरते भी रहते हैं। इनकी उत्पत्ति एक-दो आदिकी गणनासे नही होती बल्कि असख्यातकी गणनासे हुआ करती है।

इनकी उत्पत्तिका विस्तार शान्तिपथ-प्रदर्शन नामक पुस्तकमे 'भोजन शुद्धि' के अन्तर्गत किया गया है। यहाँ तो संक्षेपमे इतना ही समझ लीजिए कि किसी भी ऐसे पदार्थमे, जिसमे योग्य तापमान, नमी, वायु, भक्ष्य पदार्थ तथा सुरक्षा ये पाँच बातें पायी जायें, उसमे इस जातिके जीव स्वत उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे कि घासका बीज पृथिवीपर पहलेसे पडा ही रहता है, वर्षाका सयोग पानेसे वह वृद्धिगत हो जाता है, इसी प्रकार कुछ बैक्टेरिया हर पदार्थमे तथा वायुमण्डलमे पहलेसे विद्यमान रहते हैं, उपर्युक्त अनुकूल पाँचो बातोका सयोग मिल जानेपर वे वृद्धिगत हो जाते हैं। कही-कही प्रयोजनवश कृत्रिम रूपसे भी इनका प्रवेश करा दिया जाता है, जैसे कि दही जमानेके लिए दूधमे दहीका जामन या चेचकके रोगको दूर करनेके लिए टीका लगाकर चेचकके नाशक कीटाणु शरीरमे प्रवेश करा दिये जाते हैं।

पदार्थमे रहने तथा प्रवेश पानेवाले ये कीटाणु या वैक्टेरिया बडे वेगसे वृद्धि पाते हैं। प्रत्येक मिनट ये बराबर दुगुने होते जाते हैं अर्थात् पहले मिनटमे एकसे दो हो जाते हैं, अगले मिनटमे उन दोसे चार हो जाते हैं, तीसरे मिनटमे उन चारसे आठ हो जाते हैं,

और इस प्रकार केवल आध-पौन घण्टेके भीतर ही उस पदार्थ या स्थानमे असख्यातो इकट्ठे हो जाते है। उत्पत्तिकी चरम सीमाको स्पर्श करनेके पश्चात् अव वे अपनी-अपनी आयु पूरी करके क्रम-पूर्वक मरने भा लगते हैं और उत्पत्तिकी तीव्र गति भी कुछ मन्द पड जाती है। फलत तत्पश्चात् उनकी संख्या उस पदार्थमे वरावर उतनी की उतनी ही वनी रहती है।

यदि किसी पदार्थमे पर्याप्त वायु न मिल पावे या किसी यन्त्र द्वारा उसकी वायु खेंच ली जावे तो वहाँ ये जीव उत्पन्न नही होते। इसी प्रकार यदि नमी न मिले या पदार्थको सुखाकर नमी दूर कर दी जावे तो भी ये उत्पन्न नही हो सकते। पदार्थको गर्म करके उसका तापमान वहुत अधिक वढा दिया जाये या उसे रेफ्रीजिरेटर आदि साधनोंसे ठण्डा करके उसका तापमान वहुत अधिक घटा दिया जाये तो भी ये उत्पन्न नही हो सकते। अथवा किसी पदार्थको धोकर या रगड़कर या अन्य किसी औषधि आदिके द्वारा इतना साफ कर दिया जाये कि उसमे मैल आदि न रहने पावे तो भी ये उत्पन्न नही हो सकते, क्योकि पदार्थोंमे रहने-वाला यह मैल उनका भक्ष्य है।

१७. जीवोका स्वभाव-चतुष्टय

पदार्थ-सामान्य नामक अधिकारमे पदार्थके सम्वन्धमे चार प्रकार से विश्लेषण करके वताया गया है। इन चार वातोका विचार करने-पर किसी भी पदार्थका विशद परिचय प्राप्त हो जाता है। वे चार वातें हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव। इसे ही पदार्थके **स्वभाव-चतुष्टय** कहते हैं। ये चारो ही वातें सामान्य तथा विशेष दो प्रकारसे विचारी जाती हैं। द्रव्य उसे कहते हैं जो कि भाव या गुणोको धारण करे इसलिए वह कुछ प्रदेशो तथा आकारोवाला होता है,

तथा उसकी कोई न कोई सख्या भी अवश्य होती है। क्षेत्र उसके प्रदेशो या आकारोको कहते हैं क्योकि वे उस आकारका स्थान घेरते हैं। कालके अन्तर्गत उसकी नित्यता व अनित्यता आती है और भावके अन्तर्गत उसके सामान्य व विशेष गुण विचारे जाते हैं।

जीव पदार्थको द्रव्यकी अपेक्षा विचार करनेपर सामान्य रूपसे तो वह चित्प्रकाश मात्र एक स्वभावी होनेके कारण एक सख्यावाला है, परन्तु विशेष रूपसे उस स्वभावको धारण करनेवाले प्रदेशात्मक जीव-द्रव्य लोकमे अनन्तानन्त हैं। क्षेत्रकी अपेक्षा विचार करनेपर सामान्य रूपसे वह चित्प्रकाश मात्र एक स्वभावी होनेके कारण सर्व-व्यापक है, परन्तु प्रदेशात्मक जीव-द्रव्यका क्षेत्र सीमित है। क्योकि प्रकाश तो ज्ञानका है और वह सदा व्यापक ही होता है, परन्तु प्रकाशक या ज्ञानवान् कोई *आकारवान् द्रव्य* है जो सीमित है। जैसे 'चक्षुरिन्द्रिय कितनी बडी है,' ऐसा प्रश्न करनेपर यह उत्तर आता है कि जितनी-जितनी दूर तक देख सके चक्षु उतनी बड़ी है, परन्तु चक्षुमे पीडा हो जाये तो उसका इलाज करनेके लिए 'चक्षु कितनी बडी', इसके उत्तरमे चक्षु केवल एक इच मात्र है। इसी प्रकार जाननेकी अपेक्षा तो चित् सर्व विश्वको जाननेमे समर्थ होनेके कारण व्यापक है, परन्तु सुख-दु खके या आनन्दके अनुभवकी अपेक्षा केवल शरीराकार है, क्योकि इनका अनुभव उतने मात्र ही क्षेत्रमें होता है। इस प्रकार उसका स्वभाव सर्व व्यापक है, परन्तु प्रदेशात्मक जीव-द्रव्य सीमित है। उसमे भी सामान्य जीव द्रव्य यद्यपि लोक प्रमाण असख्यात प्रदेशी है, परन्तु शरीरधारी विशेष जीवोकी अपेक्षा करनेपर सकोच विस्तार द्वारा छोटे-बडे विस्तारो वाला है।

कालकी अपेक्षा विस्तार करनेपर सामान्य रूपसे तो चित्प्रकाश तथा प्रदेशात्मक जीव-द्रव्य दोनो ही नित्य हैं, परन्तु शरीरधारी

विशेष जीव अनित्य ही है। भावकी अपेक्षा विचार करनेपर सामान्य रूपसे वह चित्प्रकाश मात्र है, परन्तु विशेष रूपसे ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनेको गुणो तथा भावोवाला है।

जीव द्रव्य अत्यन्त सूक्ष्म है, बाहरकी स्थूल दृष्टि वालोंकी समझमे नही आता। वह प्रकाश मात्र है अर्थात् जाननेकी शक्ति मात्र है, अत्यन्त गहन तथा सूक्ष्म है, भावमात्र है। शरीर से सूक्ष्म इन्द्रियां होती हैं, उससे सूक्ष्म मन, उससे सूक्ष्म अहकार, उससे भी सूक्ष्म चित्त, और बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म है। इसका यह अर्थ नही कि यहाँ बडे व छोटे साइजका विचार किया जा रहा है, बल्कि यह है कि ये उत्तरोत्तर अधिक सूक्ष्म विषयको जान सकते हैं। अन्त.करणमे बुद्धि सबसे सूक्ष्म विषयको जानती है, पर जो इसकी पहुँचसे भी बाहर केवल स्वानुभवके गोचर है वह चित्प्रकाश इससे भी अधिक सूक्ष्म है ऐसा कहा जायेगा। इसका यह अर्थ नही कि इसका साइज सूक्ष्म है बल्कि यह है कि यह जाननेमे अत्यन्त गहन है, अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टिसे ही जाना जाता है। इसको बौद्धिक ज्ञान नही जान सकता। इसका केवल दर्शन होना सम्भव है। अत. गहनताके कारण इसे अगुष्ठ प्रमाण या अणु प्रमाण भी कह सकते है, क्योकि दुःख-सुखका वेदन केवल शरीरमे ही होता है। इस प्रकार यह सूक्ष्म जो परमाणु उससे भी अधिक सूक्ष्म है, महान् जो आकाश उससे भी अधिक महान् तथा व्यापक है, और फिर भी शरीरके आकारका है। चित्प्रकाशको देखनेपर यह निराकार है परन्तु प्रदेशवान द्रव्यको देखनेपर यह साकार भी है।

१८. जीव पदार्थ का सक्षिप्त सार

जीव-विज्ञान सम्बन्धी यह विषय क्योकि बहुत विस्तृत हो गया है और बडा विचित्र भी है, इसलिए यहाँ अन्तमे उसका एक

संक्षिप्त-सा सार देकर पाठकजनोको उसकी आवृत्ति करा देना आवश्यक है, ताकि यह उनकी स्मृतिमे ठीक प्रकार बैठ जाये—

१. जगत्मे दो पदार्थ है—एक जीव, दूसरा जड। जीव अदृष्ट है और जड़ दृष्ट। जीवसे अन्त करणका निर्माण होता है और जड़ से शरीरका।

२ शरीरमे रहनेवाला वह अमूर्तिक या अदृष्ट पदार्थ ही जानता तथा देखता है और मृत्यु हो जानेपर शरीरसे निकलकर अन्यत्र चला जाता है। उसके होनेपर ही इन्द्रियाँ जानती हैं, उसके न होनेपर नही।

३. यह जीव शरीरसे निकलकर तुरन्त ही अन्य शरीर धारण कर लेता है। इस प्रकार बराबर पुन-पुन. जन्म-मरण करता हुआ अनेको योनियोमे भ्रमण करता रहता है।

४ यद्यपि जीव चेतन है, फिर भी उसके द्वारा धारण किये गये चित्र विचित्र शरीरोके कारण अथवा हीनाधिक जाननेके साधनोंके आधारपर उसके अनेको भेद-प्रभेद किये जा सकते हैं।

५ जाननेके साधनको इन्द्रिय कहते है। ये इन्द्रियाँ पाँच होती है—स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु और कर्ण।

६. इन पाँचो इन्द्रियोको क्रमपूर्वक धारण करनेसे जीव भी पाँच प्रकारके होते हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय।

७ पञ्चेन्द्रिय जीव दो प्रकारके होते हैं—संज्ञी व असञ्ज्ञी अर्थात् मनवाले तथा बिना मनवाले।

८. एकेन्द्रि जीव 'स्थावर' कहलाते है और दोसे पाँच इन्द्रिय तकके 'त्रस' कहाते है।

९. दोसे चार इन्द्रिय तकके जीवोको विकलेन्द्रिय अर्थात् हीन इन्द्रियवाले कहते है और पञ्चेन्द्रिय को सकलेन्द्रिय अर्थात् पूरी इन्द्रियवाले।

१० स्थावर पाँच होते है—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति।

११. गतियोकी अपेक्षा जीवोंके चार भेद हैं—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। मनुष्योको छोडकर एकसे पाँच इन्द्रिय तकके सभी दृष्ट जीव 'तिर्यंच' कहलाते है। नारकी, मनुष्य तथा देव सज्ञी पचेन्द्रिय ही होते है।

१२. पाँचो प्रकारके स्थावरोका शरीर पृथक्-पृथक् जातिका है और सभी त्रसोका शरीर एक मास जातिका है। इसलिए जीवोके छह काय हैं—पाँच स्थावर और एक त्रस।

१३. त्रस तिर्यंच तीन प्रकारके हैं—जलचर, थलचर और नभचर।

१४. जीव स्थूल भी होते हैं और सूक्ष्म भी। कुछ सूक्ष्म जीव माइक्रोस्कोपसे देखे जा सकते हैं। इन्हे विज्ञान 'बैक्टेरिया' कहता है। ये प्रत्येक पदार्थमे तथा प्रत्येक स्थानमे ठसाठस भरे पड़े है, अथवा उनमे उत्पन्न होते रहते हैं।

१५ जीवके ये सभी भेद भी अनेको रूप व प्रकृतिके होनेके कारण जीवोके कुल भेद चौरासी लाख हो जाते है। इन्हे ही जीवकी चौरासी लाख योनियाँ कहा गया है।

१६. जीवोकी उत्पत्ति तीन प्रकारसे होती है—सम्मूर्च्छिम, गर्भज तथा उपपादज। बिना माताके गर्भाशयके स्वय बाहरमे उत्पन्न हो जानेवाले जीव सम्मूर्च्छिम हैं। माता-पिताके संयोगसे

उत्पन्न होनेवाले तथा माताके उदरमे वृद्धि पानेवाले जीव गर्भज है और नारकी तथा देव उपपादज हैं।

१७. एकेन्द्रियसे चतुरेन्द्रिय तकके सर्व जीव तथा सूक्ष्म जीव सम्मूर्च्छिम हैं। पचेन्द्रियोमे कुछ सम्मूर्च्छिम हैं और कुछ गर्भज।

१८. गर्भज जीव तीन प्रकारके है जरायुज, अण्डज और पोतज। झिल्ली मे लिपटे हुए उत्पन्न होनेवाले जरायुज कहलाते हैं, अण्डेमे उत्पन्न होनेवाले अण्डज हैं और उत्पन्न होते ही दौडनेमे समर्थ पोतज कहलाते है।

१९ सूक्ष्म जीव हर स्थान तथा पदार्थमे स्वत. उत्पन्न हो जाते है, यदि वहांपर ठीक तापमान, नमी, वायु, भक्ष्य व सुरक्षा उपलब्ध हो जाये तो।

२० सूक्ष्म जीव बड़ी तीव्र गतिसे पैदा होकर आध-पौन घण्टे के भीतर-भीतर असंख्यात तथा अनन्तकी सख्या तक पहुँच जाते हैं।

२१ जीव पदार्थके अनेको नाम हैं—चेतन, आत्मा, रूह, सोल जीव इत्यादि। इनमे-से चेतन, आत्मा आदि तो शरीरसे रहित मूल-भूत पदार्थका नाम है और जीव जन्म-मरण करनेवाले इस शरीर-धारीका नाम है।

२२ शरीरकी उपाधिसे ही आत्मा तथा जीवमे भेद है, अन्यथा वे दोनो एक हैं।

※

६

जीवके धर्म तथा गुण

१ जीव, अन्त करण तथा शरीरका पार्थक्य, २ जीव सामान्यके धर्म तथा गुण, ३ दर्शन, ४ ज्ञान, ५ सुख, ६. वीर्य, ७ अनुभव; ८ श्रद्धा एव रुचि, ९ सकोच विस्तार, १० गुणोंके भेद-प्रभेद, ११ ज्ञानके भेद, १२ मतिज्ञान, १३ श्रुतज्ञान, १४ अवधिज्ञान, १५ मन पर्यय ज्ञान, १६ केवलज्ञान, १७ क्रम और अक्रम ज्ञान, १८ दर्शनके भेद, १९ सुखके भेद, २० वीर्य, २१ अनुभव श्रद्धा तथा रुचिमें भेद, २२ कषाय, २३ आवरण तथा विकार, ३४ सावरण तथा निरावरण ज्ञान, २५ स्वभाव तथा विभाव, २६ चेतनके गुण, २७ अन्त करणके गुण, २८ शरीरके धर्म, २९ जीव-विज्ञान जाननेका प्रयोजन ।

१. जीव, अन्तःकरण तथा शरीरका पार्थक्य

इस जन्म-मरणरूप संसारमे गोते खाते अनन्त काल बीत गया पर आज तक जीवनको जान न सका। जीवन सार है, जीवन रस है, जीवन आनन्द है, जीवन सुन्दर है—ऐसा केवलज्ञानी जनोंसे सुना परन्तु उसे देख न सका। हे नाथ ! अब करुणा कीजिए, जगत् के इस तप्त कीटपर और दर्शाइए इसे जीवनका वैभव। भैया ! जीवन शरीरमे नही है, बल्कि अन्त करणमे गुप्त उस परम तत्त्वमे है जिसका परिचय कि पहले चेतनके नामसे दिया गया है। उसके अनेको गुण ही उसकी ध्रुव सम्पत्ति है जो उससे कभी भी नही छूटती। आ ! हम तुझे उस चेतन तत्त्वके अनेको गुणोका परिचय दें।

चेतन तत्त्व अत्यन्त गुप्त है, अतः उसको पढ़नेके लिए जीव-पदार्थको पढनेका प्रयत्न करें। जीव-पदार्थपर-से ही चेतन तत्त्वको जाना जा सकता है, क्योकि जैसा कि पहले बताया गया है जीव-पदार्थ ही चेतन तत्त्व है, जीव ही परब्रह्म परमेश्वर तथा प्रभु है, यदि शरीर तथा अन्त.करणसे मुक्त हो जाये तो। आप स्वय जीव है, अतः आप भी स्वय प्रभु बन सकते हैं या परमानन्दको प्राप्त कर सकते हैं, यदि शरीर तथा अन्त.करणसे मुक्त हो जायें तो। परन्तु यह तभी सम्भव है जब कि आप जीव, शरीर तथा अन्त.करण इन तीनोको ठीक-ठीक जान सकें। ससारी-जीव शरीर, अन्त.करण तथा चेतना इन तीन पदार्थोंसे मिलकर बना है। इसलिए तीनोको पृथक्-पृथक् पहचाननेकी आवश्यकता है। जबतक शरीर ही शरीर को जानते रहेगे तबतक आपके लिए शरीर ही जीव या चेतन पदार्थ बना रहेगा।

किसी भी पदार्थको जान लेनेके लिए उसके गुण तथा उसकी विशेषताएँ जानी व जनायी जाती है, क्योकि जैसा कि पहले बताया गया है, पदार्थ गुणोका समुदाय है। उन गुणो या विशेषताओपर-से हम उस पदार्थको अच्छी तरह पहचान सकते है। अत. जीव, अन्त.करण तथा शरीर इन तीनोके पृथक्-पृथक् क्या गुण या विशेष-ताएँ है यह जानना अत्यावश्यक है। ये तीनो पृथक्-पृथक् पदार्थ हैं, यह बात पहले बतायी जा चुकी है। जीव चेतन है, शरीर जड है और अन्त करण इन दोनोके मध्यवर्ती एक विचित्र पदार्थ है जिसने इन दोनोको मिलाकर एकमेक कर रखा है, और यह जानने नही देता कि इनमे क्या भेद है। ज्ञानीजन ही किसी विशेष अन्तर्चक्षु द्वारा इस रहस्यको जान पाते हैं। उसी रहस्यका कुछ परिचय देते हैं। तनिक विचार व मनन द्वारा अपने अन्दरमे खोजकर उसे जानने तथा उसकी सत्यता का निर्णय करनेका प्रयत्न कीजिए।

२. जीव सामान्यके धर्म तथा गुण

गुण, स्वभाव व धर्म ये एकार्थवाची शब्द है। इसलिए धर्म कहो या गुण कहो एक ही बात है। यद्यपि चेतन तथा अन्त.करणके पृथक्-पृथक् गुण बताये जाने चाहिए, परन्तु उनका भेद अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अभी आप उसे समझ न सकेंगे। इसलिए पहले चेतन तथा अन्त करण का मिश्रण जो यह जीव पदार्थ है इसके गुण बताता हूँ। उनके पृथक्-पृथक् गुण पीछे बताऊँगा जब कि आप इस स्थूल तत्त्वको ठीक प्रकारसे समझ चुकेंगे।

जीव पदार्थमे वैसे तो अनन्तो गुण तथा शक्तियाँ या विशेषताएँ है, जिनमे-से सबका कहा जाना असम्भव है। हाँ कुछ प्रमुख गुणोका परिचय देना यहाँ पर्याप्त है। जीवके चार प्रमुख गुण आगममे कहे गये है—ज्ञान, दर्शन, सुख व वीर्य। इन चारो गुणो-की चौकडीका नाम अनन्त-चतुष्टय है। ये कुछ ऐसे विशेष लक्षण है, जिनपर-से आबाल-गोपाल इसको जान सकते हैं, क्योकि ये चारो सबके प्रत्यक्ष हैं। इनके अतिरिक्त भी जीवमें अनेक गुण हैं, जिनमे अनुभव, रुचि, श्रद्धा, सकोच-विस्तार विशेष वर्णनीय हैं।

३ ज्ञान

ज्ञान कहते हैं जाननेको। क्या बच्चा और क्या बड़ा सभी कुछ न कुछ जानते है, इन्द्रियोंसे जानें या मनसे। परन्तु साधारणत. ऐसा भ्रम पडा हुआ है कि इन्द्रियाँ ही जानती है अर्थात् आँख ही देखती है, कान ही सुनते है, नाक ही सूँघती है। परन्तु वास्तवमे ऐसा नही है। ये इन्द्रियाँ या मन जाननेके साधन तो अवश्य हैं, परन्तु स्वय जाननेवाले नही हैं। जिस प्रकार चश्मा आँखोंके लिए देखनेका साधन तो अवश्य है पर स्वय नही देख सकता। इस बातकी परीक्षा तब होती है जब कि मृत्यु हो

जानेपर ये इन्द्रियाँ शरीरमे रहते हुए भी कुछ नही जान पाती। इन इन्द्रियोंके पीछे गुप्त रूपसे बैठा हुआ जो जीव पदार्थ है वही जानता है। यह जानना ही उसका सर्व-प्रमुख गुण है।

४. दर्शन

दर्शन कहते हैं देखनेको। देखनेका अर्थ यहाँ इन धन, कुटुम्ब, पुस्तक आदि बाहरके पदार्थोंको देखनेका नही है, बल्कि अन्तर्चक्षु द्वारा अपने भीतर झाँककर देखनेका है। आँख भी दो प्रकारकी है—एक बाहरकी और दूसरी भीतरकी। बाहरकी आँखको तो सब जानते हैं पर भीतरकी आँख कौन-सी है यह पता नही चलता। अरे! हम नित्य प्रति उसका प्रयोग करते हैं, फिर भी उसे भूल जाते हैं। यह महान् आश्चर्य है। बाहरकी आँखसे देखनेको यहाँ दर्शन नही कहा गया है। भले ही लोकमे उसे दर्शन करना या देखना कहे पर यहाँ तो वह रूप सम्बन्धी ज्ञान ही है। दर्शन तो भीतरी चक्षु द्वारा भीतरमे ही देखनेका नाम है। कोई भी वस्तु दो स्थानोपर देखी जा सकती है—एक बाहरमे और एक भीतरमे। बाहरमे तो वह उसी समय देखी जा सकती है जब कि आपकी आँख खुली हो, बाहरमे सूर्य या दीपक आदिका प्रकाश हो और वह वस्तु सामने पड़ी हो, जैसे कि अपने सामने खड़े पुत्रको आप देखते

दर्शन[1] है।

यह गुण कुछ सूक्ष्म है अत. अन्य प्रकारसे भी इसका लक्षण किया जाता है। आप यदि बहुत अधिक सावधान होकर विचार करें तभी आपको इसकी प्रतीति हो सकती है। आप जब कभी भी किसी एक इन्द्रियसे देखते या जानते हुए उसे छोड़कर किसी अन्यसे देखने या जाननेका उद्यम करते हैं तब एक सूक्ष्म-सा प्रकाश अन्दर ही अन्दर पहली इन्द्रियसे उस दूसरी इन्द्रियकी तरफ दौड़कर जाता हुआ प्रतीत होता है। यह काम इतनी जल्दी हो जाता है कि साधारण दृष्टिसे पकडा नही जा सकता। परन्तु गौर करके देखनेका प्रयत्न करें तो अवश्य उसका पता चल जाता है। बस अन्दरमे दौडनेवाला यह क्षणिक प्रकाश ही दर्शन है।

ज्ञानका सम्बन्ध क्योकि बाह्य पदार्थोंको इन्द्रियो आदिके द्वारा जाननेसे है, इसलिए वह स्थूल है। परन्तु दर्शनका सम्बन्ध किसी अन्तरंग प्रकाशसे है, इसलिए वह सूक्ष्म है। स्थूल पदार्थको आसानीसे जाना जा सकता है, परन्तु सूक्ष्मको जाननेमे कठिनाई पड़ती है। यही कारण है कि ज्ञानको तो सहज ही सब समझ जाते हैं, परन्तु दर्शनको जाननेमे कुछ कठिनाई पड़ती है। ऊपर दर्शनका लक्षण करनेके लिए जो दृष्टान्त दिये गये हैं वे केवल स्थूल रूपसे उसे समझाने के लिए दिए गये हैं। सूक्ष्म रूपसे बतानेपर उस प्रकार अन्दरमे देखना भी ज्ञान ही है। परन्तु यहाँ उतनी सूक्ष्म बात बतानेसे आप भ्रममे न पड जायें, इसलिए इतना ही समझें कि भीतर झांककर किसी भी विषयको देखनेपर जो अन्दरमे कुछ प्रकाश-सा दिखाई देता है, या एक इन्द्रियसे दूसरी इन्द्रियकी

---

१ वास्तवमे यह ज्ञान ही है, परन्तु प्राथमिक जनोको दर्शन तक पहुचानेके लिए इसका अवलम्बन लिया जा रहा है।

तरफ झपटता प्रतीत होता है, जिस प्रकाशके कारण कि वह विषय स्पष्ट दीखता है उस प्रकाशका नाम ही दर्शन है, और बाहरके पदार्थोंको देखनेका नाम ज्ञान है। इसीको यो कह सकते हैं कि बाह्य पदार्थको देखे तो ज्ञान है और जीव स्वयं अपनेको देखे तो दर्शन है। ज्ञान सदा ही इस दर्शन-पूर्वक हुआ करता है। क्योंकि जबतक वह अन्दरका प्रकाश पहली इन्द्रियसे हटकर अगली इन्द्रियपर नही जायेगा, तबतक वह इन्द्रिय जाननेको समर्थ नही हो सकती। जैसे कि किसीके साथ बातें करनेमे तन्मय होनेके कारण आप अपने सामनेसे गुज़रते हुए व्यक्तिको भी देख नही सकते।

इस प्रकार ज्ञान और दर्शन लगभग एक ही जातिके होनेके कारण यद्यपि पृथक्-पृथक् बतानेकी बजाय एक ज्ञानमे ही गर्भित करके बताये जा सकते हैं, तदपि इनको पृथक्-पृथक् करके दो गुणोके रूपसे बतानेमे आचार्योंका एक विशेष प्रयोजन है, जो अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टिसे ही जाना सकता है। उस प्रकारकी सूक्ष्म दृष्टिसे वस्तुका विवेचन क्योंकि इस पुस्तकका विषय नही है इसलिए उसे यहाँ नही बताया जा सकता। हाँ, स्थूल रूपसे पदार्थ-विज्ञान पढ़ लेनेके पश्चात् जब आप सूक्ष्म रूपसे भी इसे पढनेके योग्य हो जायेंगे, तब वह सूक्ष्म रहस्य भी बता दिया जायेगा। यहाँ तो केवल इतना ही जानिए कि क्योंकि विषय दो प्रकारके हैं—बाहरी व भीतरी, इसलिए उनको जाननेके साधन भी दो प्रकारके हैं। बाहरके विषयोको जानना ज्ञान है। भीतरके विषयोको अर्थात् अन्त.करणको देखना दर्शन है।

५ सुख

तीसरा गुण है सुख। सुख भी दो प्रकारका होता है—एक बाहरी तथा दूसरा भीतरी। बाहरी सुख तो शरीर सम्बन्धी है

और वह इन्द्रिय-भोगोको भोगनेसे उत्पन्न होता है, परन्तु भीतरी सुख शान्तिरूप है। सुखका विपक्षी दुःख है। वह भी दो प्रकारका है—बाहरी तथा भीतरी। बाहरी दुःख तो शरीरकी पीड़ा आदि रूप है और भीतरी दुःख, चिन्ता व व्याकुलता रूप है। बाहरी सुख-दुःख तो ज्ञानके द्वारा जाने जाते हैं, और भीतरी सुख-दुःख दर्शनके द्वारा देखे जाते हैं या महसूस किये जाते है।

यद्यपि जीवमे सुख नामका गुण कहा गया है परन्तु इसका यह अर्थ नही कि जीवमे सुख ही नामका गुण हो दुःख न हो, क्योकि ये दोनो ही प्रत्यक्ष देखनेमे आते हैं। फिर भी गुणका नाम सुख रखा गया है दुःख नही, और न ही दुःख नामका कोई पृथक् गुण बताया गया है। इसका कोई विशेष प्रयोजन है। वह यह कि दुःख जीवको उसी समय तक रहता है जिस समय तक कि वह शरीर व अन्तःकरणके साथ बँधा रहता है। परन्तु उनके बन्धनसे छूटनेपर उसे सुख ही होता है, दुःख नही। यहाँ क्योकि चेतन या जीवके गुण बताये जा रहे हैं इसलिए उन्ही गुणोका विचार करना युक्त है जो कि शरीर व अन्तःकरणसे पृथक् हो जानेपर जीवमे पाये जाते हैं। इसलिए जीवमें सुख नामका ही गुण है दुःख नामका नही और वह सुख भी भोगो सम्बन्धी न समझकर शान्ति सम्बन्धी ही समझना।

६. वीर्य

वीर्यका अर्थ शक्ति है। प्रत्येक पदार्थमे कोई न कोई शक्ति अवश्य होती है। शक्ति नाम भार सहन करने तथा टिकनेका है। कोई भी पदार्थ जितनी देर तक टिका रह सके, बिगड़े या गले नही, कमजोर नही हो, उतनी ही उसकी शक्ति है। जैसे कि स्तम्भकी शक्ति इतनी है कि इतनी भारी दीवारको अपने ऊपर धारण कर लेनेपर भी दबे नहीं, टूटे नही और सैकड़ो वर्षों तक

क्षीण न हो। इसी प्रकार जीवकी भी कोई न कोई शक्ति है। ध्यान रहे कि यहाँ शरीरकी शक्तिको नही कहा जा रहा है बल्कि जीवकी शक्तिको कहा जा रहा है। शरीरकी शक्ति तो कोई बोझ उठाते समय तथा कुश्ती लडते समय देखी जाती है, परन्तु जीवकी शक्ति रोग, मरण, हानि आदि चिन्ताके कारण उपस्थित होनेपर देखी जाती है। ऐसे अनिष्ट सयोग हो जानेपर उन्हे कौन जीव कितना सहन कर सकता है, तथा कितनी देर तक सहन कर सकता है यही उसकी शक्ति है। चिन्ताके कारणोको सहन करनेका अर्थ है शान्तिमे स्थिति। जो जीव प्रतिकूलताओ मे जितना अधिक शान्त रह सकता है उतनी ही उसकी शक्ति या बल है। इसका कारण भी यह है कि, जिस प्रकार स्तम्भका स्वभाव भार वहन करनेका है, उसी प्रकार जीवका स्वभाव शान्त रहनेका है। जिस प्रकार स्तम्भका अपने रूपमे टिके रहना उसकी शक्ति है, इसी प्रकार जीवका अपने स्वभावमे टिके रहना उसकी शक्ति है और वही उसका वीर्य है। इस प्रकार परीक्षा करनेपर बडे-बडे बलवान् पुरुष भी नपुसकवत् शक्तिहीन सिद्ध होते हैं, क्योकि तनिक-सी बात सुनकर या स्त्री आदिका रूप देखकर वे तुरन्त धैर्य खो बैठते हैं, क्रोध तथा कामके अधीन हो जाते है। वास्तविक वीर्य तो मुनिजनोमे ही है कि कैसे भी घोर सकट या परीक्षाके अवसर आनेपर अपनी साधनासे नही डिगते।

७. अनुभव

अनुभव दु:ख-सुख, चिन्ता अथवा शान्तिको अन्दरमे महसूस करनेका नाम है। किसी पदार्थका जानना और बात है और उसका अनुभव करना और बात है। जाना तो दूरवर्ती तथा निकटवर्ती दोनो पदार्थोको जा सकता है, परन्तु अनुभव तो उस समय तक नही हो सकता है जब तक कि जीव उस पदार्थके साथ तन्मय न हो जाये।

साधारणत: पाँचो इन्द्रियोमे आँख तथा कान ये दो इन्द्रियाँ रूप व शब्दको जान सकती हैं पर अनुभव नही कर सकती, क्योंकि ये दोनो विषय सदा दूर ही रहते हैं, कभी भी इन्द्रियोको स्पर्श नही करते। परन्तु स्पर्शन, जिह्वा तथा नाक ये तीन इन्द्रियाँ जाननेके साथ-साथ अनुभव भी करती है, क्योकि इनके विपयोका ज्ञान उस समय तक नही होता जब तक कि वे इन इन्द्रियोको स्पर्श न कर जायँ। जैसे कि भोजन दूर रहकर आँखसे देखा जा सकता है, परन्तु चखा नही जा सकता जब तक कि जिह्वापर रख न लिया जाये। देखनेसे स्वाद या आनन्द नही आता, पर खाने या चखनेसे यदि मीठा हो तो आनन्द आता है और यदि कड़वा हो तो कष्ट होता है। इसी प्रकार सुगन्धिके नाकमे आनेपर उसको जाननेके साथ-साथ कुछ मज़ा भी आता है। इसी प्रकार सर्दियोमे गर्म स्पर्श और गर्मियोमे शीत स्पर्शको जाननेके साथ-साथ आनन्द आता है तथा इससे उलटा होनेपर ठण्डा-गर्म जाननेके साथ-साथ कष्ट होता है।

जानना जबतक केवल जानना हो तब तक वह ज्ञान कहलाता है जैसे कि पदार्थको दूरसे देखकर जानना, परन्तु जब जाननेके साथ-साथ दु.ख-सुखका वेदन भी हो तो उसे अनुभव कहते हैं, जैसे गर्म व ठण्डे स्पर्शको जानना। यद्यपि दोनो ही ज्ञान हैं, परन्तु दोनोमे कुछ अन्तर है। ऊपर जो तीन इन्द्रियो द्वारा अनुभव करना दर्शाया गया है सो बहुत स्थूल बात है। वास्तवमे अनुभव करना इन्द्रियोका नही बल्कि मनका काम है, इसलिए वह शरीरका नही जीवका गुण है। सो कैसे वही बताता हूँ।

जबतक मन इन्द्रियके साथ नही होता तबतक आपको सुख या दु ख नही हो सकता। क्योकि मन जब अपने विषयके साथ तन्मय हो जाता है, उसीमे तल्लीन हो जाता है, तब दु.ख-सुख, हर्ष-

विषाद हुआ करता है। फिर भले ही वह विषय नेत्र इन्द्रियसे देखनेका हो या जिह्वासे चखनेका। जैसे कि वनकी शोभा देखनेपर यदि मन सब तरफसे हटकर केवल उसे ही देखनेमे लीन हो जाये तो आनन्द आता है, परन्तु यदि किसी कार्य-विशेषवश किसी गाँव जाते हुए उसी वनमेसे आपको गुज़रना पडे तब वह वन देखकर जाना तो जाता है परन्तु मन उसमे लय न होनेके कारण आनन्द नही आता। इसी प्रकार भोजन करते हुए यदि मन उसमे ही लय हो जाये तो आनन्द आता है, परन्तु यदि अन्य चिन्ताओ व सकल्प-विकल्पोमे उलझा रहे तो आनन्द नही आता, साधारण-सा खट्टा-मीठा स्वाद ही जाननेमे आता है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना। जाननेके अतिरिक्त जीवमे यह अनुभव करनेका एक पृथक् गुण है जिसका सम्बन्ध विषयके साथ तन्मय होकर दुखी या सुखी होनेसे है।

८. श्रद्धा और रुचि

'यह बात जैसो जानी वैसे ही है, अन्य प्रकार नही" ऐसी आन्तरिक दृढताको श्रद्धा या विश्वास कहते हैं। जानने व श्रद्धा करनेमे अन्तर है। श्रद्धाका सम्बन्ध हित अहितसे होता है। इन्द्रियसे केवल इतना जाना जा सकता है कि यह पदार्थ रूप-रग आदि वाला है, परन्तु 'यह मेरे लिए इष्ट है' यह बात कौन बताता है? सर्प काला तथा लम्बा है यह तो आँखने बता दिया, परन्तु 'यह अनिष्ट है, यहाँसे दूर हट जाओ' यह प्रेरणा किसने की? बस उसीका नाम श्रद्धा है। श्रद्धा उस आन्तरिक प्रेरणाका नाम है जो कि व्यक्तिको किसी विषयकी तरफ तत्परतासे उन्मुख होनेके लिए या वहाँसे हटनेके लिए अन्दर बैठी हुई कहती रहती है।

श्रद्धाका यह अर्थ नही कि वह विषय आपके सामने हो तभी वह कुछ कहे। नही, विषय हो अथवा न हो यदि एक बार वह जान लिया गया है तो उसके सम्बन्धमे इष्ट-अनिष्टकी बुद्धि अन्दरमे बैठी

ही रहती है। कोई कितना भी समझाये कि सर्प तो बहुत अच्छा तथा सुन्दर होता है परन्तु आप उसकी बात माननेको तैयार नही। इसी आन्तरिक दृढताका नाम श्रद्धा है।

श्रद्धासे ही रुचि या अरुचि प्रकट होती है। जो वस्तु इष्ट मान ली गयी है वह सदा ही प्राप्त करनेकी इच्छा बनी रहती है जैसे कि धन कमानेकी इच्छा। इसे रुचि कहते हैं। यदि धनकी इष्टता सम्बन्धी श्रद्धा न हो तो यह रुचि नही हो सकती। रुचिका भी यह अर्थ नही कि आप वह काम हर समय करते रहे। परन्तु यह तो केवल एक भाव विशेष है जो अन्दरमे बैठा रहता है और अन्दर ही अन्दर चुटकियाँ भरा करता है, जैसे कि यहाँ पुस्तक पढते या उपदेश सुनते हुए यद्यपि आप धन कमानेका कोई काम नही कर रहे है, परन्तु उसकी रुचि तो आपको है ही।

इस प्रकार श्रद्धा व रुचि एक दूसरेके पूरक है। श्रद्धा आन्तरिक दृढताको कहते हैं और रुचि उस आन्तरिक प्रेरणाको कहते है जिसके कारण कि व्यक्ति वस्तु विशेषको प्राप्त करनेके प्रति उद्यमशील बना रहता है। अनुभव और श्रद्धाका भी परस्पर सम्बन्ध है—जिस पदार्थका अनुभव सुखरूप हुआ है उसके सम्बन्ध मे ही इष्टपनेकी श्रद्धा होती है और उसीको प्राप्त करनेकी रुचि होती है। जिस पदार्थका अनुभव दु खरूप हुआ है उसके सन्बन्धमे अनिष्टपनेकी श्रद्धा होती है, और उससे किसी प्रकार भी बचे रहनेकी रुचि या प्रेरणा होती है। इस प्रकार अनुभव, श्रद्धा तथा रुचि ये कुछ आन्तरिल सूक्ष्म भाव हैं जो प्रत्येक जीवमे पाये जाते हैं।

६ संकोच-विस्तार

जीव-सामान्यका परिचय देते हुए यह बात अच्छी तरह बतायी जा चुकी है कि जीव छोटा बड़ा जो भी शरीर धारण करता है, वह

स्वय उसी आकारका हो जाता है। यह बात तभी सम्भव है जबकि वह सिकुड़ व फैल सकता हो। अत. उसमे सकोच-विस्तारका कोई गुण मानना युक्ति-सिद्ध है। शरीरधारी ससारी जीवोमे ही इस गुणका प्रत्यक्ष किया जा सकता है, क्योकि उन्हे ही छोटे या बड़े शरीर धारण करने पडते हैं। शरीर-रहित मुक्त जीवोमे इसका कार्य दृष्टिगत नही हो सकता, क्योकि उन्हे शरीर धारण करनेसे कोई प्रयोजन नही है।

१०. गुणोके भेद-प्रभेद

जीवके सामान्य गुणोका कथन कर देनेके पश्चात् अब उनका कुछ विशेष ज्ञान करानेके लिए उनके कुछ भेद-प्रभेदोका भी परिचय पाना आवश्यक है अत अब उन गुणोके कुछ विशेष-विशेष भेद बताता हूँ।

११. ज्ञानके भेद

ज्ञानके दो भेद हैं—लौकिक तथा अलौकिक। लौकिक ज्ञान चार प्रकारका है—मति, श्रुत, अवधि व मन.पर्यय। अलौकिक ज्ञान एक ही प्रकार है। उसका नाम है केवलज्ञान। इन पाँचोमे भी प्रत्येकके अनेक-अनेक भेद हो जाते है, जिन सबका कथन यहाँ किया जाना असम्भव है। हाँ, इन पाँचका सक्षिप्त-सा परिचय दे देता हूँ ताकि शास्त्रमे कही इन ज्ञानोका नाम आये तो आप उनका अर्थ समझ लें। इन पाँचोमे-से मति तथा श्रुत ये पहले दो ज्ञान तो हीन या अधिक रूपमे छोटे या बडे सभी जीवोमे पाये जाते है, परन्तु आगेवाले तीन किन्ही विशेष योगियोमे ही कदाचित उनके तपके प्रभावसे उत्पन्न होते हैं।

१२ मतिज्ञान

पांचो इन्द्रियो से तथा मनसे जो कुछ भी प्रत्यक्ष या परोक्ष ज्ञान

होता है वह सब मतिज्ञान कहलाता है। अत. जितनी इन्द्रियाँ हैं उतने ही प्रकारका यह ज्ञान होता है। जिस जीवके पास हीन या अधिक जितनी इन्द्रियाँ होती हैं उसको उस-उस इन्द्रिय सम्बन्धी ही मतिज्ञान होता है, शेष इन्द्रियो सम्बन्धी नही होता, ऐसा समझना।

पाँचो इन्द्रियाँ अपने-अपने निश्चित विषयको ही जानती है, जैसे कि आँख रूपको ही जान सकती है और जिह्वा स्वादको ही। एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रियके विषयको नही जान सकती। परन्तु मनका कोई निश्चित विषय नही है। वह प्रत्येक इन्द्रियके विषय सम्बन्धी विचारणा, तर्क तथा सकल्प विकल्प कर सकता है। अत. मन सम्बन्धी मतिज्ञान अत्यन्त विस्तृत है, और वही प्रमुख है।

पहले किसी पदार्थको इन्द्रिय द्वारा जान लिया गया हो अथवा मन द्वारा विचारकर निर्णय कर लिया गया हो, तब वह स्मृतिका विषय बन जाया करता है। अर्थात् तत्पश्चात् पदार्थ न होने पर भी मन जब भी चाहे उस विषयका स्मरण कर सकता है। इसे स्मृतिज्ञान कहते हैं। यह भी मन सम्बन्धी मतिज्ञानका एक भेद है। किसी पदार्थको देखकर 'यह तो वही है जो पहले देखा था', या 'यह तो वैसा ही है जैसा कि पहले देखा था' इस प्रकारका जो ज्ञान होता है वह प्रत्यभिज्ञान कहलाता है। यह भी मनो-मतिज्ञान का ही एक भेद है। इस प्रकार मतिज्ञानके अनेको भेद हैं, जो सर्व-परिचित हैं। यह ज्ञान एकेन्द्रियसे सज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व ही छोटे-बड़े ससारी जीवोको अपनी-अपनी प्राप्त इन्द्रियोंके अनुसार हीनाधिक रूपमे यथायोग्य होता है। पशु-पक्षियो तथा मनुष्योको ही नही देव तथा नारकियोको भी होता है।

१३. श्रुतज्ञान

मतिज्ञानपूर्वक होनेवाला तत्पश्चाद्वर्ती ज्ञान 'श्रुतज्ञान'

कहलाता है। अर्थात् इन्द्रियो द्वारा किसी पदार्थ या विषयको देखकर, या सुनकर, या चखकर, या सूँघकर, या छूकर, या विचार कर तत्सम्बन्धी किसी अन्य बातको जान जाना श्रुतज्ञान कहलाता है। यह कई प्रकारका होता है जैसे—हिताहि ज्ञान, अनुमान ज्ञान, श्रावण ज्ञान, तर्क ज्ञान, कल्पना ज्ञान, निमित्त ज्ञान इत्यादि। इनमे-से हिताहित नामवाला प्रथम ज्ञान तो बडे-छोटे सभी प्राणियोको समान रूपसे होता है, परन्तु शेष ज्ञान केवल समनस्क या सज्ञी जीवोमे ही पाए जाते हैं।

किसी भी पदार्थको किसी भी इन्द्रियसे मतिज्ञान द्वारा देख या जान लेनेके पश्चात् यह ज्ञान भी साथ-साथ हो जाया करता है कि 'यह पदार्थ मेरे कामका है अथवा कामका नही है', जैसे कि भोजन को देखकर 'यह तो मेरा भक्ष्य होनेके कारण मेरे कामका है', अथवा घासको देखकर 'यह मेरे कामका नही है', ऐसा ज्ञान मनुष्यको होता है। गन्ध द्वारा अन्नको जानकर 'यह मेरे कामका है' और स्पर्श द्वारा घनको जानकर 'यह मेरे कामका नही है' अथवा स्पर्श द्वारा अग्निको जानकर 'यह मेरे लिए अनिष्टकारी है, इससे बचना चाहिए' ऐसा ज्ञान चीटीको होता है। यही हिताहित सम्बन्धी श्रुतज्ञान है। इस ज्ञानके लिए मनकी आवश्यकता नही है। पूर्व सस्कारवश बिना किसी शिक्षाके यह स्वय हो जाया करता है। मतिज्ञान द्वारा जान लेनेके पश्चात् ही यह ज्ञान होता है। इन्द्रिय द्वारा पदार्थको जानना मतिज्ञान है और पीछे उसमे हिताहितका भाव होना श्रुतज्ञान है।

किसी पदार्थको इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष करके अर्थात् देखकर, सुनकर, चखकर, सूँघकर या छूकर तत्सबन्धी किसी अप्रत्यक्ष पदार्थको जान लेना 'अनुमान' कहलाता है। जैसे कि दूरसे पर्वतमें किसी व्यक्तिका शब्द सुनकर यह पहचान जाना कि देवदत्त आता

है, अथवा किसी कुटे या पिसे हुए चूर्णको चखकर यह जान जाना कि इसमे अमुक-अमुक मसाले पडे हैं। इन्द्रियज मतिज्ञान हो जानेके पश्चात् उत्पन्न होनेके कारण यह भी श्रुतज्ञानमे गर्भित है।

श्रावण श्रुतज्ञान शब्द सुनकर या पढकर होता है। किसी भी शब्दको पढकर या सुनकर उसके वाच्यार्थका ज्ञान हो जाता है, जैसे कि 'पुस्तक' ऐसा शब्द सुनकर या पढकर आप स्वय समझ जाते है कि बोलने या लिखनेवाला इस 'पुस्तक' पदार्थकी ओर संकेत कर रहा है। पुस्तक तो दूसरे कमरेमे रखी थी जिसे उस समय न आँखने देखा था और न कानने सुना था, फिर भी 'पुस्तक' शब्द द्वारा उसी पुस्तक पदार्थका ज्ञान हुआ। बस, यही श्रावण श्रुतज्ञान अर्थात् शब्दके द्वारा होनेवाला श्रुतज्ञान है। यह केवल मनवालोको ही होता है। यह भी मति-ज्ञानपूर्वक ही होता है, क्योकि शब्दको कान द्वारा सुनना मतिज्ञान है और तत्पश्चात् उस पदार्थको जान लेना श्रुतज्ञान है।

"तुम्हारी बात ठीक है, अथवा ठीक नही है, क्योकि यदि ऐसा मान लें तो यह बाधा आती है, यह दोष आता है" इस प्रकारके युक्ति-पूर्ण ज्ञानको तर्कज्ञान कहते हैं, जो केवल मन द्वारा ही होना सम्भव है। यह भी मति-ज्ञानपूर्वक ही होता है, क्योकि कान द्वारा किसीका पक्ष सुनकर तत्पश्चात् उसपर युक्तियाँ लगाना श्रुतज्ञान है।

किसी भी पदार्थको देख या सुनकर अथवा जानकर या स्वत स्मरण हो जानेपर तुरत ही प्रायः विकल्पकी धारा चल निकलती है जैसे—'चीन' ऐसा शब्द सुनते ही, "अरे! बड़ा दुष्ट है तथा धोखेबाज है, चीनदेश। अब क्या होगा। युद्धमे यदि भारत हार गया तो गज़ब हो जायेगा। अरे! चीनी आकर हमारे घरोको लूटेंगे, स्त्रियोका शील भग करेंगे। मै कैसे देखूगा, प्रभु मुझको उससे पहले ही संसारसे उठा ले" इत्यादि अनेक प्रकारकी

कल्पनाओके जालमे उलझकर आप चिन्तित हो उठते है। इस प्रकारका कल्पना-ज्ञान भी श्रुतज्ञानका ही एक भेद है जो मन द्वारा होता है। यह भी मति-ज्ञानपूर्वक होता है, क्योकि कल्पना प्रारम्भ होनेसे पहले किसी न किसी इन्द्रियसे पदार्थका ज्ञान अवश्य होता है, तब पीछेसे उस विषय सम्बन्धी कल्पना चला करती है।

सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदिकोपर-से हिसाब लगाकर भूत व भविष्यत्की कुछ बातोको जान लेना ज्योतिष ज्ञान कहलाता है। हस्त-पादादिकी रेखाएँ देखकर भूत-भविष्यत् सम्बन्धी कुछ बातें जान लेना हस्तरेखा विज्ञान है। स्वप्नमे जो कुछ देखा उस परसे भूत-भविष्यत्की कुछ बातें जान लेना स्वप्न विज्ञान है। शरीरके अंगोपागोकी बनावट देखकर तथा उसके किन्ही प्रदेशोमे चक्रादिके चिह्न-विशेष देखकर उस व्यक्तिके भूत-भविष्यत् सम्बन्धी कुछ बातें जान लेना चिह्न-ज्ञान कहलाता है। श्वासके आने-जानेके क्रमको देखकर कुछ भूत-भविष्यत्की बातोको जान लेना स्वरज्ञान कहलाता है। पशु-पक्षियोकी बोली सुनकर कुछ भूत-भविष्यत् सम्बन्धी बातें जान लेना भाषा-विज्ञान है। पृथिवीकी कठोरता या मृदुता आदि देखकर भूत-भविष्यत् सम्बन्धी बातें जान लेना भौम-ज्ञान कहलाता है। बाहरमे शुभ व अशुभ शकुन देखकर कुछ भूत-भविष्यत् सम्बन्धी बातें जान लेना शकुन-ज्ञान कहलाता है। इत्यादि प्रकारके सब ज्ञान निमित्त-ज्ञान कहलाते है। यह भी श्रुतज्ञानका ही एक भेद है जो केवल मन द्वारा होता है तथा मतिपूर्वक होता है, क्योकि पहले इन्द्रियो द्वारा कुछ देख व सुनकर तत्सम्बन्धी विचारणा द्वारा पीछेसे भूत-भविष्यत्का पता चलता है।

ये सब तथा अन्य भी भेद-प्रभेदोको धारण करनेवाला यह श्रुतज्ञान अत्यन्त व्यापक है। वर्तमानका सर्व भौतिक विज्ञान यह श्रुतज्ञान ही है। प्रत्यक्ष-परोक्ष, दृष्ट-अदृष्ट, सम्भव-असम्भव सभी बातो

सम्बन्धी तर्कणाएँ तथा कल्पनाएँ करते रहना और उनमे से अनेको सारभूत बातें निकाल लेना, बड़े-बड़े सिद्धान्त बना देना यह सब श्रुतज्ञान है।

श्रुतज्ञानके ये सर्व भेद यद्यपि मनुष्यमे ही सम्भव है परन्तु सर्व ही व्यक्तियोमे पाये जायें यह कोई आवश्यक नही, क्योकि प्रत्येक व्यक्तिका ज्ञान समान नही होता। सर्वत्र हीनाधिकता देखी जाती है। संज्ञी अर्थात् मनवाले पशु-पक्षियोमे भी इनमेसे कुछ भेद पाये जाते हैं। स्थावर तथा विकलेन्द्रियोमें उनकी इन्द्रियोंके योग्य मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानका केवल पहला भेद ही पाया जाता है। देव तथा नारकियोमे दोनो ज्ञानोंके यथायोग्य सर्व भेद मनुष्योवत् हीनाधिक रूपसे पाये जाते हैं।

१४. अवधिज्ञान

अवधिज्ञान एक विशेष प्रकारका ज्ञान है, जिसके द्वारा निकटस्थ अथवा अत्यन्त दूरस्थ भी जड़ या चेतन पदार्थोंका भूत-भविष्यत् सम्बन्धी सारा चित्र-विचित्र हाल, हाथपर रखे आँवलेवत् प्रत्यक्ष दिखाई देता है। इस ज्ञानके द्वारा योगीजन इतना तक बता देते हैं कि तू पहले कई भवोमे कहाँ-कहाँ तथा किस-किस व्यक्तिके यहाँ जन्मा था। मनुष्य योनिमे था या पशु आदि अन्य योनियोमे। वहाँ तूने किस-किस व्यक्तिके द्वारा किस-किस प्रकार क्या-क्या दु.ख-सुख सहा था, और आगेके कई भवोमे कहाँ-कहाँ किस-किस व्यक्तिके यहाँ अथवा किस-किस योनिमे जन्मकर, किस-किस व्यक्तिके द्वारा किस-किस प्रकार क्या-क्या दु.ख-सुख भोगेगा।

यद्यपि किन्ही ज्ञानी गृहस्थोमे तथा पशु-पक्षियोमे भी कदाचित् कुछ मात्रामे यह ज्ञान हो जाना सम्भव है, परन्तु मुख्यत तपस्वी

योगियोको ही उनके तपके प्रभावसे प्रकट होता है। यह ज्ञान भी किन्हीको हीन तथा किन्हीको अधिक होता है। इस ज्ञानके दो भेद है—अवधिज्ञान तथा विभगज्ञान। अवधिज्ञान तो ऊपर बता ही दिया गया। विभंगज्ञान नारकियोको तथा नीच अज्ञानी देवोको होता है। इस ज्ञानके द्वारा भूत-भविष्यत्‌की बात तो अवश्य जानी जाती है, परन्तु ऐसी बातें ही जानी जाती है, जिनको जानकर कि द्वेष, लड़ाई, मार-पीट होने लगे। कोई भी प्रेमवर्धक बात जाननेमे नही आती। जैसे कि 'इस व्यक्तिने पूर्व भवमे मेरी स्त्रीका हरण किया था', यह बात तो जाननेमे आ जाती है, पर इस व्यक्तिने मेरे साथ यह उपकार किया था, ऐसी बातकी तरफ ध्यान भी नही जाता। इसका कारण भी यही है कि अत्यन्त नीची प्रकृतिके मलिन अन्तःकरणमे इसका उदय होता है। नरक तथा देवगति मे सभीको यह स्वाभाविक होता है।

१५ मन पर्यय ज्ञान

मन.पर्यय तो और भी विचित्र प्रकारका ज्ञान है। इसके द्वारा योगी अपने सामने आये हुए व्यक्तिके मनकी अत्यन्त सूक्ष्म बातको भी प्रत्यक्ष जान लेते हैं। यहाँ तक भी जान लेते ह कि कुछ दिन या घण्टो पहले इसने क्या सोचा था और कुछ दिन या घण्टो पश्चात् यह क्या सोचेगा ? यह ज्ञान गृहस्थको कदापि नही हो सकता, केवल बडे-बडे विशेष ज्ञानी-तपस्वियोको ही होता है। यह भी सबको बराबर नही होता बल्कि हीन-अधिक होता है।

१६. केवलज्ञान

केवलज्ञान अत्यन्त व्यापक होता है। इसे पूर्णज्ञान कहना चाहिए। यह हीन अधिक नही होता। यह एक अद्वितीय निरावरण (बिना ढका हुआ—पूरा खुला हुआ) अनन्त प्रकाश रूप होता है,

जिसमे समस्त विश्व एक साथ प्रतिभासित हो उठता है। यह मात्र उन महान् योगीश्वरोको ही होता है जो कि साधना-विशेष द्वारा अन्त करण तथा शरीरके बन्धनोसे मुक्त होकर केवल चेतनमात्र रह जाते है। पहले चार ज्ञान लौकिक हैं और यह ज्ञान अलौकिक है।

१७ क्रम तथा अक्रम ज्ञान

इन पाँचो ज्ञानोमे पहले चार क्रमवर्ती ज्ञान हैं और अन्तिम जो केवलज्ञान है वह अक्रमवर्ती है। पहले एक पदार्थको जाना, फिर उसे छोडकर दूसरेको जाना, उसे छोडकर तीसरेको जाना यह क्रमवर्ती ज्ञान कहलाता है। हमारा सबका ज्ञान क्रमवर्ती है। अवधि तथा मन पर्यय ज्ञान भी क्रमवर्ती है। परन्तु केवलज्ञान अनन्त प्रकाशपुज है, इसलिए उसमे इस प्रकार अटक-अटककर आगे-पीछे थोडा-थोडा जाननेकी आवश्यकता नही है। वह समस्त विश्वको एक साथ पी जाता है। अत केवलज्ञान अक्रमवर्ती है।

१८ दर्शनके भेद

ज्ञानकी ही भाँति दर्शन भी दो प्रकारका है—लौकिक तथा अलौकिक। लौकिक ज्ञानो से सम्बन्ध रखनेवाला लौकिक और अलौकिकसे सम्बन्ध रखने वाला अलौकिक है। पहले लक्षण करते हुए यह बताया गया है कि ज्ञान से पूर्व दर्शन हुआ करता है, क्योकि जबतक आपका उपयोग या प्रकाश पहली इन्द्रियसे हटकर दूसरी इन्द्रियपर नही जायेगा तबतक वह दूसरी इन्द्रिय निस्तेज रहेगी और खुली हुई होते हुए भी जाननेका काम न कर सकेगी। इसलिए जितने प्रकारके ज्ञान है उतने प्रकारके ही उनसे पूर्व होनेवाले दर्शन होने चाहिए। परन्तु वास्तवमे ऐसा नही हैं।

श्रुतज्ञानसे पूर्व दर्शन नही होता, क्योकि 'वह मति ज्ञानपूर्वक

होता है, ऐसा बताया जा चुका है, और इसी प्रकार मन.पर्यय ज्ञानके पूर्व भी कोई पृथक् दर्शन नही हुआ करता। वह भी मनो मतिज्ञान-पूर्वक ही हुआ करता है। शेष रहे तीन ज्ञान—मति, अवधि तथा केवल। बस इनके साथ सम्बन्धित होनेसे दर्शनके भी तीन भेद किये जा सकते है— मतिदर्शन, अवधिदर्शन तथा केवलदर्शन।

'मतिदर्शन' ऐसा नाम आगममे नही आता, क्योकि इसके भेद-प्रभेदोकी अपेक्षा इसका दर्शन भी अनेक भेदरूप समझा जा सकता है। मतिज्ञान क्योकि पाँच इन्द्रियो और छठे मनसे होता है इसलिए उस-उस इन्द्रियके ज्ञानसे पूर्व होनेवाले दर्शन भी छह प्रकारके होने चाहिए, स्पर्शज्ञानसे पूर्ववाला स्पर्शन दर्शन और रसना से पूर्ववाला रसना दर्शन इत्यादि। परन्तु श्रोता व पाठकके सुभीतेके लिए मति दर्शनके इतने भेद न करके केवल दो ही भेद कर दिये गये है—चक्षु-दर्शन तथा अचक्षु दर्शन। चक्षु इन्द्रिय अर्थात् आँखसे देखनेके पूर्व जो अन्तरग दर्शन होता है वह चक्षुदर्शन है, और शेष चार इन्द्रियों तथा मन द्वारा जाननेसे पूर्व जो दर्शन होता है वह अचक्षुदर्शन कहलाता है। यहाँ छहो भेदोको मिलाकर एक मतिदर्शन कहा जा सकता था, परन्तु चक्षु इन्द्रियसे देखना और दर्शनसे देखना इन दोनो प्रकारके देखनेमे जो अतर है उसे दर्शानेके लिए चक्षुदर्शनको पृथक् कर दिया गया। चक्षु इन्द्रियसे देखना चक्षु इन्द्रिय सम्बन्धी मतिज्ञान है, परन्तु इससे पहले अन्तरग प्रकाशका जो दौड़कर चक्षु इन्द्रियके प्रति आना है वह चक्षुदर्शन है। शेष इन्द्रियाँ अचक्षु है अर्थात् चक्षु नही हैं, इसलिए उन सबसे पूर्व होनेवाले दर्शनको अचक्षुदर्शन कहना युक्त ही है।

इसी प्रकार अवधिज्ञानसे पूर्व होनेवाला दर्शन अवधिदर्शन कहलाता है। श्रुत तथा मन पर्ययसे पूर्व दर्शनकी आवश्यकता

नही, क्योंकि वे मनोमतिपूर्वक होते है। केवलज्ञानके साथ रहनेवाला दर्शन केवलदर्शन है।

यहाँ इतना ध्यामे रखना चाहिए कि पहलेवाले ज्ञान क्योंकि क्रमवर्ती है, आगे-पीछे अटक-अटककर अपने-अपने विषयोको जानते हैं, इसलिए वहाँ दर्शन तथा ज्ञान भी आगे-पीछे होते हैं। पहले दर्शन होता है और पीछे तत्सम्बन्धी ज्ञान। यह ठीक है कि आगे-पीछे होनेका यह अन्तराल एक क्षणका भी सहस्रांश है, परन्तु फिर भी होते आगे-पीछे ही हैं। परन्तु केवलज्ञान तथा केवलदर्शनमे आगे-पीछे होनेका यह क्रम नही है। इसका कारण यह है कि केवलज्ञान चेतनका पूर्ण प्रकाश है, जिसमे सारा बाह्य जगत् तथा अन्तरग जगत् एक साथ प्रतिभासित हो जाता है। वास्तवमे केवलज्ञान और केवलदर्शन दो पृथक् वस्तुएँ नही हैं, बल्कि चेतनका वह अखण्ड प्रकाश ही है, जिसका कि परिचय चेतनका स्वरूप दर्शाते हुए पहले दिया जा चुका है। परन्तु फिर भी उस प्रकाशको बतानेमे कुछ वचन-भेद आता है। जब हमे यह कहना इष्ट होता है कि वह तो अन्तरगका प्रकाश मात्र है तब उसीका नाम केवलदर्शन कहा जाता है, और जब हमे यह कहना इष्ट होता है कि उस प्रकाशमे समस्त विश्व प्रतिभासित हो रहा है, तब वही प्रकाश केवलज्ञान कहा जाता है। क्योंकि पहले ही दर्शनकी व्याख्या करते हुए यह बताया गया है कि बाह्य पदार्थोंका जानना ज्ञान है और अन्तरगमे प्रकाश देखना दर्शन है। इस प्रकार चक्षु, अचक्षु तथा अवधिदर्शन तो लौकिक हैं और केवलदर्शन अलौकिक है।

१९ सुखके भेद

सुख गुणके अन्तर्गत सुख तथा दु ख दोनो आ जाते हैं। सुखके भी दो भेद हैं—लौकिक तथा अलौकिक। लौकिक सुख दो

प्रकारका है—एक बाह्य, दूसरा अन्तरंग। इन्द्रिय तथा शरीर सम्बन्धी भोगसे जो सुख होता है वह बाह्य लौकिक सुख है और इच्छाकी पूर्त्ति हो जानेपर या इष्ट पदार्थकी प्राप्ति हो जानेपर मनमे जो हर्ष होता है वह अन्तरग लौकिक सुख है। यह सर्व ही ससारी जीवोको होता है। अलौकिक सुख एक ही प्रकारका है और वह शरीर तथा अन्त:करणसे मुक्त अलौकिक जनोको अर्थात् मुक्त जीवोको होता है। 'ज्ञान-प्रकाशका पूर्ण-रूपेण खिल जाना तथा समस्त विश्वका एक साथ प्रत्यक्ष हो जाना रूप जो ज्ञान है वही ज्ञान उनका सुख है। इसे सुख नही बल्कि आनन्द कहते हैं। समस्त चिन्ताओका, चिन्ताओंके कारणोका तथा समस्त इच्छाओ-का नाश हो गया है और शान्त व शीतल प्रकाशमान स्वभावमे स्थिति हो गयी है। पहले चारो ओर इच्छाओका अन्धकार था, जीवनपर भार प्रतीत होता था, अब सर्वत्र प्रकाश है, जीवन अत्यन्त हलका प्रतीत होता है। यही वह आनन्द है।

लौकिक दु.ख भी दो प्रकारका है—बाह्य तथा अन्तरग। बाह्य दु ख तो शरीरकी पीड़ाओ तथा रागादिके रूपमे प्रकट होता है, और अन्दरका दु ख चिन्ता, व्याकुलता, इच्छा, तृष्णा आदिके रूपमे होता है। अलौकिक दु ख होता ही नही, क्योकि स्वय प्रकाशित तथा अन्त करणसे मुक्त जीवोंको इच्छा तथा चिन्ता आदि करनेका कोई कारण नही रहता।

२० वीर्य

वीर्य भी दो प्रकारका है—एक बाह्य और दूसरा अन्तरंग। बाह्य वीर्य शरीरकी शक्तिका नाम है जिसे दुनिया जानती है। अन्तरग वीर्य ज्ञानकी हीन अधिक शक्ति रूप, तथा उसकी स्थिरता रूप होता है। वह दो प्रकारका है—एक लौकिक और दूसरा

अलौकिक। बाह्य वीर्य अलौकिक नही होता क्योकि अलौकिक अर्थात् मुक्त जनोंके शरीर नही होता। मतिज्ञान तथा दर्शन आदिके द्वारा जानने-देखनेकी जीवकी हीन या अधिक शक्तिका नाम लौकिक अन्तरग वीर्य है, क्योकि ये मति आदि ज्ञान लौकिक या ससारी जीवोको ही होते हैं। केवलज्ञान तथा केवलदर्शनकी अतुल शक्तिका नाम अलौकिक वीर्य है, जो अनन्त है, क्योकि इससे अनन्तका युगपत् ज्ञान होता है।

ज्ञानमे हीनता या अधिकताके साथ साथ स्थिरता तथा अस्थिरता भी होती है। ज्ञान किसी भी विषयको अधिक देर तक नही जान पाता। एक विषयको छोड़कर दूसरे विषयकी तरफ दौडता है, और फिर उसको भी छोड़कर तीसरे विषयकी तरफ दौडता है। ज्ञानकी यह चचलता मनकी चचलताके कारण है। मनकी चचलतासे सब परिचित हैं। जिस व्यक्तिका मन अधिक चचल है उसके मनकी शक्ति तो अधिक है पर उस जीवका वीर्य कम है। जीवका स्वभाव जानने-देखनेका है अर्थात् जाननेमे टिके रहना या ज्ञानमे स्थिरता धारना है, परन्तु मन उसे वहाँ टिकने नही देता। अत जिस जीवके ज्ञानमे अधिक स्थिरता है उसका अन्तरग वीर्य अधिक है, अपेक्षा उस व्यक्तिके जिसके ज्ञानमे कि स्थिरता अल्प है। ज्ञानमे स्थिरता न होना ही मनकी चचलता है। इसीलिए जीवके वीर्यकी कमी और मनकी शक्तिकी प्रबलताका एक ही अर्थ है। इस प्रकार सभी लौकिक संसारी जीव हीन वीर्य-वाले परन्तु बलवान् मनवाले हैं।

अलौकिक वीर्य अलौकिक अर्थात् मुक्त जीवोके ही होता है। उनकी शक्ति अनन्त है, क्योकि उन्हें ज्ञानकी पूर्ण स्थिरता प्राप्त हो गयी है। उनका ज्ञान न हमारी भाँति आगे-पीछे होता है और न कांपता है। ज्ञानको कँपानेका कारण मन था, उससे वे मुक्त हो

चुके हैं। अतः अनन्त काल पर्यन्त वे अनन्त प्रकाश द्वारा अनन्त विश्वको निष्कम्प रूपसे बराबर जानते तथा देखते रहते है, और उस प्रकाश द्वारा प्राप्त आनन्दका निष्कम्प रीतिसे उपभोग करते रहते हैं। धन्य है उनका अतुल वीर्य। यही सच्चा वीर्य है।

२१. अनुभव-श्रद्धा तथा रुचिमे भेद

अनुभव, श्रद्धा तथा रुचि भी दो प्रकारकी होती है—लौकिक तथा अलौकिक। लौकिक अनुभवादि दो-दो प्रकारके हैं—बाह्य तथा अन्तरग। 'यह शरीर ही मैं हूँ, इसका सुख-दु ख ही मेरा सुख-दु.ख है, धन-कुटुम्बादि बाह्य पदार्थ ही मेरे लिए इष्ट हैं', इत्यादि प्रकारके अनुभवादि तो बाह्य हैं, और विषयभोग सम्बन्धी यह जो सुख तथा हर्ष अन्दरमे हो रहा है 'यह मेरा सुख है' तथा अतरग मे यह जो शोक हो रहा है 'यही मेरा दुख है', ये अन्तरग अनुभवादि हैं। ये दोनो ही अनुभवादि लौकिक हैं।

अलौकिक अनुभवादि एक ही प्रकार है। ज्ञाता-द्रष्टा बनकर स्थित रहना, मनकी चचलताको रोककर ज्ञानका निष्कम्प रहना, ज्ञानका ज्ञान प्रकाशमे ही मग्न रहना रूप जो आनन्द है वही मेरा है, इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नही चाहिए', इस प्रकारका अनुभव, श्रद्धा तथा रुचि अलौकिक हैं। ये उन ज्ञानी-जनोको ही होते है जो कि ससारकी पोलको पहचानकर आत्म-कल्याणके प्रति अग्रसर हुए हैं। इनके अतिरिक्त अलौकिक जो मुक्त जीव है उन्हे तो होते ही हैं।

२२. कषाय

ज्ञान आदि पूर्वोक्त गुणोके अतिरिक्त जीवोमे क्रोधादि मलिन भाव भी सर्व-प्रत्यक्ष हैं। ऐसे मलिन भावोको कषाय कहते हैं।

कषाय अनेक प्रकारकी हैं। परन्तु मुख्यतः चार मानी गयी हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ।

इष्ट पदार्थकी प्राप्तिमे किसीके द्वारा कोई बाधा उपस्थित हो जानेपर क्रोध आता है। इष्ट पदार्थकी प्राप्ति हो जानेपर अभिमान होता है। इष्ट पदार्थकी प्राप्तिके लिए छल होता है, वही माया है। इष्ट पदार्थकी प्राप्ति हो जानेपर उसे टिकाये रखनेका भाव लोभ है।

इन चारोमे-से क्रोध, माया व लोभके तो कोई भेद नही हैं, पर मानके अनेको भेद हैं, जिनमे आठ मद प्रसिद्ध हैं—कुलमद, जाति-मद, रूपमद, बलमद, धनमद, ऐश्वर्यमद, ज्ञानमद तथा तपमद। मेरा पिता बहुत बडा आदमी है ऐसा भाव रखना कुलमद है। इसी प्रकार मेरी माता बडे घरकी है ऐसा जातिमद है। इसी प्रकार 'मै बहुत सुन्दर हूँ, मै बहुत बलवान् हूँ, मैं बहुत धनवान् हूँ, मेरी आज्ञा सब मानते हैं इसलिए मैं बहुत ऐश्वर्यवान् हूँ, मै बहुत ज्ञानवान् हूँ तथा मैं बहुत तपस्वी हूँ. कौन है जो मेरी बराबरी कर सकता है', ये सब भाव मद या अभिमान कहलाते हैं।

चारो कषाय उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं। क्रोध सबसे स्थूल है क्योकि वह बाहरमे शरीरकी भृकुटी आदिपर-से देखा जा सकता है। मन उसकी अपेक्षा सूक्ष्म है क्योकि यह शरीरकी आकृतिपर-से नही देखा जा सकता, परन्तु उसकी बातोपर से अवश्य जाना जा सकता है। मानी व्यक्ति सदा बहुत बढ-बढकर बातें किया करता है, सदा अपनी प्रशसा तथा दूसरेकी निन्दा किया करता है, अपनी महत्ता तथा दूसरेकी तुच्छता दर्शाया करता है। माया उसकी अपेक्षा भी सूक्ष्म है क्योकि यह बातोपर-से भी जानी नही जा सकती। परन्तु उसके द्वारा कुछ काम किये जानेके पश्चात्,

जब उसकी पोल खुलती है तब जान ली जाती है। लोभ सबसे सूक्ष्म है, क्योकि यह तो किसी भी प्रकार जाना नही जा सकता। इसका निवास अत्यन्त गुप्त है। यह अन्दर ही अन्दर बैठा व्यक्तिको स्वार्थकी ओर अग्रसर करता रहता है, और अन्याय व अनीतिका उपदेश देता रहता है, परन्तु स्वयं प्रकट नही होता।

लोभकी माता एषणा या इच्छा है। यह भी कई प्रकारकी है जैसे—पुत्रेषणा, वित्तेषणा, ज्ञानेषणा, लोकेषणा, इत्यादि। पुत्रकी इच्छा पुत्रेषणा है। धनकी इच्छा वित्तेषणा है। ज्ञान प्राप्तिकी इच्छा ज्ञानेषणा है। ख्याति लाभ पूजाकी इच्छा लोकेषणा है। सब कषायोकी जननी यह इच्छा है। इसीसे लोभ उत्पन्न होता है, लोभसे स्वार्थ होता है, स्वार्थकी पूर्तिके अर्थ अन्याय-अनथ किये जाते हैं। अन्याय करनेके लिए माया व छल-कपटका आश्रय लेना पडता है। एषणाओ की किंचित् पूर्ति हो जानेपर 'मैने यह काम कर लिया, देखो कितना चतुर हूँ' ऐसा अहकार होता है। अहंकारसे अभिमान जन्म पाता है। यदि कदाचित् इच्छाकी पूर्तिमे बाधा पडती है या अभिमानपर किसीके द्वारा आघात होता है, तो बस क्रोध आ धमकता है। इसलिए सर्व कषायोकी मूल इच्छा है। यह अत्यन्त सूक्ष्म होती है और किसी प्रकार भी जानी नही जा सकती। दूसरा व्यक्ति तो क्या स्वय वह व्यक्ति भी नही जान सकता, जिसमे कि वह वास करती है। इच्छाकी सूक्ष्म व गुप्त अवस्थाका नाम वासना है, और इसकी तीव्रताका नाम तृष्णा या अभिलाषा है।

इन सब कषायोके अतिरिक्त कुछ और भी हैं—जिनमे-से नौ प्रधान हैं–रति, अरति, हास्य, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद नपुसकवेद। भोगोमे आसक्ति का होना रति है। अनिष्टताओसे दूर हटनेका भाव अरति है। हँसी-ठट्टेका भाव हास्य है। इष्ट पदार्थके

नष्ट हो जानेपर सोचना-विचारना शोक है। अनिष्टताओसे डरनेका नाम भय है। ग्लानि व घृणाका भाव जुगुप्सा है। पुरुषके साथ रमण करनेका जो भाव होता है वह स्त्रीवेद है। स्त्रीके साथ रमण करनेका जो भाव होता है वह पुरुषवेद है। और स्त्री तथा पुरुष दोनोके साथ रमण करनेका जो भाव होता है वह नपुसकवेद है जो नपुसकोमे ही पाया जाता है।

इस प्रकार कषायका कुटुम्ब बहुत बडा है। इच्छा, वासना, तृष्णा, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, स्वार्थ, अहकार, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद आदि सब कषाय हैं। सबका नाम गिनाना असम्भव है। इसलिए सब कषायोके प्रतिनिधिके रूपमे राग तथा द्वेष ये दो ही यत्र-तत्र प्रयोग करनेमे आते हैं। इन दोनोका पेट बहुत बड़ा है। इन दोनोमे जगत्की सर्व कषायें समावेश पा जाती हैं। इष्ट अर्थात् अच्छे लगनेवाले विषयके प्रति प्राप्तिका भाव राग कहलाता है और अनिष्ट पदार्थसे बचकर रहना या उसे दूर हटानेका भाव द्वेष कहलाता है। इष्टकी प्राप्तिका तथा अनिष्टसे बचनेका, इन दोनो भावो के अतिरिक्त तीसरा भाव जीवमे पाया नही जाता। सभी चाहते हैं कि जो हमे अच्छा लगे वह तो हमे मिले और जो बुरा लगे वह न मिले। बस यही राग-द्वेष है।

सभी कषाय राग और द्वेषमे गर्भित की जा सकती हैं। जैसे—इच्छा, वासना, तृष्णा, काम, मान, लोभ, स्वार्थ, अहकार, रति, हास्य और तीनो वेद राग हैं क्योकि इन सभीमे इष्ट पदार्थकी प्राप्तिका भाव बना रहता है। इसी प्रकार क्रोध, माया, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा आदि द्वेष हैं, क्योकि इनमे अनिष्ट पदार्थके प्रति हटावका भाव बना रहता है। अत: राग व द्वेष ये दोनो शब्द व्यापक अर्थमे प्रयोग किये जाते हैं। क्योकि ये सब भाव जीवको मलिन

कर देते है, उसे अन्धकार-पूर्ण कर देते हैं, उसके मधुर जीवनको कड़आ या कसायला कर देते हैं इसलिए कषाय कहलाते हैं।

२३. आवरण तथा विकार

जीवके गुणो तथा भावोमे दो बातें प्रमुखत. देखी जाती है—आवरण तथा विकार। 'आवरण' पर्देका नाम है और 'विकार' विगडनेका नाम है। सूर्यके आगे आनेवाले बादल सूर्यको ढक देते है, इसलिए उन्हे सूर्यका आवरण कहा जाता है। बासी होनेपर जब भोजन सड़ जाता है, बिगड़ जाता है, तब वह लाभकी बजाय हानिकारक हो जाता है। इस प्रकार विपरीत हो जानेका नाम विकार है। आवरणसे केवल पदार्थ ढका जाता है पर बिगडता नही। आवरण से उस पदार्थका प्रकाश केवल धुँधला हो जाता है, परन्तु विकारसे वह पदार्थ विपरीत हो जाता है। विकारको विक्षेप भी कहते हैं।

जीवमे बताये गये लौकिक ज्ञान, लौकिक दर्शन और लौकिक वीर्य ये तीनो आवरण सहित अर्थात् ढके हुए है, इसलिए ये धुँधले हो गये हैं अर्थात् इनकी शक्ति कम हो गयी है। परन्तु लौकिक सुख, दु.ख, अनुभव, श्रद्धा, रुचि तथा कषाय ये सब विकारी भाव हैं, क्योकि चेतनका जो वास्तविक ज्ञान-प्रकाशी आनन्दमय स्वभाव है, जिसके कारण कि उसकी सुन्दरता है, निर्मलता व स्वच्छता है, उस स्वभावको इन भावोने विपरीत कर दिया है। उसके स्वतन्त्र शान्त आनन्दको विषयोंके आधीन करके परतन्त्र, अशान्त तथा व्याकुल बना दिया है। ज्ञानादिके आवरणोने केवल उसकी ज्ञान-शक्तिको कम कर दिया पर उसे विपरीत नही किया अर्थात् ज्ञानको अज्ञान नही बनाया। परन्तु कषायो आदिके रूपवाले विकारोंने उसके स्वभावको विपरीत कर दिया है। आवरण तथा विकार इन

दो शब्दोका अगले प्रकरणोमे काफी प्रयोग किया गया है, इसलिए उन शब्दोके भावार्थको यहाँ स्पष्ट कर दिया है।

२४. सावरण तथा निरावरण ज्ञान

पाँचो ज्ञानोमे-से पहले चार सावरण हैं और अन्तिम ज्ञान निरावरण है। आवरण नाम पर्देका है। जो ज्ञान किसी आन्तरिक पर्देसे ढका रहता है उसे सावरण कहते हैं और जिस ज्ञानपर कोई पर्दा नही रहता अर्थात् जो पूरा खुला रहता है उसे निरावरण कहते हैं। बादलोसे ढका हुआ सूर्यका प्रकाश सावरण है और बादलो रहित सूर्यका प्रकाश निरावरण है। इसी प्रकार अन्त करण-से आवृत या ढका हुआ ज्ञान सावरण है और अन्त करण-मुक्त ज्ञान निरावरण है।

जिस प्रकार बादलोंसे ढके सूर्यका प्रकाश कम होता है और बादलोंसे मुक्त सूर्यका प्रकाश पूर्ण होता है, उसी प्रकार अन्तःकरणसे ढके सावरण ज्ञानका प्रकाश कम होता है और अन्त करणसे मुक्त निरावरण ज्ञानका प्रकाश पूर्ण होता है। जिस प्रकार सफेद तथा काले बादलोकी गहनतामे तारतम्य या हीनाधिकता हनेके कारण उनसे ढका हुआ सूर्यका प्रकाश भी अधिक व हीन होता है, उसी प्रकार अन्तःकरणकी मलिनतामे तारतम्य होनेके कारण उससे ढका हुआ ज्ञान भी हीन व अधिक होता है। यदि अन्त करण कम मलिन है अर्थात् उज्ज्वल है तो ज्ञान अधिक प्रकट होता है, और यदि वह अधिक मलिन है अर्थात् कषायोसे दबा हुआ है तो ज्ञान भी हीन प्रकट होता है।

जिस प्रकार बादलोसे ढके हुए भी सूर्यका अपना प्रकाश तो पूर्ण का पूर्ण ही रहता है, केवल बादलोमे-से छनकर जो प्रकाश पृथिवी-पर पड़ता है वही कम या अधिक होता है, इसी प्रकार अन्तःकरणसे

ढके हुए भी चेतनका अपना प्रकाश तो पूर्ण ही रहता है, केवल अन्त करणपर प्रतिबिम्बित जो ज्ञान प्रकट होता है वही कम या अधिक होता है। जिस प्रकार सुर्यका प्रकाश तो एक रूप उज्ज्वल ही है, परन्तु उसके आगे लाल, नीले, पीले आदि पर्दे या शीशे आ जानेपर वह लाल, नीला, पीला आदि हो जाता है, उसी प्रकार चेतनका ज्ञान तो एकरूप उज्ज्वल ही है परन्तु उसके आगे भिन्न-भिन्न प्रकारके अन्त'करण आ जानेसे वह चित्र-विचित्र हो जाता है।

इस प्रकार सावरण ज्ञानमे हीनाधिकता है, परन्तु निवारण ज्ञान पूर्ण होता है। सावरण ज्ञान चित्र-विचित्र होता है, परन्तु निरावरण ज्ञान एकरूप होता है। इसी प्रकार दर्शनके सम्बन्धमे भी जानना। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन.पर्यय ज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन ये सब सावरण हैं और केवलज्ञान तथा केवलदर्शन ये दोनो निरावरण हैं। इसी प्रकार लौकिक वीर्यं सावरण है और अलौकिक वीर्यं निरावरण है।

२५. स्वभाव तथा विभाव

जबतक पदार्थ बिगडता नही तबतक वह स्वभावमे स्थित कहा जाता है, परन्तु बिगड़ जानेपर वह विकारी कहलाता है। स्वभाव-स्थित रहनेके कारण ताजे भोजनका स्वाद तथा स्पर्श ठीक रहता है, गन्ध भी ठीक रहती है और रूप भी ठीक रहता है, परन्तु विकारी हो जानेपर सडे हुए बासी भोजनका स्पर्श भी बिगड जाता है, स्वाद तथा गन्ध भी बिगड जाते हैं और रूप भी बिगड़ जाता है। इसी प्रकार स्वभाव-स्थित रहनेके कारण अन्त.करणसे मुक्त जीवका स्पर्श अर्थात् आनन्द भी स्वतन्त्र, उज्ज्वल तथा निराकुल रहता है, स्वाद अर्थात् अनुभव भी उज्ज्वल, पवित्र व निराकुल

होता है। उसकी गध अर्थात् श्रद्धा भी स्वतन्त्र, उज्ज्वल, निराकुल, तथा नि.स्वार्थ होती है और उसका रूप-रग अर्थात् रुचि भी उज्ज्वल, पवित्र तथा नि स्वार्थ होती है। अन्त करण युक्त चेतनका सुख विकार सहित तथा शरीर इन्द्रिय व विषयोके आधीन हो जानेके कारण परतन्त्र है इच्छाओ तथा कषायोसे मलिन हो जानेके कारण मलिन व अपवित्र है, तथा मनकी चचलताके कारण व्याकुल है। इस प्रकार विकारी होनेके कारण जीवका स्पर्श अर्थात् सुख परतन्त्र, मलिन तथा व्याकुल होता है। इसी प्रकार उसका स्वाद अर्थात् अनुभव भी परतन्त्र, मलिन, अपवित्र तथा व्याकुल है, उसकी गन्ध अर्थात् श्रद्धा भी परतन्त्र, मलिन, अपवित्र व स्वार्थपूर्ण है और उसका रूप-रग अर्थात् रुचि भी परतन्त्र, मलिन, अपवित्र तथा स्वार्थपूर्ण है।

इस प्रकार स्वभाव तथा विकारका अर्थ सर्वत्र समझना। ज्ञान, दर्शन व वीर्य ये गुण ढक तो जाते है पर विकारी नही होते। दूसरी ओर सुख, अनुभव, श्रद्धा व रुचि ये गुण ढकते नही पर विकारी हो जाते हैं। चेतनके जो अलौकिक केवलज्ञान, केवलदर्शन हैं वे निरावरण है और शेष जो मति आदि चार ज्ञान तथा चक्षु आदि दर्शन हैं वे सावरण है। चेतनके जो अलौकिक आनन्द, अनुभव, श्रद्धा व रुचि हैं वे स्वाभाविक हैं और अन्त करण युक्त जीवोंके लौकिक सुख, दु ख, अनुभव, श्रद्धा तथा रुचि हैं वे विकारी है। समस्त ही कषाय-भाव विकारी है। आवरण तथा विकारमे स्थिति ही अधर्म है और स्वभावमे स्थितिका नाम धर्म है।

२६. चेतनके गुण

इस प्रकार स्वभाव व विकारको जान लेनेके पश्चात् अब जीवके पूर्वोक्त सर्व गुणोका विश्लेषण करके, यह भी जान लेना

चाहिए कि उन गुणोमे-से कितना भाग चेतनका है और कितना अन्त करणका, क्योकि चेतन व अन्त करण इन दोनोके संयोगका नाम ही जीव है ऐसा पहले बताया जाता रहा है। इस प्रयोजनकी सिद्धिके अर्थ पहले बताया हुआ चेतनका स्वरूप-भान करना होगा। चेतनका स्वरूप है ज्ञान-प्रकाश मात्र। बस इस सामान्य ज्ञानके अतिरिक्त जो कुछ भी है वह सब अन्त.करणका समझें। भले ही आप इन दोनोको साक्षात् रूपसे पृथक्-पृथक् करके न देख सकें परन्तु बुद्धि द्वारा उनका विश्लेषण किया जाना सम्भव है।

ज्ञान-प्रकाश मात्रका अर्थ है ज्ञान ही ज्ञान। अर्थात् जानना भी ज्ञानरूप, दर्शन भी ज्ञानरूप, सुख भी ज्ञानरूप, वीर्य तथा अनुभव भी ज्ञानरूप, रुचि भी ज्ञान रूप और भी जो कुछ हो वह सब ज्ञानरूप। अत. कहा जा सकता है कि ज्ञान द्वारा ज्ञानमे ज्ञानको जानना चेतनका ज्ञान है, ज्ञान द्वारा ज्ञानमे ही प्रकाशका साक्षात् करना चेतनका दर्शन है, ज्ञान द्वारा ज्ञानमे ही स्थित रहना चेतनका निराकुल आनन्द है, ज्ञानकी स्थिति निष्कम्प बने रहना उसमे चञ्चलता न होना यही चेतनका वीर्य है, ज्ञानके उस आनन्दका अनुभव करते रहना चेतनका अनुभव है और यह 'ज्ञान ही मैं हूँ तथा यही मुझे इष्ट है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नही' ऐसी श्रद्धा व रुचि ही चेतनकी श्रद्धान व रुचि है। यदि ऐसा है अर्थात् सब कुछ ज्ञान ही है तो कथन मात्रको ही उसे ज्ञान-दर्शन सुख आदि नामोसे कहा गया प्रतीत होता है। उसे तो अखण्ड ज्ञानप्रकाश मात्र ही कहना चाहिए, या उसे केवल ज्ञान कहना चाहिए।

अन्त करणसे छूटकर जब जीव मुक्त हो जाता है तब उसमे यह ज्ञानप्रकाश उपर्युक्त प्रकार ही साक्षात् रूपसे खिल उठता है, अर्थात् उस समय पूर्वोक्त भेद प्रभेदोमें-से उसमे केवलज्ञानरूप

अनन्त अलौकिक ज्ञान, केवलदर्शनरूप अनन्त निर्विकल्प विषयातीत दर्शन, ज्ञानानन्द रूप अनन्त अलौकिक सुख, ज्ञानानन्दमे स्थिरतारूप अनन्त अलौकिक वीर्य तथा उस सम्बन्धी अनन्त अलौकिक अनुभव, श्रद्धा व रुचि प्रकट हो जाते हैं। इन्हे ही भगवान्के अनन्तचतुष्टय कहते हैं। ये कहने मात्रको ही पृथक्-पृथक् हैं, वास्तवमे सब ज्ञान मात्र हैं। इसीलिए इनके साथ 'केवल' विशेषण दिया गया है। ऐसा केवलज्ञान ही चेतनका गुण है। इसी बातको यो कह लीजिए कि निरावरण तथा स्वाभाविक सर्व गुण चेतनके है और शेष सब अन्त करणके हैं।

उस ज्ञानका स्वरूप ही क्योकि विश्वरूप है, इसलिए भले ही उसको विश्वका ज्ञाता या सर्वज्ञ कह लिया जाये, परन्तु वास्तवमें तो वह ज्ञानका ही ज्ञायक है, क्योकि जिस प्रकार हम बाहरमे इस विश्वको देखते हैं उस प्रकार भगवान् बाहरमे नही देखते। वे सदा सर्वत्र जो कुछ भी जानते तथा देखते हैं भीतर ही जानते-देखते हैं। जिस प्रकार दर्पणको देखनेवाला दर्पणको ही देखता है, उन पदार्थोंको नही जिनके प्रतिबिम्ब कि उसमे पड़ रहे हैं, उसी प्रकार ज्ञानको देखनेवाला ज्ञानको ही देखता है, उन पदार्थोंको नही जिनके प्रतिबिम्ब कि उसमे पड़ रहे हैं। इसलिए उसे ज्ञानमात्र या केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि कहा गया है। केवल विशेषण लगाकर ज्ञान, दर्शन आदि कहो या ज्ञानमात्र कहो एक ही अर्थ है। वह मात्र प्रकाशरूप है, जो सर्वव्यापक है, नित्य उद्योतरूप है, जिस प्रकार कि सूर्यका प्रकाश। यही व्यापक नित्य ज्ञानप्रकाश चेतनका गुण है।

२७. अन्त करणके गुण

मिली हुई वस्तुमे-से एक वस्तु तथा उसके गुण निकाल लेनेपर जो शेष रह जाये वह सब उस दूसरी वस्तुका जानना चाहिए।

अतः पूर्वमे कहे गये जीवके गुण तथा उनके सर्व भेद-प्रभेदोमे-से उपर्युक्त अलौकिक गुण निकाल लेनेपर शेष बचे सर्व लौकिक गुण अन्त.करणके रह जाते हैं, यह बात स्पष्ट है। अत. ज्ञानके भेदोमे-से अलौकिक ज्ञान अर्थात् केवलज्ञानको छोडकर शेष जो मति, श्रुत, अवधि व मन पर्यय ज्ञान हैं वे अन्त-करणके धर्म हैं चेतन के नही। इसी प्रकार दर्शनमे-से अलौकिक दर्शन अर्थात् केवलदर्शन को छोड़कर शेष जो चक्षु, अचक्षु और अवधिदर्शन हैं वे अन्तः करणके धर्म हैं। अलौकिक ज्ञानानन्द रूप सुखको छोडकर लौकिक जो विषयजनित बाह्य तथा भीतरका अर्थात् शारीरिक व मानसिक जितना भी सुख-दु ख है वह अन्त करणका धर्म है चेतनका नही। इसी प्रकार अन्तरगमे निष्कम्प अलौकिक स्थिति रूप वीर्यको छोड-कर बाहरके विषयोमे मनका दौडते रहना रूप तथा उसमे उलझ-उलझकर उनका स्वाद लेने रूप जितनी भी लौकिक मानसिक चचल वीर्य-वृत्ति है, वह अन्त.करणका धर्म है, चेतनका नही। अन्तरंग अलौकिक अनुभवको छोडकर बाहरके विषयो या पदार्थों का ही स्वाद लेना अर्थात् उनसे उत्पन्न सुख-दु खका ही रस लेना लौकिक अनुभव, श्रद्धा व रुचि हैं जो अन्त.करणके धर्म हैं चेतनके नही। समस्त कषाय अन्तःकरणके धर्म हैं।

इसी बातको यो कह लीजिए कि जितने भी निरावरण तथा स्वाभाविक गुण हैं, वे चेतनके है और सावरण तथा विकारी जितने भी गुण है वे अन्त करणके हैं।

अन्त.करणका भी यदि विश्लेषण करके इसे बुद्धि, चित्, अहं-कार व मन इस प्रकार चार भागोमे विभक्त कर दिया जाये तो उनके पृथक्-पृथक् धर्मोंका भी निर्णय किया जा सकता है। मति, श्रुत, अवधि, मन.पर्यय ये चारो सावरण ज्ञान तथा चक्षु, अचक्षु,

अवधि ये तीनो सावरण दर्शन बुद्धिके धर्म हैं। क्योंकि पदार्थ सम्बन्धी निश्चय करना बुद्धिका लक्षण है, और सभी ज्ञान तथा दर्शन भी क्रम पूर्वक अपने-अपने योग्य एक-एक पदार्थका आगे-पीछे निश्चय करानेमे समर्थ हैं। तर्क उत्पन्न हो जानेके पश्चात् उसके सम्बन्धमे जो विचारणा चला करती है वह श्रुतज्ञान है और वह चित्तका धर्म है।

शरीर तथा बाह्य पदार्थोमे, धन-कुटुम्ब आदिमे 'ये मेरे हैं तथा मुझे इष्ट हैं, इन सम्बन्धी ही सुख-दुःख मेरा है,' ऐसी जो प्राणी-मात्रकी सामान्य लौकिक श्रद्धा है, और 'यही सुख किसी प्रकार मुझे प्राप्त करना चाहिए तथा इस दु.खसे बचना चाहिए' ऐसी जो प्राणी मात्रकी सामान्य लौकिक रुचि है, वे अहकारके धर्म हैं, क्योकि चेतनसे पृथक् अन्य पदार्थोंकी श्रद्धा व रुचि अहंकारका लक्षण है। यहाँ इतना जानना कि चेतनको ही अपना जानना तथा मानना और उसे हित रूपसे अंगीकार करना अहंकारका नही बुद्धिका काम है, विवेकका काम है।

पदार्थके सम्बन्धमे निर्णय करनेके लिए जो विचारणा होती है वह यद्यपि बुद्धिका धर्म है परन्तु इसके सम्बन्धमें उठनेवाले अनेको तर्क-वितर्क मनके धर्म हैं, क्योकि सकल्प-विकल्प मनका लक्षण है। इन तर्क-वितर्कोंके अतिरिक्त जितने कुछ भी सकल्प-विकल्पके तथा ग्रहण त्यागके राग-द्वेषात्मक द्वन्द्व और कषाय भाव हैं वे सब मनके धर्म हैं क्योकि यदि मन कही अन्यत्र लगा हो तो दु ख-सुखका अनुभव नही होता। इस प्रकार जीवके सर्व लौकिक धर्मोंमे-से अर्थात् ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अनुभव, श्रद्धा, रुचि तथा कषायोमें-से-ज्ञान-दर्शन बुद्धिके, चिन्तनात्मक श्रुतज्ञान चित्तका, सुख-वीर्य-अनुभव तथा कषाय मनके और श्रद्धा व रुचि अहकारके धर्म हैं।

२८. शरीर के धर्म

पहले बताया जा चुका है कि सर्व ही ससारी जीव शरीर, अन्त करण व चेतन इन तीन पदार्थोके मिश्रणसे बने हुए हैं। अतः इन तीनोके पृथक्-पृथक् धर्म या गुण जानने आवश्यक हैं। इनमे-से तीनोके मिश्रणरूप जीव-सामान्यके धर्म बता दिये गये। फिर उनके पृथक्-पृथक् धर्मोंमे भी चेतन तथा अन्त.करणके धर्म बता दिये गये। अब शरीरके धर्म भी जानने चाहिए।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है शरीर वास्तवमे जीव नही है बल्कि अजीव है, क्योकि मृत्यु हो जानेपर इसमे-से चेतन तथा अन्त करण ये दो निकल जाते हैं, तब जो कुछ शेष रह जाता है वही तीसरा पदार्थ यह शरीर है। यह स्पष्ट है कि वह अजीव है, क्योकि उस समय वह जान-देख नही सकता। अजीव भी कई प्रकारके होते हैं जैसा कि आगे अजीवका परिचय देते हुए बताया जायेगा। उनमे-से भी वह मूर्तिक अजीव है अर्थात् इन्द्रियोसे दिखाई देनेवाला है। यह कोई अखण्ड पदार्थ नही है क्योकि काटा तथा जोडा जा सकता है, इसलिए अनेक अखण्डित सूक्ष्म अजीव पदार्थों या परमाणुओंसे मिलकर बना है। अत शरीरमे परमाणु ही मूल तत्त्व है, शरीर स्वय कोई मूलभूत पदार्थ नही है।

मूर्तिक तथा जुडने-तुडनेकी शक्तिवाले अजीव पदार्थका नाम पुद्गल है। उसमे स्पर्श, रस, गन्ध तथा वर्ण ये चार मुख्य गुण हैं। छूकर जो जाना जाये वह चिकना-रूखा आदि स्पर्श गुण है, चखकर जो जाना जाये वह खट्टा मीठा आदि रस गुण है, सूँघकर जो जाना जाये ऐसे सुगन्ध व दुर्गन्ध गन्ध गुण है, और देखकर जो जाना जाये ऐसा काला-पीला रग वर्ण नामका गुण है। यही शरीरके धर्म हैं। इनके अतिरिक्त इसका और कुछ महत्त्व नही है।

२९ जीव-विज्ञान जाननेका प्रयोजन

चेतन, अन्त.करण तथा शरीर इनके पृथक्-पृथक् धर्म जान लेनेपर हमे विवेक करना चाहिए कि इन तीनोमे-से हम या हमारे कामका कौन-सा पदार्थ है । उसीका हमारे लिए महत्त्व तथा मूल्य होना चाहिए, अन्यका नही । वह पदार्थ क्योकि चेतन है अत' वही हम हैं और उसीका हमारी दृष्टिमे मूल्य होना चाहिए । अन्त करण यद्यपि चेतन सरीखा दीखता है, परन्तु वास्तवमे वह चेतन नही है, इसलिए उसका तथा उसके धर्मोंका भी हमारी दृष्टिमे कोई महत्त्व नही होना चाहिए । शरीर तो है ही जड अत इसका कोई मूल्य नही है ।

अन्त.करण तथा शरीरके बन्धन चेतनके लिए क्लेशकारी हैं, अत जिस प्रकार भी चेतनकी प्राप्ति हो अर्थात् वह इन दोनों के बन्धनसे छूटे, वही कुछ करना मेरा परम तथा सर्वप्रमुख कर्तव्य है, वही धर्म है । यही अध्यात्मका उपदेश है ।

फिर भी जबतक गृहस्थ जीवनमे रहता हूँ तबतक शरीर तथा शरीरके भोगोका मूल्य गिनकर धन आदिमे अत्यन्त गृद्ध तथा स्वार्थी बनना मेरे लिए योग्य नही है । अपनेको तथा अन्य सभी प्राणियोके चेतनको जिससे शान्ति मिले वही कार्य करना मानवीय तथा सामाजिक कर्तव्य है, वही धर्म है । यही अध्यात्मका उपदेश है ।

✲

अजीव पदार्थ सामान्य

१ पदार्थ विज्ञानकी पुनरावृत्ति, २ अजीव-सामान्य, ३ अजीव-विशेष, ४ मूर्तिक तथा अमूर्तिक, ५ षट् द्रव्योमे पाँच अजीव ।

१. पदार्थ विज्ञान की पुनरावृत्ति

अहा हा ! कितना विचित्र है पदार्थोंका यह अनन्त सग्रह रूप विश्व । कितनी महान् है यह एक भूलभुलैया, बडे-बड़े बुद्धिशाली भी उलझकर रह जाते हैं इसमे, और जीवन-भर छटपटाते रहकर भी इससे निकलने नही पाते । पदार्थोंके इस घोल-मेलमे ही छिपा हुआ है जीवनका सार, जीवनका रहस्य, जो केवल विश्लेषण करके जाना जा सकता है और जानकर यदि कोई चाहे तो उसे पृथक् भी कर सकता है । बिलकुल उस प्रकार जिस प्रकार कि एक वैज्ञानिक किसी पदार्थको विश्लेषण (analysis) पूर्वक पढकर तथा जानकर उसमे-से अनेको प्रयोजनभूत तत्त्व निकाल लेता है, और भौतिक जगत्को हर्ष प्रदान करता है, उसी प्रकार जीवनको तथा विश्वको विश्लेषणपूर्वक पढकर तथा जानकर इसमे से अनेको प्रयोजनभूत तत्त्व निकाले जा सकते हैं और आध्यात्मिक जगत्को हर्ष प्रदान किया जा सकता है। जीवनको तथा विश्वको विश्लेषणपूर्वक पढानेके लिए ही यह पदार्थ-विज्ञान सम्बन्धी विषय चल रहा है ।

'विश्व' पदार्थोका समूह है। पदार्थ जीव तथा अजीव दो जातियोके हैं । जो जान-देख सके उसे जीव कहते हैं । वह वृक्ष तथा

सूक्ष्म कीटाणुसे लेकर मनुष्य पर्यन्त स्थावर-त्रस आदि अनेको रूपोमे पाया जाता है, जिसका परिचय पहले अध्यायमे दिया जा चुका है। वहाँ बताया गया है कि लोकमे दीखनेवाले ये सर्व ही छोटे-बडे जीव तीन तत्त्वोंसे मिलकर बने हैं—चेतन, अन्त करण तथा शरीर। इन तीनोमे-से चेतन तथा अन्त करणका विस्तृत विवेचन जीव पदार्थके अन्तर्गत किया जा चुका है, क्योकि चेतन स्वय जीव है और अन्त.करण चिदाभास अर्थात् जीव सरीखा लगनेवाला। तीसरा जो शरीर है वह अजीव पदार्थ है अर्थात् स्वय जानने-देखनेकी शक्ति नही रखता, इसलिए उसको तथा विश्वकी अनेक भौतिक विचित्रताओको जाननेके लिए अजीव पदार्थको जानना भी अत्यन्त आवश्यक है। अब वही कहते हैं।

२. अजीव-सामान्य

जीव पदार्थसे उलटा अजीव पदार्थ है। जीव जानने-देखनेवाला है और अजीव जानने-देखनेकी शक्तिसे रहित है। जानने-देखनेकी शक्ति न होनेका अर्थ यह नही कि उसमे अन्य कोई शक्ति या गुण-धर्म आदि पाये नही जाते, क्योकि गुणो तथा धर्मोसे रहित कोई वस्तु हो ही नही सकती। गुणोका समूह ही द्रव्य या पदार्थ होता है। ठीक है कि अजीव पदार्थमे जीव पदार्थ जैसे गुण तथा धर्म नही हैं परन्तु उसमें उसके अपने किसी विशेष जाति के गुण तथा धर्म तो है ही।

३. अजीव-विशेष

अजीव पदार्थ इस लोकमे अनेक विचित्रताओंसे भरा हुआ है। वास्तवमे यहा इस विश्वमे जो कुछ भी दृष्ट है वह सभी उस अजीव पदार्थका पसारा है। जो कुछ भाग-दौड यहाँ दिखाई दे रही है वह सब इस अजीव पदार्थकी है। विश्व प्रमुखत अजीव

पदार्थका रग-मच है जिसपर यह अनेको स्वाग धर-धरकर आता है और ज्ञाता-द्रष्टा चेतनको चक्करमे डाल देता है, इतना कि वह यह भी भूल जाता है कि वास्तवमे वह स्वय कौन है। उसे यह स्वाग स्वय अपना ही दिखाई देने लगता है और इस प्रकार उलझ जाता है, इसमे। इसलिए अजीव पदार्थकी विचित्रताएँ तथा विशेषताएँ अर्थात् भेद-प्रभेद जानने योग्य हैं।

४. मूर्तिक तथा अमूर्तिक

अजीव पदार्थ एक ही प्रकारका हो सो बात नही। इसमे भी कुछ दृष्ट है और कुछ अदृष्ट। अर्थात् अजीव पदार्थ दो प्रकारका है—मूर्तिक तथा अमूर्तिक। यह बात पहले भी बतायी जा चुकी है कि जो पदार्थ इन्द्रियो द्वारा छूकर, चखकर, सूँघकर या सुनकर जाना जाये उसे मूर्तिक या रूपी कहते हैं और जो इन्द्रियो द्वारा न जाना जाये उसे अमूर्तिक कहते हैं। जीव पदार्थ केवल अमूर्तिक है, परन्तु अजीव पदार्थ मूर्तिक तथा अमूर्तिक दोनो प्रकार का है।

लोकमे दिखाई देनेवाले जितने भी दृष्ट पदार्थ है वे सब मूर्तिक है क्योकि इन्द्रियो द्वारा देखे तथा जाने जा रहे हैं, और इस प्रकार पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, ईंट, पत्थर, महल और चमडे हड्डीवाला यह शरीर सब मूर्तिक अजीव पदार्थ हैं। आकाश तथा इसी प्रकारके अन्य कुछ पदार्थ अमूर्तिक अजीव पदार्थ है।

५ षट् द्रव्योमे पांच अजीव

पहले भी पदार्थ-सामान्य अधिकारमे बताया जा चुका है कि जीव तथा अजीव पदार्थोंके मूल छह भेद है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल। ये ही जैन आगम मे षट् द्रव्योंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमे-से जीव पदार्थ तो जीव है ही शेष पांच अजीव

हैं। इस प्रकार अजीव पदार्थ पांच हैं—पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल। इन पांचोमे पुद्‌गल मूर्तिक है और शेप चार अमूर्तिक। यही कारण है कि पुद्‌गल पदार्थ तथा इसके कार्य तो हमे दिखाई देते हैं परन्तु शेष चार हमे दिखाई नही देते। दिखाई न देनेका यह अर्थ नही कि वे हैं ही नही। भले न देखे जा सकें पर वे हैं, और उन्हें तर्क द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। अब आगे इन्हीं का क्रमपूर्वक वर्णन किया जाता है।

८

पुद्गल-पदार्थ

१ पुद्गल-सामान्य, २ पुद्गल पदार्थकी विचित्रता, ३ सब जीवके शरीर हैं, ४ पच भूत तथा उनके कार्य, ५ मूल पदार्थ परमाणु ६ परमाणुका लक्षण, ७ परमाणु मूर्तिक है, ८ परमाणु-वादका समन्वय, ९ परमाणु बन्ध-क्रम, १० स्थूल तथा सूक्ष्म पुद्गल, ११ पुद्गलके गुण तथा धर्म, १२ पुद्गलके धर्मोका समन्वय, १३ आजके विज्ञानके चमत्कार, १४ पुद्गलका स्वभाव-चतुष्टय, १५ पुद्गल द्रव्य को जाननेका प्रयोजन ।

१ पुद्गल-सामान्य

'पुद्गल' यह आपके लिए नया-सा शब्द है। जैनागममे ही इस शब्द का प्रयोग किया गया है। यद्यपि सभी दर्शनकार तथा भौतिक विज्ञान इस पदार्थको स्वीकार करते हैं, परन्तु इसके लिए पुद्गल नाम देना जैन-दर्शनकारोकी सूक्ष्म बुद्धिका परिचायक है। अन्य दर्शनकार इसे भूत तथा अगरेजीमे इसे मैटर (Matter) कहते हैं। ये सभी दृष्ट मूर्तिक पदार्थ भूत या मैटर कहलाते हैं। इसी कारण इस दृष्ट जगत्को भौतिक जगत् तथा इस सम्बन्धी विज्ञानको भौतिक विज्ञान या Material Science कहते हैं। इसी मूर्तिक दृष्ट पदार्थको जैनागममे 'पुद्गल' कहा गया है।

पुद्गल शब्द अपना एक विशेष अर्थ रखता है। पुद्+गल इन दो शब्दोके मिलनेसे पुद्गल शब्द बनता है। पुद्का अर्थ है पूर्ण होना

या मिलना और गलका अर्थ है गलना या विछुडना । जो पूर्ण भी हो सकता हो और गल भी सकता हो अर्थात् जो मिल भी सकता हो और बिछुड भी सकता हो उसे पुद्गल कहते हैं। क्योकि सर्व ही दृष्ट पदार्थ मिल-मिलकर बिछुडते है और विछुड-विछुडकर मिलते हैं, जुड-जुडकर टूटते हैं और टूट-टूटकर जुडते हैं, इसलिए इन्हे पुद्गल नाम देना उपयुक्त है। पुद्गल शब्दके वाच्य ये दृष्ट पदार्थ क्योकि मूर्तिक है, इन्द्रियोसे जाने देखे जाते है इसलिए अजीव पदार्थके भेदोमे यह पदार्थ मूर्तिक है।

२. पुद्गल पदार्थकी विचित्रता

यह पुद्गल नामका पदार्थ बड़ा विचित्र है। जगत्के इस विचित्र तथा विस्तृत नाटकमे यही मुख्य पात्र है। सर्वत्र इसका ही फैलाव दिखाई देता है। क्या पृथ्वीमे, क्या जलमे, क्या वायुमें, क्या अग्निमे, क्या पातालमे, क्या आकाशमे क्या कीडेसे लेकर मनुष्य पर्यन्त जीवोके शरीरोमे, क्या खाने पीनेके पदार्थोमे, क्या महल-मकानमे, क्या धनमे, क्या वस्त्रमे, सर्वत्र यही नृत्य कर रहा है।

३. सब जीवके शरीर हैं

वैसे तो पुद्गल पदार्थ इतने प्रकारके दिखाइ देते हैं कि उनके नाम भी नही गिनाये जा सकते परन्तु सग्रह करके यदि देखा जाये तो ये सर्व ही पदार्थ छह कायोमे समा जाते हैं। जीवके भेद-प्रभेदोका कथन करते हुए षट्कायका परिचय दिया जा चुका है। पृथ्वी जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति ये पाँच स्थावर और एक त्रस ये छह कायके जीव कहलाते हैं। वहाँ भी इस बातको भली भाँति स्पष्ट कर दिया गया है और यहाँ भी पुन. बताया जाता है कि यद्यपि जीव और शरीरके साथ-साथ रहने के कारण इन सब भेदोको षट्कायके जीव कहा जाता है, परन्तु वास्तवमे ये सब भेद जीवके

नही बल्कि उसके काय या शरीरके है। छह जातिके शरीर लोकमे प्रसिद्ध हैं।

ये छह जातिके शरीर जब तक जीवित रहते हैं तब तक जीवके शरीर या जीव कहलाते हैं और मर जानेके पश्चात् ये ही अजीव पुद्गल पदार्थ बन जाते हैं। ज़रा दृष्टि घुमाकर देखिए कि जो कुछ भी यहाँ दृष्ट है उसमे कौन-सी वस्तु ऐसी है जो जोवका शरीर न हो या कभी पहले जीवका शरीर न रह चुका हो। ईंट, पत्थर, रत्न, हीरा, सोना, चाँदी, लोहा, ताम्बा आदि पदार्थ, तथा इनसे बने हुए महल, मकान, बर्तन आदि सब वास्तवमे पृथिवीकाय हैं, अथवा पृथिवीकायिक जीवोंके जीवित या मृत शरीर हैं, क्योकि ये पृथ्वीमे उत्पन्न होनेवाले हैं और वहाँ जीवके शरीर रूपमे रहकर वृद्धि पानेवाले खनिज पदार्थ हैं। इसी प्रकार जल, वर्षा, ओस आदि तथा उससे बननेवाले वाष्प बर्फ आदि पदार्थ जलकायके जीव हैं अथवा जलकायिक जीवके जीवित या मृत शरीर हैं। अग्नि, अंगार, चिनगारी, साक्षात् अग्निकायकेजीव हैं अथवा अग्निकायिक जीवके जीवित शरीर हैं। और वायु, गैस आदि वायुकायके जीव हैं अथवा वायुकायिक जीवके जीवित या मृत शरीर है। घास, फूल, फल तथा उनसे बने हुए स्वादिष्ट पदार्थ, लकडी तथा उससे बने हुए कुरसी मेज़ आदि, वस्त्र आदि सब वनस्पति कायके जीव या वनस्पति कायिक जीवोंके मृत शरीर हैं। फर्नीचर वनस्पतिकी लकडीका रूपान्तर है, वस्त्र रूईका रूपान्तर है। इसी प्रकार चलने-फिरनेवाले कीडोसे लेकर मनुष्यो पर्यन्तके ये सब छोटे बडे शरीर तथा उनमेसे निकले हुए चमडा, हड्डी, हाथीदांत व सीगके खिलौने, मासाहारियोका भोज्य, रेशमी तथा ऊनी कपडे, दूध आदि सब त्रसकायके जीव अथवा उनके जीवित या मृत शरीर हैं। इनके अतिरिक्त और रह क्या गया?

सब दृष्ट पदार्थ जीवके छह कायोमे समा जाते हैं।

४ पचभूत तथा उनके कार्य

सर्व जीव-कायोको सग्रह करके देखें तो पचभूतोमे समा जाते हैं। पृथ्वी, जल अग्नि, वायु एव आकाश ये पांच भूत कहलाते हैं। इनमे से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, ये चार ही मूल पुद्गल है। आकाशकी गणना वैदिक दर्शनकार भूतोमे करते हैं परन्तु जैनदर्शनकार इसे पृथक् प्रकारका पदार्थ मानते हैं। इसका कथन वादमे किया जायेगा। षट्कायिक जीवके समस्त पूर्वोक्त शरीरोका निर्माण इन पांच भूतो के सघात अर्थात् मेलसे होता है। यद्यपि षट्कायके जीवोमे इन चारके अतिरिक्त वनस्पति तथा त्रसको भी गिनाया गया है। परन्तु वह केवल शरीरोकी विभिन्न जातियोका दिग्दर्शन करानेके लिए है, जब कि यहाँ प्रकरण कुछ और है। यहाँ उन मूल पुद्गल पदार्थोंका विचार करना इष्ट है जिनमे से कि वे छह काय बने है, जो कि जीवित या मृत रूपमे इस विचित्र विश्वके प्राण हैं।

उन छहमे-पृथिवी, जल, अग्नि तथा वायु ये चारो तो मूलभूत काय हैं और शेष दो जो वनस्पति तथा त्रस काय हैं वे इनके ही संघात या मेलसे बने हैं। अतः यहा हमे पहले यह समझना चाहिए कि पृथिवी आदि इन चार मूल पदार्थोंका व्यापक रूप क्या है। मिट्टी, पत्थर, सोना, चाँदी, लोहा, ताम्बा, कोयला आदि खनिज पदार्थोंको पृथिवी कहते हैं। जल, अग्नि व वायु सर्व-परिचित हैं। अन्य प्रकारसे कहे तो पृथिवी ठोस होती है, जल तरल अर्थात् बहनेवाला होता है, अग्नि तेजवाली होती है और वायु स्वतन्त्र सचार करनेवाली। आकाश खाली स्थानरूप होता है। इन पाँचके मेलसे ही वनस्पति तथा त्रस शरीर कैसे बनते हैं सो बताता हूँ।

पाँचो पदार्थोंका मेल होनेपर उस मिले हुए पदार्थमे जिस पदार्थका अंश अधिक रहता है वह उसके अनुरूप ही ठोस या तरल दिखाई देता है। पाँचोके संघातमे यदि पृथिवीका भाग अधिक हो तो वह मिश्रित पदार्थ ठोस बनेगा, यदि उसमे जलका आधिक्य हो तो तरल बनेगा, उसमे अग्निका भाग अधिक हो तो वह तेजवान तथा उष्ण बनेगा, यदि उसमे वायुका भाग अधिक हो तो वह हल्का तथा सचार करनेवाला बनेगा और यदि आकाशका भाग अधिक हो तो खाली स्थानरूप दिखाई देगा। जैसे कि बरसातके दिनो मे यद्यपि वायुमे जल भी काफी होता है तदपि वह वायु ही कहलाती है, और गरमीके दिनोमे वायुमे अग्निका अश होते हुए भी वह वायु ही कहलाती है। क्योकि जल तथा अग्निकी बजाय वायु ही प्रमुख रूपसे प्रतीतिमे आती है अर्थात् उसका अंश अधिक है।

अब देखिए वनस्पतिको। वृक्ष कैसे वनता है? बीजको पृथ्वीमे डालकर जल से उसे सिंचन करते हैं। उसमे-से अंकुर फूटता है, जो वायु मण्डलसे वायुको और सूर्यके प्रकाशमे-से अग्निको प्राप्त करके वृद्धि पाता है और फल-फूलोंसे लद जाता है। अत. कह सकते है कि वृक्ष चारो ही भूतोके सम्मेलसे उत्पन्न हुआ है। वृक्ष वन जानेके पश्चात् भी उसके प्रत्येक अगमे ये चारो पदार्थ हीन या अधिक रूपमे पाये जाते हैं। इसकी टहनियोमे पृथिवी अधिक है और जल कम, क्योकि यह अधिक ठोस हैं। पत्तोमे उसकी अपेक्षा जल अधिक है और फूलोमे उसकी अपेक्षा भी जल अधिक है। टहनियोमे जो नमी देखी जाती है, और पत्ते फल-फूल आदिको जो निचोड़कर रस निकला जाता है वह तरल होनेके कारण, वास्तवमे जलका भाग है। और शेष जो ईंधन या फोक होता है वह ठोस होनेके कारण पृथिवीका भाग है। पृथ्वी तथा जलके

अतिरिक्त फल-फूलोमे जो चमक होती है वह अग्निका भाग है। इन सभी चीजोमे ‑छ न कुछ पोलाहट भी होती ही है। लड़कीमे मसाम होते हैं, उसमे कील ठोकी जा सकती है, और इन सभी पदार्थोंको दवाकर सिकोड़ा जा सकता है। जिसपरसे सिद्ध होता है कि इनमे पोलाहट अवश्य है। क्योकि यदि तनिक भी खाली स्थान न होता, वे विलकुल ठोस होते तो न उन्हे छेदा-भेदा जा सकता था और न सिकोडा जा सकता था। वह पोलाहट ही आकाश है। इस पोलाहटमे सर्वत्र वायु व्याप्त है। इस प्रकार वायु तथा आकाश भी इन सभी पदार्थोंमे पाये जाते है। अतः कहा जा सकता है कि वृक्ष या कोई भी वनस्पति इन पाँचोके सयोगका फल है। फिर भी वृक्ष या इसके सारे अगोपाग क्योकि ठोस हैं अतः इनमे पृथ्वी तत्वका आधिक्य है और इसीलिए वृक्ष या इससे प्राप्त लकड़ी रुई कपडा आदिको पृथ्वीके अन्तर्गत गिनाया गया है।

दूसरे प्रकारसे भी देखा जा सकता है। यदि लकड़ी या वृक्षमे आग लगा दें, तो क्या होता है? उसमे-से जल भाप वनकर उड़ जाता है, और वायुमण्डलमे पडे जलके साथ जा मिलता है। वायु गैस या धुआं वनकर निकल जाती है और वायुमें जा मिलती है। अग्नि स्वयं अग्निरूप वनकर तेज तथा उष्ण हो जाती है और वायुमण्डलकी उष्णतामे मिल जाती है। जलकर उसकी जो भस्म वनती है वह पृथ्वीमे मिल जाती है और जो कुछ भी उसमे पोलाहट थी वह आकाशमें मिल जाती है। इस प्रकार वृक्षमे रहनेवाले पाँचो ही भूतोके अश अपने-अपने मूल पदार्थमे मिल जाते हैं, और वृक्षका नाश हुआ कहा जाता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि पाँचोंके सम्मेलसे वृक्ष उत्पन्न हुआ था, पाँचोके सम्मेलसे अवस्थित था और पाँचो तत्त्वों के विखर जानेपर वह नष्ट हो गया।

इसी प्रकार त्रस जीवोके शरीरमे भी ये पाँचो तत्त्व देखे जा सकते हैं। शरीरमे रहनेवाले हड्डी, नसा मास, विष्टा आदि ठोस पदार्थोंमे पृथ्वीका और रक्त-मूत्र आदिमे जलका अधिक्य है। आमाशयमे जठराग्नि है और उदर तथा नसाजाल आदिमे रहने वाली पोलाहट आकाश तत्त्व है। इस प्रकार समस्त त्रस जीवोका शरीर इन पाँच भूतोके सघात रूपसे ही स्थित है। मृत्युके पश्चात् भी गल-सडकर या जलकर ये पाँचो तत्त्व पूर्वोक्त प्रकार अपने-अपने मूल पदार्थोंमे समा जाते हैं।

अत कह सकते हैं कि जातियोके रूपमे भले ही छह प्रकारका कहो परन्तु मूल भूत पदार्थोंकी अपेक्षा ये पाँच महाभूत ही है, जिनमे-से पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु तो पुद्गल पदार्थ हैं और आकाश एक स्वतन्त्र पदार्थ है। इस दृष्टिसे देखने पर पौद्गलिक या भौतिक जगत्मे, जिसमे कि इतनी चित्रता-विचित्रता दिखाई देती है तथा जिसमे कि मानवकी बुद्धि उलझी पडी है, वास्तवमे पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु इन चार भूतोके अतिरिक्त कुछ भी नही है। इन चार तथा पाँचवें आकाशके ही हीनाधिक अंशोका विभिन्न प्रकारसे सघात या सयोग हो जाने पर ये चित्र-विचित्र पदार्थ बन जाते हैं और कुछ काल पर्यन्त टिककर पुन. उन्हीमे लीन हो जाते हैं। इस प्रकार ये पचभूत ही सर्वत्र नृत्य कर रहे हैं, इनके अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। बाहरमे दीखनेवाले ये अनन्तो रूप इन्ही मूल पदार्थोंकी पर्यायें या अवस्थाएँ-विशेष हैं, जिनकी अपनी कोई स्वतत्र सत्ता नही। अतः यह सब दृष्ट पदार्थ सत् नही कहे जा सकते।

५ मूल पदार्थ परमाणु

इतना ही नही, अभी और सूक्ष्म दृष्टिसे देखिए। वास्तवमे पृथ्वी आदि चारो मूल पुद्गल भी अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नही

रखते। इनकी अपनी सत्ताका आधार भी वास्तवमे अलैक्ट्रोन और प्रोटोन ये दो पदार्थ हैं, जो इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हे इन्द्रियोंसे किसी भी प्रकार जाना देखा नही जा सकता है। इनके हीनाधिक सम्मिश्रणसे ही ये चारो भूत तथा समस्त पदार्थ बनते हैं। सोने तथा लोहेमे कोई तात्त्विक अन्तर नही है। सोना भी अलैक्ट्रोन तथा प्रोटोनसे बना है और लोहा भी। सोने व लोहेमे भले जाति-भेद दिखाई दे, पर इनके मूल आधार जो अलैक्ट्रोन और प्रोटोन है उनमे कोई जातिभेद नही है। किसी पदार्थमे अलैक्ट्रोनोकी मात्रा अधिक है और किसीमे प्रोटोनोकी। मिश्रणकी इस विभिन्नताके कारण ही पदार्थोंकी विभिन्नता है। इन दोनोसे ही पृथिवी तत्त्व बनता है और इन्हीसे जल, अग्नि तथा वायु बनती है। अत. पृथिवी आदि चार मूलभूत पुद्गल पदार्थ भी अलैक्ट्रोन तथा प्रोट्रोन इन दोनोमे समा जाते है।

अभी और सूक्ष्मतासे देखिए। वास्तवमे अलैक्ट्रोन तथा प्रोटोन भी कोई स्वतन्त्र पदार्थ नही हैं। इन दोनोके पीछे भी परमाणु नामका कोई मूल तत्त्न बैठा हुआ है, जिसे अभी तक विज्ञान नही खोज सका। परन्तु उनकी खोज जारी है, वह भी निकल आयेगा। मेरा तात्पर्य उस परमाणुसे नही है जो कि आजका विज्ञान बताता है। वह तो स्थूल है। स्वय अनेक परमाणुओका पिण्ड है। अतः जोडा तथा तोडा जा सकता है। यन्त्र विशेषोकी सहायतासे देखा तथा जाना जा सकता है। परन्तु जैन दर्शनका परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म है। वह स्वतन्त्र है। किसीसे मिलकर नही बना है। अखण्ड है, तोडा नही जा सकता, किसी यन्त्रकी सहायतासे जाना तथा देखा भी नही जा सकता। फिर भी वह है अवश्य क्योकि उसके ये सर्व चित्र विचित्र कार्य देखनेमे आते हैं।

इस चित्र-विचित्र सृष्टिमे केवल परमाणु ही नृत्य कर रहा है।

वही मूल पदार्थ है, ये सब उसीके विकार हैं, उसीके अनेको रूप हैं। ये सर्व रूप विनाशीक है, अनित्य हैं, असत् हैं, क्योकि उत्पन्न हो-होकर विलीन हो जाते है। परन्तु जिस मूल तत्त्वमे-से ये उदित होते हैं, जिसमे सब लीन होते है, वह परमाणु ही है। जिस प्रकार सभी जीवोमे मूल पदार्थ चेतन है, उसी प्रकार सभी पुद्गलोमे मूल पदार्थ परमाणु है। चेतनसे सब जोवोकी सृष्टि हुई है इसलिए 'चेतन' जैव-सृष्टिका ईश्वर है और परमाणुसे सर्व चित्र-विचित्र पुद्गलोकी सृष्टि हुई है इसलिए परमाणु पौद्गलिक या भौतिक सृष्टिका ईश्वर है।

६. परमाणुका लक्षण

किसी भी पुद्गल पदार्थको बराबर कल्पना द्वारा तोडते चले जायें, अन्तमे एक ऐसा अविभागी पदार्थ शेष रह जाये जिसे आगे तोड़ा न जा सके। जिसकी न लम्बाई हो, न चौडाई और न मोटाई। जिसका आदि हो न मध्य, न अन्त। वह सूक्ष्म पदार्थ परमाणु कहलाता है। इसका अर्थ यह मत समझना कि परमाणु निराकर है। लोकका कोई भी पदार्थ निराकार नही, यह पहले ही बताया जा चुका है। क्योकि आकारवान् पदार्थ ही गुणोको धारण कर सकता है। गुणोको धारण करनेसे ही वह गुणोका समूह होता है, और गुणोका समूह होने से ही वह द्रव्य नाम पाता है। यहाँ यह बात न भूलना कि गुण तथा द्रव्य ऐसा जो भेद किया जाता है वह केवल काल्पनिक है, केवल समझाने तथा बतानेके लिए किया गया है। वास्तवमे गुण तथा द्रव्य पृथक् पृथक् पदार्थ नही बल्कि एकमेक है। गुण-समूह होनेके कारण परमाणुका भी कोई आकार है। उसका आकार क्या ? यह प्रश्न होनेपर इतना ही कहा जा सकता है कि वह परमाणु ही स्वय अपना आकार है। वह स्वयं जितना

कुछ भी है वही उसकी लम्बाई है, वही उसकी चौड़ाई है, वही उसकी मोटाई है, वही उसका आदि है, वही उसका मध्य है, वही उसका अन्त है। जैसे कि एक बारीक बिन्दु आदि-मध्य-अन्तरहित, तथा लम्बाइ-चौडाई-मोटाईरहित होते हुए भी उसका कुछ न कुछ अपना आकार अवश्य होता है, उसी प्रकार परमाणुका समझना। हमारा यह परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म है। वैज्ञानिक लोग जिसे परमाणु कहते हैं वह वास्तवमें अनेक परमाणुओका पिण्ड है, स्थूल है, क्योकि अभी भी वह तोडा जा सकता है। परमाणु तो वहाँ प्राप्त होता है जहाँ उसमे जाति-भेद न रह जाये। वैज्ञानिकोंके परमाणु तो अभी अनेको इलैक्ट्रोन हैं जो बराबर एक प्रोटोनके चारो तरफ घूम रहे हैं। इस सारे समूहका नाम वे एक परमाणु कहते हैं।

७. परमाणु मूर्तिक है

परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होता है। यद्यपि पुद्गल पदार्थ इन्द्रियोसे जाने जाते हैं, परन्तु परमाणु इन्द्रियोंसे देखा-जाना नही जा सकता। किसी यन्त्र द्वारा भी देखा नही जा सकता। इसपर प्रश्न होता है कि फिर तो उसे भी अमूर्तिक कहना चाहिए, सो ऐसा नही है। परमाणु मूर्तिक है। इन्द्रियोसे दिखाई देना यह मूर्तिकका वास्तविक लक्षण नही है, यह तो स्थूल रूपसे समझानेके लिए कहा जाता है। हमारी इन्द्रियाँ तो स्थूल हैं, इनमे सामर्थ्य ही कितनी है। सूक्ष्म जन्तु विज्ञानमे यह बात बता दी गयी है कि जीवोके शरीर स्थूलसे सूक्ष्म, सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम होते हैं। स्थूल आँखोंसे दिखाई देते है, सूक्ष्म बहुत गौर करके देखनेपर दिखाई देते है, सूक्ष्मतर माइक्रोस्कोपकी सहायतासे दिखाई देते हैं और सूक्ष्मतम माइक्रोस्कोपकी सहायतासे भी दिखाई नही देते, जबतक कि वे वृद्धिको प्राप्त न हो जायें। ऐसा सूक्ष्मतम शरीर या काय ही जब इन्द्रियो द्वारा देखा नही जा सकता तो परमाणु कैसे देखा जा सकता है,

क्योकि सूक्ष्मसे सूक्ष्म भी काय अनन्त परमाणुओके मिलनेसे बनती है।

परमाणु है इस बातकी सिद्धि जिस प्रकार उसके कार्योंपर-से होती है अर्थात् उन पदार्थोपर-से होती है जो कि उसके सघात या मिलापसे उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार उसके मूर्तिकपनेकी सिद्धि भी इन पदार्थोंपर-से ही होती है। मूर्तिक पदार्थोके मिलनेसे ही मूर्तिक पदार्थ बन सकता है, अमूर्तिकसे नही। मूर्तिक पदार्थ उसे कहते हैं जिसमे इन्द्रियोसे ग्रहण किये जाने योग्य गुण पाये जायें अर्थात् जिसमे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण पाया जायें। क्योकि सर्व दृष्ट पदार्थोंमे ये गुण पाये जाते हैं, इसलिए उनके मूल उस परमाणुमे भी वे अवश्य होने चाहिए। यदि परमाणुमे वे गुण न होते तो उनके मिलने पर भी वे गुण प्रकट न हो पाते। जैसे लोहेमे पीलापन नही है, अत- बहुत सारे लोहेको गलाकर एक पिण्ड बना देने पर भी उसमे पीला-पन नही आ सकता। इस प्रकार तर्कसे परमाणुके मूर्तिकपनेकी सिद्धि की जा सकती है, अन्य कोई उपाय नही है।

८ परमाणुवादका समन्वय

इस परमाणुवादके सम्बन्धमे अनेको मत हैं। वैशेषिक दर्शनकार पृथिवी आदि चारो भूतोके लिए पथक्-पृथक् जातियोंके परमाणुओकी कल्पना करते है। उस-उस जातिके परमाणुओसे वही तत्त्व बनता है। प्रत्येकमे गुण भी पृथक्-पृथक् मानते हैं। यथा— पार्थिव परमाणुमे केवल गन्ध गुण, जलीय परमाणुमे केवल रस गुण, अग्निके परमाणुमे केवल रूप गुण और वायुके परमाणुमे केवल स्पर्श गुण है। दृष्ट शुद्ध-पृथिवी आदिमे जो चारो गुण प्रतीत होते हैं, उसका कारण यह है कि वे वास्तवमे शुद्ध पृथिवी आदि नही हैं। प्रत्येकमे चारो जातिके परमाणु है। उनके तारतम्यके कारण ह्रा

उन पदार्थोंमे भेद दिखाई देता है। जैसे कि पृथिवीमे पृथिवी जातीय परमाणु अधिक हैं और वायुमे वायु जातीय।

परन्तु उनकी यह कल्पना ठीक नही है। उसका निराकरण आजका विज्ञान कर रहा है। आज यह बात सर्व-समस्त है कि पृथिवी हो या जल या अग्नि या वायु, सभी अलैक्ट्रोन तथा प्रोटोनके सघातेसे बने है, और वे अलैक्ट्रोन तथा प्रोटोन एक ही जातिके होते हैं भिन्न-भिन्न जातिके नही। इसलिए आज यह सम्भव है कि लोहेको फाडकर उसमे-से अलैक्ट्रोन तथा प्रोटोनको अलग-अलग कर लिया जाये और उन्हे किसी अन्य विवेष ढगसे मिला देनेपर सोना बना दिया जाये। इसी प्रकार पृथिवीको फाडकर उसके अलैक्ट्रोन तथा प्रोटोनसे जल वायु अथवा अग्नि बनाये जा सकते हैं। इसी प्रकार अग्निवाले अलैक्ट्रोनो व प्रोटोनोसे पृथिवी, जल तथा वायु बनाये जा सकते हैं। उनके लिए पृथक्-पृथक् जातिके परमाणु माननेकी आवश्यकता नही रह जाती। अत आजका विज्ञान केवल दो ही परमाणु मानता है।

जैन दर्शनकी दृष्टि इस विषयमे कुछ भिन्न प्रकारकी है। उसकी दृष्टिमे सर्व परमाणु एक ही जातिके होते हैं। अलैक्ट्रोन तथा प्रोटोन भी उन्हीकी उपज हैं। पहले बताया जा चुका है प्रत्येक सत् पदार्थ परिणमनशील है। परमाणु भी सत् होनेके कारण परिणमनशील है। भले ही सूक्ष्म होनेके कारण इसका परिणमन प्रतीतिमे न आवे पर प्रतिक्षण होता तो रहता ही है, क्योंकि स्वभाव कभी रुक नही सकता। इस परिवर्तनके कारण इनके चारो ही पूर्वोक्त गुणोमे कुछ न कुछ तारतम्य स्वत' आता ही रहता है। अन्य गुणोके तारतम्यसे तो विशेष प्रयोजन नही है, हां स्पर्श गुणका तारतम्य विशेष वर्णनीय है।

स्पर्श गुणमे मुख्यतः चार बातें पायी जाती हैं—ठण्डा, गरम, स्निग्ध (चिकना) तथा रूक्ष (रूखा)। यहाँ भी ठण्डे-गरमसे हमारा प्रयोजन नही है, स्निग्ध तथा रूक्षसे प्रयोजन है क्योकि परमाणुओका पारस्परिक संश्लेष या बन्ध भी इसी गुण-विशेषके कारण होता है। अपने स्वाभाविक परिवर्तनके प्रवाहमे परमाणु कदाचित् अधिक स्निग्ध हो जाता है और कदाचित् अधिक रूक्ष हो जाता है। आकाशके प्रत्येक प्रदेशपर अनन्तानन्त परमाणु भरे पड़े हैं, प्रत्येकमे ही नित्य इस प्रकारका परिवर्तन हो रहा है, जिसे कोई भी रोक नही सकता। इसलिए इन अनन्तानन्त परमाणुओमे स्वतः कोई परमाणु स्निग्ध और कोई रूक्ष हो जाता है। स्निग्धता तथा रूक्षताकी डिग्रियोमे भी तारतम्य होना स्वाभाविक है। कोई अधिक स्निग्ध, कोई कम स्निग्ध, कोई अधिक रूक्ष और कोई कम रूक्ष होता है।

यहाँ चिकने तथा रूखेपनसे घी आदिकी जातिका चिकना-रूखापन न समझना। वैज्ञानिक प्रोटोनकी आकर्षण शक्ति ही यहाँ स्निग्धता है तथा अलेक्ट्रोनकी विकर्षण शक्ति ही रूक्षता नामसे अभिहित की गयी है। आकर्षण शक्तियुक्त परमाणुको ही विज्ञानने प्रोटोन कहा है, क्योकि वह अनेक अलैक्ट्रानोको अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है। इसी प्रकार विकर्षण शक्तियुक्त परमाणुको ही अलैक्ट्रोन कहा जाता है, क्योकि वह दूसरे निकटवर्ती अलैक्ट्रानोको पीछे धकेल देता है। इस प्रकार परिवर्तन-क्रममे एक ही प्रकारका परमाणु स्निग्ध तथा रूक्ष हो जानेके कारण प्रोटोन तथा अलैक्ट्रोन रूपसे दो प्रकारका हो जाता है। इसी प्रकारके परमाणु विज्ञानको सम्मत हैं। परन्तु इनके पीछे बैठा हुआ, इनका भी जो मूल कारण है, वह परमाणु तो वास्तवमे एक ही है।

६. परमाणुका बन्ध-क्रम

स्निग्ध तथा रूक्ष हो जानेपर जब परमाणुमे ये दो भेद उत्पन्न हो जाते हैं, तो स्वभावसे ही स्निग्ध परमाणु अर्थात् प्रोटोन निकटवर्ती रूक्ष परमाणु अर्थात् अलैक्ट्रोनको अपनी ओर खैंचता है, क्योकि वह एक दूसरेको आकर्षित करने तथा एक दूसरेके प्रति आकर्षित होनेकी शक्तिसे युक्त है। एक-एक प्रोटोनके प्रति अनेको अलैक्ट्रोन खिंचकर उसके साथ चिपक जाते हैं जैसे कि एक चुम्बकके प्रति अनेको लोहाणु खिचकर उसके साथ चिपक जाते हैं। परन्तु परमाणुओका यह चिपकाव लोहाणुओवत् नही होता, एक विशेष प्रकारका होता है। चुम्बक तथा लोहाणुओमे तो दोनो वस्तुएँ पृथक्-पृथक् रहती हैं, परन्तु परमाणु परस्परमे मिलकर दूध जल वत् एकमेक हो जाते हैं। इस प्रकारके मिश्रणको रासायनिक मिश्रण कहते हैं।

जिस प्रकार ताँबे तथा सोनेको गलाकर एक कर दिया जानेपर वह एक ही पदार्थ बन जाता है, इसी प्रकार इन द्विजातीय परमाणुओके मिल जानेपर वह एक ही पदार्थ बन जाता है। यही परमाणुओंके परस्परमे बँधनेका रहस्य है। अनेको परमाणु परस्परमें बँध जानेपर जो पदार्थ बनते हैं उन्हे स्कन्ध कहते हैं। लोकमें जो कुछ भी दृष्ट हैं वे सब इस प्रकार स्कन्ध ही हैं, जो अनेक परमाणुओंसे मिलकर बने हैं, और फटनेपर या फाड़ दिये जानेपर पुनः परमाणु बन जाते हैं।

परमाणुओंके इस प्रकारके बन्धनमे भी एक बात और ध्यानमे रखनी चाहिए। स्निग्धता तथा रूक्षताकी डिग्रियोमे तारतम्य होनेके कारण इन दोनो जातिके परमाणुओमे भी विभिन्नता तथा विचित्रता उत्पन्न हो जाती है। हर परमाणु हर परमाणुके साथ बँध सके ऐसा नही है। योग्य शक्तिको धारण करनेवाला ही परमाणु किसी योग्य

शक्तिवाले दूसरे परमाणुके साथ बँधता है। अर्थात् जो अनेको रूक्ष परमाणु किसी एक स्निग्ध परमाणुके साथ बन्धको प्राप्त होते हैं, उनमे बन्धानुपातके योग्य ही स्निग्धता अथवा रूक्षता होनी चाहिए। इस अनुपातके तारतम्यके कारण ही बननेवाले स्कन्धोमे अनेकरूपता आ जाती है।

१०. स्थूल तथा सूक्ष्म पुद्गल

परमाणुओके सघातसे उत्पन्न हुए ये स्कन्ध जाति-भेदसे तो अनेको प्रकारके होते ही हैं, परन्तु सूक्ष्मता तथा स्थूलताकी अपेक्षा भी वे अनेको प्रकारके होते हैं। सूक्ष्म तथा स्थूल भेदोको जाननेसे पहले यहाँ सूक्ष्म तथा स्थूलका लक्षण कर देना चाहिए। साधारणत. स्थूल कहते है बडेको और सूक्ष्म कहते हैं छोटेको, परन्तु वास्तवमे इनका यह अर्थ करना ठीक नही है, क्योकि कदाचित् बड़ा पदार्थ सूक्ष्म हो सकता है और छोटा पदार्थ स्थूल। सो कैसे वही बताता हूँ।

देखो, खशखाश (पोस्ता) का दाना तथा जलकी बूँद इन दोनोमे-से पहला अर्थात् खशखाशका दाना छोटा है और जलकी बूँद बडी। फिर भी खशखाशका दाना तो वस्त्रमे-से छनकर उस पार नही होता और जलकी बूँद वस्त्रमे-से छनकर उस पार हो जाती है। वायु तो शीशेमे-से पार नही होती परन्तु प्रकाश उसमे-से भी पार हो जाता है। अत. बडे-छोटेकी बात नही है बल्कि एक दूसरेमे-से पार होनेकी शक्तिको दृष्टिमे रखकर ही सूक्ष्मता तथा स्थूलताका लक्षण करें। जो पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको न रोक सके और न ही स्वय किसीसे रुक सके, अथवा एक दूसरेमे समाकर रह सके, या एक दूसरेमे-से पार हो जाये उसे सूक्ष्म कहते है। तथा जो पदार्थ दूसरेको रोके अथवा दूसरेसे रुक जाये, एक दूसरेमे न समा सके न पार हो सके वह स्थूल कहलाता है।

यह सूक्ष्मता तथा स्थूलता भी एक-एक ही प्रकारकी हो सो बात नही है। इनमे भी तारतम्य या हीनाधिकता होनी सम्भव है। कोई पदार्थ पूर्णत· सूक्ष्म है, कोई कम सूक्ष्म है, कोई पूर्णत· स्थूल है और कोई कम स्थूल है। जो किसीसे किसी प्रकार न रुके और प्रत्येक पदार्थमे समाकर रह सके वह पूर्ण सूक्ष्म है। जो हर पदार्थसे रुक जाये तथा किसीमे भी समाकर रह न सके और किसीमे-से भी पार न हो सके वह पूर्ण स्थूल है। जो किसीसे रुक जाये और किसीसे नही तथा किसीमे समा जाये और किसीमे नही, अथवा किसीमे-से पार हो जाये और किसीमे-से नही, वह कम सूक्ष्म तथा कम स्थूल है, अर्थात् उसमे सूक्ष्मता तथा स्थूलता दोनो मिले हुए हैं।

मिले हुए पदार्थ कई प्रकारके हो सकते है। कुछमे सूक्ष्मता अधिक तथा स्थूलता कम है, किसीमे स्थूलता अधिक और सूक्ष्मता कम है। इनके सर्व भेद प्रभेदोको गिनाना तो कठिन है, हाँ सूक्ष्मता तथा स्थूलताकी डिग्रियोमे तारतम्यका अनुमान लगानेके लिए इनको तीन-तीन विभागोमे विभाजित किया जाता है। बहुत अधिक, कुछ कम, बहुत कम,। अगरेजी व्याकरणमे तारतम्यको बतानेके लिए इसी प्रकारसे तीन भेद किए जाते हैं। जैसे Positive degree, Comparative degree और Superlative degree। हिन्दी व्याकरणमे इन्हे ही साधारण, तर और तम कहकर प्रकट किया जाता है, जैसे—जघन्य सूक्ष्म, मध्यम सूक्ष्म, उत्कृष्ट सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम। आगममे इस प्रकारके साधारण तथा तर, तम रूप भेदोको दर्शानेके लिए विशेष प्रकारकी प्रक्रिया अपनायी गयी है। एक ही शब्दको दो बार कहनेसे उत्कृष्ट अर्थात् 'तम' वाला भेद बनता है, जैसे—सूक्ष्मसूक्ष्म कहनेका अर्थ है उत्कृष्ट प्रकारका सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्मतम। केवल एक बार शब्दका प्रयोग करनेसे मध्यम अर्थात् 'तर' वाला भेद बनता

है, जैसे—सूक्ष्म कहनेका अर्थ है मध्यम सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्मतर। दोनो शब्दोको आगे-पीछे कहनेसे जघन्य अर्थात् 'साधारण' वाला भेद बनता है, जैसे, 'सूक्ष्म-स्थूल' ऐसा कहनेका अर्थ है जघन्य सूक्ष्म या साधारण सूक्ष्म। इस भेदमे इतना ध्यान रखा जाता है कि कौन शब्द पहले कहा जाये और कौन पीछे। जो शब्द पहले कहा जाये, समझो कि उसका अश अधिक है और जो शब्द पीछे कहा जाये उसका अश कम है। अत. 'सूक्ष्म-स्थूल' मे सूक्ष्मताका अंश स्थूलताकी अपेक्षा अधिक है। इसोलिए इसका अथ जघन्य स्थूल न करके जघन्य सूक्ष्म किया गया। यदि इसी शब्दको बदलकर 'स्थूल-सूक्ष्म' ऐसा कर दिया जाए, तो इसका अर्थ है कि स्थूलताका अश सूक्ष्मतासे कुछ अधिक है, इसीलिए इसका अर्थ होगा जघन्य स्थूल।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थूलका नाम है 'स्थूल-स्थूल', मध्यम स्थूलका नाम है 'स्थूल' और जघन्य स्थूलका नाम है 'स्थूल-सूक्ष्म' (पहले स्थूल फिर सूक्ष्म)। इसी प्रकार उत्कृष्ट सूक्ष्मका नाम है 'सूक्ष्म-सूक्ष्म', मध्यम सूक्ष्मका नाम है सूक्ष्म और जघन्य सूक्ष्मका नाम है 'सूक्ष्म-स्थूल' (पहले सूक्ष्म फिर स्थूल)। इन्ही नामोको उत्कृष्ट स्थूलतासे क्रमपूर्वक घटाते-घटाते उत्कृष्ट सूक्ष्मता पर्यन्त यदि गिना जाये तो यो होगा—उत्कृष्ट स्थूल, मध्यम स्थूल, जघन्य स्थूल, जघन्य सूक्ष्म, मध्यम सूक्ष्म, उत्कृष्ट सूक्ष्म, या स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मसूक्ष्म। क्योकि एकके जघन्यके पश्चात् एकदम दूसरेके उत्कृष्टका नम्बर नही आ सकता। परस्पर विरोधी होनेके कारण एकके उत्कृष्टसे उसीका जघन्य प्राप्त हो जानेपर, दूसरेके जघन्यसे प्रारम्भ करके उसके उत्कृष्ट पर्यन्त ले जाना होगा।

अब इन्ही उत्कृष्ट तथा जघन्य, स्थूल एवं सूक्ष्म पुद्गलोको

दृष्टान्त द्वारा समझाता हूँ। वह पदार्थ जो किसी दूसरेमे न तो समा सकता है, न किसी दूसरेमे-से आर-पार हो सकता है, न स्वयं अपनी स्थिति तथा शकल बदल सकता है, जहाँ रख दिया जाये वहाँ ही ज्योंका त्यों पड़ा रहता है, वह 'स्थूलस्थूल' पुद्गल स्कन्ध है। इस प्रकार पृथिवी अर्थात् सभी छोटी या बड़ी ठोस वस्तुएँ इस श्रेणीमे आ जाती हैं। वे पदार्थ जो सबमे तो नहीं पर किसी पदार्थमे समा सकें और किसी पदार्थमे-से आर-पार हो सकें, स्वयं अपनी स्थिति तथा शकल भी बदल सकें, जहाँ इन्हें रखा जाये वहाँ ही ज्योंके त्यों पडे न रह सकें, जिन्हे टिकानेके लिए बहुत कुछ साधनोंकी सहायता लेनी पडे, तथा जिन्हे तोडनेपर वे पुन: स्वय मिल जायें, वे सब 'स्थूल' पुद्गल स्कन्ध हैं। इस प्रकार जल व वायु तत्त्व इस श्रेणीमे आ जाते है, क्योकि ये कुछ वस्तुओमे से आर-पार हो सकते हैं और इन्हे रखनेके लिए किन्ही बरतन या ट्यूब आदिकी आवश्यकता होती है। वह पदार्थ जो कुछ अन्य पदार्थोंमे-से आर-पार हो सके, तथा जिसे किसी प्रकार भी पकड-कर रखा न जा सके, वह स्थूलसूक्ष्म पदार्थ है, जैसे प्रकाश, क्योकि यह शीशेमे-से आर-पार हो जाता है। स्पर्शनेन्द्रियका जो विषय गर्मी-सरदी, रसनेन्द्रियका जो विषय स्वाद, घ्राणेन्द्रियका जो विषय गन्ध और करणेन्द्रियका जो विषय शब्द, ये चारो प्रकारके पदार्थ 'सूक्ष्मस्थूल' है, क्योकि बन्द कमरेमे भी प्रवेश पा जाते है। बन्द कमरेमे बैठे हुए भी आपको बाहरकी गरमी-सरदी महसूस होती हैं, बाहरसे मिर्चोंकी धसक आ जाती है, बाहरकी गन्ध भीतर घुस आती है और बाहरका शब्द भीतर सुना जाता है, भले ही कुछ कम हो जाये। इनके अतिरिक्त तारोमे-से आर-पार दौडनेवाली विद्युत शक्तिको भी इसी श्रेणीमे समझ लें।

यहाँ तकके सर्व पदार्थ तथा विषय तो हम सबको प्रत्यक्ष है

क्योकि यहाँ तक सर्व पदार्थोंमे कुछ न कुछ स्थूलता अवश्य रहती है, जिसे हमारी इन्द्रियाँ पकड सकती हैं, परन्तु इससे आगेकी श्रेणीमे स्थूलता बिलकुल नही रह जाती और इसलिए वे हमारी इन्द्रियोके विषय भी नही बन सकते। वे हर पदार्थमे-से आर-पार भी हो जाते है। ऐसे पदार्थ 'सूक्ष्म' कहलाते हैं। आजके भौतिक विज्ञान द्वारा खोजनेपर चुम्बककी किरणें तथा रेडियोकी तरगें इस श्रेणीमे ग्रहण की जा सकती है, क्योकि ये हर पदार्थमे-से आर-पार होनेकी शक्ति रखती है, और इन्द्रियो द्वारा किसी प्रकार भी इनका ग्रहण नही किया जा सकता। परन्तु आगमके द्वारा खोजनेपर कर्माण वर्गणाएँ इस कोटिमे आती है। कार्माण वर्गणा एक प्रकारका सूक्ष्म पुद्गल स्कन्द है, जो इन्द्रियो द्वारा प्रत्यक्ष नही किया जा सकता, और जिससे जीवोके प्रारब्ध कर्मोंका तथा अन्तःकरणका अर्थात् अन्तरग सूक्ष्म शरीरका निर्माण हुआ करता है। इससे आगे द्वयणुक त्र्यणुक आदि स्कन्ध 'सूक्ष्म सूक्ष्म' पुद्गल है जिनसे सूक्ष्म अन्य कोई पुद्गल-स्कन्ध सम्भव नही है।

इसी प्रकार अन्य पदार्थोंकी स्थूलता तथा सूक्ष्मतामे आगे भी तारतम्य जाना जा सकता है। जैसे आकाश नामक अमूर्तिक पदार्थ परमाणुसे अधिक सूक्ष्म है और अन्त करण आकाशसे भी अधिक सूक्ष्म है, जो सबमे प्रवेश पानेकी शक्ति रखता है। अन्त करणमे भी मन स्थूल है क्योकि उसके सकल्प-विकल्प साक्षात् प्रतीतिमे आते हैं, अहकार उससे सूक्ष्म है, चित्त उससे सूक्ष्म है और बुद्धि सबसे सूक्ष्म है। इससे भी आगे अन्त.करणसे युक्त चित्प्रकाश अधिक सूक्ष्म है, जो अनुमानमे नही आ सकता, केवल अनुभवगम्य है। स्थूलता तथा सूक्ष्मता के इस रहस्यको जानकर हमे यह पता लग जाना चाहिए कि लोकमे सभी पदार्थ इन्द्रियो द्वारा नही देखे जा सकते, न हो माइक्रोस्कोप द्वारा देखे जा सकते

हैं, परन्तु उनकी सत्ता अवश्य होती है।

११ पुद्गलके गुण तथा धर्म

अब पुद्गल पदार्थके कुछ गुणो तथा धर्मोंका परिचय देते हैं। वैसे तो अनेको धर्म इसमे पाये जाते हैं, परन्तु मुख्य रूपसे चार अधिक प्रसिद्ध हैं—स्पर्श, रस, गन्ध तथा वर्ण। पहले ही बताया जा चुका है कि गुण जाननेमे नही आया करता बल्कि उसकी कोई एक विशेष पर्याय ही किसी समय जाननेमे आती है। जैसे—स्पर्श गुण नही जाना जा सकता, ढण्डा तथा गर्मपना ही जाना जा सकता है। इसी प्रकार रस गुण नही जाना जा सकता, खट्टा-मीठापन ही जाना जा सकता है। गर्म-ठण्डा तथा खट्टा-मीठा यद्यपि लोकमे गुण नामसे प्रसिद्ध हैं, परन्तु ये वास्तवमे गुण नही बल्कि गुणोंकी पर्याय हैं। गुण तो वह है जो कि सामान्य रूपसे इनके पीछे बैठा रहता है। जैसे कि खट्टा हो कि मीठा या चरपरा परन्तु है तो रस ही, है तो जिह्वा इन्द्रियका विषय ही। पर्याय बदला करती है पर गुण नही। जैसे स्वाद खट्टेसे मीठा हो सकता है, पर रस तो रस ही रहता है। वह भी बदलकर जिह्वाकी बजाय नासिका इन्द्रियका विषय बन जाये ऐसा नही हो सकता।

इस प्रकार इन चार गुणोकी २० पर्यायें प्रसिद्ध हैं। स्पर्श गुणकी आठ पर्याय होती है—ठण्ठा, गर्म, चिकना, रूखा, कठोर, नरम, हल्का, भारी, क्योकि ये आठो विषय स्पर्शनसे जाने जाते है। रस गुणकी पाँच पर्याय हैं—खट्टा, मीठा, कड़ुआ, कसायला तथा चरपरा। गन्ध गुणकी दो पर्याय हैं—दुर्गन्ध तथा सुगन्ध। वर्ण गुणकी भी पाँच पर्याय हैं—काला, पीला, लाल, नीला, सफेद। इस प्रकार सब मिलकर २० पर्याय होती हैं।

पर्याय उसे कहते हैं जो बदल जाये। इसलिए किसी भी गुणकी

एक समयमे एक ही पर्याय उपलब्ध होती है, जैसे जिस समय रस गुणमे खट्टापना प्राप्त है उसी समय उसमे मीठापना प्राप्त नही हो सकता। हाँ, अगले किसी समयमे हो सकता है। इसलिए जब खट्टा स्वाद प्रतीतिमे आयेगा तब मीठा नही, और जब मीठा आयेगा तब खट्टा नही। इस प्रकार प्रत्येक गुणकी एक समयमे एक ही पर्याय जानी जा सकती है। इसलिए प्रत्येक पुद्गल पदार्थमे चार गुणोकी कोई भी अपनी-अपनी चार पर्यायें उपलब्ध होनी चाहिए। परन्तु स्पर्श गुणमे कुछ विशेषता है। स्पर्श गुणकी आठ पर्याय बतायी गयी हैं जो पृथक्-पृथक् चार जोडोंके रूपमे हैं। ठण्डे गर्मका एक जोडा है, चिकने-रूखेका दूसरा, कठोर-नरमका तीसरा और हल्के-भारीका चौथा जोडा है। वे चारो जोड़े क्योकि स्पर्शन इन्द्रियसे ही जाने जाते हैं इसलिए एक स्पर्श गुण कहा गया हैं, परन्तु इन जोडोमे परस्पर जाति-भेद है। जिस प्रकारसे ठण्डा-गर्म जाननेमे आता है उसी प्रकारकी प्रतीति चिकने-रूखेपनेमे नही होती। इसलिए चारों जोडे स्वतन्त्र हैं। प्रत्येक जोडेमे-से कोई भी एक पर्याय एक समयमे जानी जा सकती है। जो पदार्थ ठण्डा है वह उसी समय चिकना भी हो सकता है, रूखा भी। इसी प्रकार कठोर भी हो सकता है नरम भी, हल्का भी हो सकता है भारी भी। अतः स्पर्श गुणमे चार पर्याय उपलब्ध होती है। इसलिए रस, गन्ध व वर्णकी एक-एक पर्याय मिलाकर तीन तथा स्पर्श की चार, सब मिलकर सात पर्याय हो जाती हैं, जो किसी भी पुद्गल पदार्थमे एक समयमे देखी जा सकती हैं।

इसपर-से कहा जा सकता है कि पुद्गल पदार्थमे गुण तो चार होते हैं, परन्तु उनकी पर्यायें प्रति समय सात होती हैं। इसमे भी कुछ विशेषता हैं। स्पर्श गुणके चार जोडोमे पहले जो दो-दो जोडे (कठोर-नरम, हल्का-भारी) हैं वे संयोगी हैं अर्थात् अनेक

परमाणुओके मिलनेपर स्कन्धमे ही प्रकट होते हैं, परमाणुमे नही। परमाणु को न कठोर कह सकते है न नरम, न हल्का कह सकते हैं न भारी। अत परमाणुमे केवल दो ही जोडे उपलब्ध होनेके कारण उसमे स्पर्श गुणकी प्रति समय दो पर्याय ही होनी सम्भव हैं चार नही। इसलिए स्कन्धमे चार गुणोकी सात पर्यायें हो सकती हैं और परमाणुमे चार गुणोकी पाँच पर्यायें होनी सम्भव हैं।

१२ पुद्गल धर्मोंका समन्वय

कुछ लोगोका ऐसा मत है कि पृथिवीमे चारो गुण पाये जाते हैं, परन्तु अन्य पुद्गल द्रव्योमे नही। जलमे गन्ध नही होती, उसके बिना केवल तीन—स्पर्श, रस व वर्ण होते हैं। अग्निमे स्पर्श व वर्ण दो ही गुण होते है और वायुमें केवल स्पर्श गुण होता है। वायु तथा जलमे जो कदाचित् गन्धकी प्रतीति होती है वह उनकी अपनी नही होती, बल्कि उनमे मिले हुए पृथिवी तत्त्वके कुछ अणुओकी होती है। यदि ये शुद्ध हो तो इनमे गन्ध नही हो सकती। इसी प्रकार अन्य तत्त्वोके सम्बन्धमे भी जानना।

परन्तु इस प्रकारकी उन लोगोकी मान्यता वास्तवमे उनकी स्थूल दृष्टिका फल है ओर स्थूल दृष्टिसे देखनेपर भासता भी ऐसा ही है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि प्रत्यक्षपर इतना विश्वास नही करती, जितना कि तर्क तथा युक्तिपर। भले ही वे गुण उन तत्त्वोमे प्रत्यक्ष न हो सकें परन्तु उनमें हैं अवश्य। सम्भव है कि किसी गुणकी पर्याय किसी पदार्थमे अधिक शक्तिवाली हो और किसी दूसरे गुणकी पर्याय कम शक्तिवाली। तर्कपर से इस बातकी सिद्धि हो सकती है कि प्रत्येक पदार्थमे चारो ही गुण पाये जाते है, भले ही वह पृथिवी हो अथवा जल, अग्नि आदि। क्योकि यदि ऐसा न होता तो पृथिवीको विज्ञान द्वारा जल बना दिया जानेपर उसमेसे गन्ध, गुण

कहाँ चला जाता और जलसे पृथिवी बना दिया जानेपर उसमे गन्ध गुण कहाँसे आ जाता। क्योकि यह सिद्धान्त है कि पदार्थमे जितने गुण हैं उतने ही रहते है, घट-बढ नही सकते। यदि घट-बढ सकते होते तो जड पदार्थमे ज्ञान गुण बढाकर उसे चेतन बना दिया जाता, और चेतनमे-से ज्ञान गुण निकालकर उसे जड बना दिया जाता। अत सिद्ध है कि प्रत्येक पुद्गल स्कन्ध या परमाणुमे चारो गुण बराबर होते है। इसीलिए भिन्न-भिन्न जातिके परमाणु माननेकी कोई आवश्यकता नही।

१३ आजके विज्ञानके चमत्कार

भैया! पुद्गल पदार्थ जड ही है और जड ही रहेगा। यह बात ठीक है कि आजके विज्ञानने जगत्को अनेक चमत्कार दिखाये है। यह ठीक है कि उसने जगत्के सामने ऐसे पदार्थ बनाकर उपस्थित किये हैं, जिनसे साधारण बुद्धि भ्रममे पड गयी है। आजके विज्ञानका दावा है कि वह भौतिक पदार्थोमे भी चेतनत्व उत्पन्न कर सकता है, परन्तु यह उसका भ्रम है। जड पदार्थमे चेतनत्व आ जाये यह तीन कालमे सम्भव नही। दोनो पृथक् जातिके पदार्थ है, दोनो सत् हैं। जैसा कि पहले 'द्रव्य सामान्य' मे बताया जा चुका है, सत् बनाया नही जा सकता, वह स्वत होता है।

विज्ञान द्वारा बनाये गये अनेको पदार्थ आज ऐसे है जिनमे साधारण लोगोको चेतनत्वका आभास होने लगता है अर्थात् ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो यह बुद्धिसे कोई काम कर रहा है, जानकर तथा देखकर काम कर रहा है। परन्तु यह केवल भ्रम है जो बिलकुल असम्भव है।

दृष्टान्तके रूपमे आज एक ऐसी मशीन बना दी गयी है जो गणितज्ञकी भाँति अनेक रकमो या अंकोको जोडकर सही-सही

उत्तर दे सकती है। आज ऐसा लोहेका मनुष्य भी बनाया गया है जो दफ्तरोंके बाहर चपरासीके स्थानपर बैठाया जा सकता है। वह आदमी खडा होकर अतिथियोसे बात करता है उनसे पूछता है कि उन्हे किससे मिलना है स्वयं साथ जाकर उस अतिथिको उन बाबूकी मेज़पर पहुँचा देता है, और वापस आकर अपने स्थानपर बैठ जाता है। इसके अतिरिक्त भी अनेको मशीनें तथा बिना चालक के चलनेवाले वायुयान और स्पुत्निक ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो इनमे कुछ चेतना भर दी गयी हो, परन्तु वास्तवमे ऐसा नही है, न ऐसा होना सम्भव है। इन पदार्थोंको देखकर भ्रममे नही पडना चाहिए।

जो जाने-देखे उसे जीव या चेतन कहते हैं। जानना-देखना स्वत हुआ करता है। वह किन्ही कल-पुर्जोके आधीन नही है। जानना-देखना उसे कहते हैं जो स्वतन्त्र रूपसे कुछ भी जान सके। उसपर कोई प्रतिबन्ध नही लगाया जा सकता कि इतना तो जानना, इससे आगे नही। ये सब वैज्ञानिक यन्त्र सीमित काम कर सकते हैं, जिस सीमाका उल्लघन करनेमे वे समर्थ नही हैं। लोहेका मनुष्य उतना ही काम कर सकता है और उतना ही बोल सकता है, जितना करने तथा बोलनेके लिए उसे बनाया गया है, उससे अधिक नही। इसी प्रकार अन्य यन्त्र भी। अतः वे चेतन या जीव नही हैं, सब अजीव हैं पुद्गल हैं।

विज्ञानकी प्रशसा अवश्य की जा सकती है, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि उसके इस झूठे गर्वको भी सत्य मान लिया जाये कि वह जडको चेतना बना सकता है। आजका विज्ञान मुरदे जिलानेका प्रयत्न कर रहा है, तथा नये जीव भी पैदा करनेका प्रयत्न कर रहा है, परन्तु यह असम्भव है। उसने ट्यूबमें रज-वीर्य मिलाकर, बिना

माताके बच्चे पैदा किये। पर तब भी यह नही कहा जा सकता कि उसने जीव पदार्थ बनाया। कृत्रिम गर्भाशय बनाया जा सकता है पर जीव नही। ट्यूबवाले कृत्रिम गर्भाशयमे पनपनेवाला जीव वास्तवमे वही है जो कि रज-वीर्यके सूक्ष्म कीटाणुओमे पहलेसे मौजूद था। गर्भाशय भौतिक पदार्थ है, इसलिए वह बनाया जा सकता है, परन्तु जीव नही। अत· 'पदार्थ-विज्ञान'के विद्यार्थियोको ऐसे भ्रममे नही पड़ना चाहिए।

१४ पुद्गलका स्वभाव-चतुष्टय

पदार्थ-सामान्यमे बताया है कि प्रत्येक पदार्थका विशद परिचय प्राप्त करनेके लिए इसको चार दृष्टियोंसे देखना चाहिए—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। इसे ही वस्तुके स्वभाव-चतुष्टय कहते है। स्वभावको धारण करनेवाला जो कोई भी आकार-विशेषवाला प्रदेशवान् पदार्थ है उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्यके अन्तर्गत उसकी सख्या विचारी जाती है। उसके आकारको उसका क्षेत्र कहते हैं, उसके अवस्थानको उसका काल कहते है, तथा उसके गुण तथा धर्मको उसका भाव कहते है। वे चारो भी सामान्य तथा विशेष दोनो प्रकारसे देखे जाते हैं। सामान्य वह होता है जो सर्वत्र सर्वदा सभी विशेषो तथा रूपोमे समान रीतिसे पाया जाये, और विशेष कहते हैं उसके गुणो तथा पर्यायोको।

'स्वद्रव्य'की अपेक्षा विचार करनेपर सामान्य रूपसे पुद्गल द्रव्य एक मूर्तिक स्वभाव होनेके कारण एक है, परन्तु विशेष रूपसे उस स्वभावको धारण करनेवाले प्रदेशात्मक परमाणु अनन्तानन्त हैं। आकाशके प्रत्येक प्रदेशपर अर्थात् एक बालाग्र जितने स्थानमे भी वे अनन्तानन्त रहते हैं। प्रत्येक स्कन्धमे वे अनन्तानन्त रहते है।

'स्व-क्षेत्र'की अपेक्षा विचार करनेपर सामान्यरूपसे परमाणु ही मूल द्रव्य होनेके कारण वह केवल एक प्रदेशी है, परन्तु विशेष रूपसे अनेक छोटे-बडे आकारोको धारण करनेवाले स्कन्ध अनेक प्रकारके हैं—कुछ एक प्रदेशी हैं, कुछ अनन्त प्रदेशी है, कुछ संख्यात और कुछ असख्यात प्रदेशी हैं। अर्थात् कुछ तो इतने सूक्ष्म है कि आकाशके एक प्रदेशमे समा जाते है, और कुछ दो, तीन, सख्यात अथवा असख्यात प्रदेशोको घेरकर रहनेवाला हैं। परन्तु इसपर-से यह नही कहा जा सकता कि उसमे उतने ही परमाणु हैं जितने आकाश-प्रदेशोको घेरकर कि वह स्थित है। उतने भी हो सकते हैं और अधिक भी। हाँ, उतने प्रदेशोसे कम नही हो सकते। इस प्रकार दो प्रदेशी स्कन्धमे दो परमाणु भी हो सकते है और संख्यात, असख्यात व अनन्त भी। इसी प्रकार असख्यात प्रदेशीमे भी जानना। परन्तु यहाँ इतना विशेष है कि दो आदि सख्यात पर्यंत परमाणुओसे असख्यात प्रदेशी स्कन्ध नही बन सकता। कमसे कम असख्यात परमाणु तो होने ही चाहिए। अनन्त प्रदेशी अर्थात् लोक-के अनन्त प्रदेशोको घेरनेवाला स्कन्ध सम्भव नही है क्योकि लोकमे अनन्त प्रदेश है ही नही। जैसा कि आगे आकाश द्रव्यमे बताया जायेगा सारा लोक असख्यात प्रदेशी मात्र है। थोडे प्रदेशोमे अधिक परमाणु कैसे समायें, इसका समाधान आगे किया जायेगा।

स्वकालकी अपेक्षा विचार करनेपर सामान्य जो परमाणु वह तो नित्य है परन्तु उन परमाणुओसे मिलकर या बिछुडकर जो बडे या छोटे स्कन्ध बनते हैं और जो इस विश्वमे नित्य ही इन्द्रियोके विषय बन रहे हैं, वे अनित्य हैं, क्योकि वे उत्पन्न तथा विनष्ट होते रहते हैं। स्व-भावकी अपेक्षा विचार करनेपर सामान्य रूपसे तो मूर्तिकपना अर्थात् इन्द्रियोसे जाना जाये ऐसा ही उसका एक

स्वभाव है, परन्तु विशेष रूपसे उसमे स्पर्श, रस, गन्ध तथा वर्ण गुण पाये जाते है।

१५ पुद्‌गल द्रव्यको जाननेका प्रयोजन

जितना भी यह जगत् है वह सब इन स्कन्धोका ही खेल है। उत्पन्न हो-होकर विनष्ट होते है, इसलिए ये सब असत् हैं, मिथ्या हैं, माया है, प्रपच हैं। जीव इस प्रपच को देखता है और इसमे ही लुभा जाता है। इसमे लुभाकर जैसे मछली काँटेमे फँस जाती है, हाथी खड्डेमे गिर जाता है और बन्धनको प्राप्त हो जाता है, पतग स्वयं अग्निमे भस्म हो जाता है, हरिण राग सुनकर स्तब्ध हो जाता है और शिकारीके जालमे फँस जाता है, उसी प्रकार सभी इसमे फँस जाते हैं। इसमे फँसकर अपने-परायेका तथा हिताहितका विवेक खो बैठते हैं। इसकी प्राप्तिमे हँसते है तथा इसकी हानिमे रोते हैं। इस प्रकार बराबर हर्ष विषाद करते हुए व्याकुल बने रहते हैं और चौरासी लाख योनियोमे बराबर जन्मते-मरते हुए दुखी रहते हैं। इस भूल-भूलैयामे फँसकर वे यह भी जान नही पाते कि वे वास्तवमे चेतन है, शरीर जड है, और बाहरके इन दृष्ट पदार्थोंसे उनका कोई नाता नही है। गुरुओके इस प्रकारके वचन भी उन्हे भाते नही। यदि वह यह जान जाये कि यह सब तमाशा पुद्‌गल पदार्थका है, जो जीवोको धोखेमे डालने के लिए है, तो वह यहाँसे दृष्टि हटाकर अपने चेतन स्वरूपपर लक्ष्य ले जाये और सदा तृप्त तथा आनन्द-निमग्न रहे। बस यही है प्रयोजन इस पुद्‌गल पदार्थको जाननेका।

❋

९

आकाश द्रव्य

१ आकाश अमूर्तिक है, २ आकाश व्यापक है, आकाश नित्य है, ४ आकाश निर्लेप है, ५ शब्द आकाशका गुण नही, ६ लोकालोक-विभाग, ७ लोकका आकार तथा विभाग, ८ आकाशके प्रदेश, ९ लोकका माप, १० वडा पदार्थ थोडेमें कैसे समाये, ११ आकाश द्रव्यकी सिद्धि, १२ व्योममण्डलकी विचित्रता, १३ अवगाहनत्व गुण, १४ आकाशका स्वभाव-चतुष्टय; १५ आकाश द्रव्यको जाननेका प्रयोजन।

१ आकाश अमूर्तिक है

अहो! गुरु जनोकी व्यापक दृष्टि! जिन्होने वैठे-वैठे ही मानो समस्त विश्वको पी लिया है। ज्ञानकी महिमा ही ऐसी है। हम सभीका ज्ञान भी स्वभावसे ऐसा ही है। परन्तु उसे हमने अपने हाथो ही अन्धकारमे डाल रखा है। हम जड जगत्के दृश्य प्रपंचोमें उलझकर उसकी महिमा आकते है, पर ज्ञानकी व्यापकताको देख नही पाते। वह आकाशवत् व्यापक है। अजीव अर्थात् पुद्गल पदार्थका वर्णन कर चुकनेपर अव आकाश द्रव्यका वर्णन करते हैं।

साधारणतः यह जो ऊपर नीला-नीला दिखता है इसे आकाश कहा जाता है, परन्तु वास्तवमे ऐसा नही है। वह तो इन्द्रियोसे दिखाई देता है, अत अवश्य ही पुद्गल होना चाहिए। आकाश अमर्तिक है, इन्द्रियोसे जाना नही जा सकता। न छूकर जाना जा सकता है, न चखकर, न सूघकर, न देखकर, न सूनकर। इस खाली आकाशमे जो सर्दी-गर्मी-सी प्रतीत होती है वह वायुकी है

आकाशकी नही, वह वायु जो कि आकाशमे ही व्याप्त है। यह जो सुगन्ध-दुर्गन्ध आती प्रतीत होती है वह भी किन्ही पुद्गल स्कन्धोकी हे, जो विष्टा या पुष्पादिपर-से वायुके साथ ही उड़कर हमारे नाक तक आ पहुँची है। आखोसे जो नीला-नीला दोखता है यह आकाश नही बल्कि उन क्षुद्र अणुओका रग समझो जो कि इस वायु मण्डलमे नित्य तैरते हैं और सूयकी किरणोको प्राप्त करके इस रगमे रँग जाते हैं। शब्द जो कानोंसे सुनाई देता है वह आकाशका कोई अश या गुण नही है, परन्तु अनेक पुद्गल परमाणुओंके टकरानेसे स्वयं उनमे ही उत्पन्न होता है, और वायुमण्डलमे एक कम्पन-विशेष उत्पन्न कर देता है। वायुका वह कम्पन ही कर्ण प्रदेशोको प्राप्त होनेपर शब्द रूपमे प्रतीत होता है। वैदिक मान्यता के अनुसार शब्दको यद्यपि आकाशका गुण माना गया है परन्तु उनकी मान्यता ठीक नही है, क्योकि शब्द इन्द्रिय ग्राह्य होनेके कारण मूर्तिक है, जबकि आकाश निर्लेप तथा अमूर्तिक हे। अमूर्तिक पदार्थका कोई भी अग या गुण मूर्तिक या इन्द्रिय ग्राह्य नही हो सकता। इस बातको आगे और स्पष्ट किया जायेगा। यहाँ केवल इतना ही समझ लें कि आकश पदार्थ बिलकुल अमूर्तिक है। जो कुछ भी इन्द्रियोसे दिखाई देता है या किसी भी प्रकार जाना जाता है, वह सब पुद्गल है।

यह जो अपने चारो ओर, दायें-बायें, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, सर्वत्र जहा तक भी दृष्टि जाती है, खाली जगह (vaccum) दिखाई देता है वही आकाश है। अँगरेजीमे इसे ही स्पेस (space) कहते हैं। (sky) और स्पेस (space) मे अन्तर है। sky तो उस नील गगनका नाम है जिसे कि पहले पुद्गल बता दिया गया है। वास्तव मे स्पेस (space) ही आकाश है।

खाली जगहको आकाश कहते हैं। भले ही इसमे वायु होनेके

कारण इसे वायुमण्डल कहा जाता हो परन्तु आकाश वायुसे पृथक् ही कुछ पदार्थ है। वायु स्वय आकाश नही है। जिसमे वह रहती है तथा सचार करती है वह आकाश है। ऊपर अन्तरिक्षमे जहाँ आज के विज्ञान द्वारा भेजे गये स्पुत्निक घूम रहे हैं वहाँ वायुका नाम भी नही है, परन्तु आकाश है। जिस खाली जगहमे वे घूम रहे हैं उसे ही यहाँ आकाश कहा जा रहा है।

२. आकाश व्यापक है

खाली जगह रूप यह आकाश सर्वत्र व्याप्त है। इसमें सब रहते हैं, पर यह किसीमे नही रहता, जिस प्रकार कि मनुष्य ही मकानमे रहते हैं पर मकान मनुष्य मे नही रहता। पृथिवी, सूर्य चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारामण्डल, वायु, अग्नि सभी इस आकाशमे रहते हैं। आकाशको विश्वका निवासस्थान कहा जाये तो अनुपयुक्त न होगा। जहाँ तक दृष्टि फैलायें वहाँ तक सर्वत्र आकाश ही आकाश है। दृष्टि तो बहुत छोटी चीज़ है, वह तो क्षितिजपर जाकर समाप्त हो जाती है, पर आकाश वहाँसे भी आगे अनन्त तक चला गया है जो तर्क से ही जाना जा सकता है। जिस स्थानपर हम खड़े हैं उस स्थानसे १०० मीलपर क्षितिज दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आकाशकी सीमा वही तक है, परन्तु ऐसा वास्तवमे नही है। वह आकाशकी नही हमारी दृष्टिकी सीमा है। यदि हम स्वय १०० मील आगे चले जायें अर्थात् उस स्थानपर पहुँच जायें, जिस स्थान पर कि क्षितिज दिखाई देता था तो वही क्षितिज पुन. १०० मील आगे दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार उस नये क्षितिजपर पहुँचकर देखनेसे वह और भी १०० मील आगे बढ जाता है। उसकी समाप्ति कहाँ होती है, अर्थात् अन्तिम क्षितिज कहाँ है जहाँ पहुँच-कर कि आगे नया क्षितिज दिखाई न दे, यह कोई नही बता सकता। इस तर्कपर-से जाना जाता जाता है कि आकाश हर दिशा

मे अनन्त तक व्याप्त है। इसका कही भी अन्त नही है। वायुका अन्त है, इस नील गगनका भी कही अन्त है, पुद्‌गल पदार्थोका भी कही अन्त है पर आकाशका कही अन्त नही है। इसलिए इसे व्यापक कहा जाता है।

३ आकाश नित्य है

आकाश नित्य है। वह सर्वदा ऐसाका ऐसा ही रहा है और ऐसाका ऐसा ही रहेगा। यह न कभी नया ऊत्पन्न होता है और न कभी विनष्ट होता है। जो भी व्यक्ति जब कभी भी पृथिवीपर जन्म धारण करता आया है, इस आकाशको ज्योका त्यो देखता आया है। वायुमण्डल बदल गया यह ठीक है; देश, नगर, नदी, सागर, पर्वत बदल गये यह ठीक है, परन्तु आकाश स्वय वहका वह है, और इसी प्रकार आगे भी रहनेवाला है।

जिस प्रकार अन्त करण तथा शरीरसे मिलकर 'जीवपदार्थ' चित्र-विचित्र पर्यायो या अवस्थाओको अथवा नामरूप कर्मोंको प्राप्त होता है, जिस प्रकार पुद्‌गल पदार्थ अनेक स्कन्धोके रूपमे चित्र-विचित्र पर्यायो या अवस्थाओको अथवा अनेको जातियो तथा रूपोको प्राप्त होता है, उस प्रकार आकाश कदापि नही हो सकता, न ही आज तक हुआ है और न आगे होगा। जैसा पहले था वैसा ही अब है, और जैसा अब है वैसा ही आगे रहेगा। इस-लिए यह नित्य है।

४. आकाश निर्लेप है

भले ही इसमे जीव, पुद्‌गल, परमाणु, स्कन्ध, वायु, पृथिवी, अग्नि आदि सब कुछ रहते हो परन्तु कोई भी इसको स्पर्श नही करता। पृथिवी, सूर्य, चन्द्र आदि ही घूमते है, यह नही घूमता। सूर्य, चन्द्र आदि ढके जाकर ग्रहणको प्राप्त होते हैं पर आकाश

ग्रहणको प्राप्त नही होता। पृथिवी आदि बडे पदार्थ तथा पर्वत, अथवा ईंट-पत्थर आदि छोटे पदार्थ ही परस्परमे टकराकर भग्न हो जाते हैं, आकाश भग्न नही होता। तलरवारसे पुद्गल अथवा पुद्गलसे बनी भौतिक देह हो काटी जा सकती है, आकाश नही कटता। जल, सागर तथा नदियोसे पृथिवी भीगती है पर आकाश नही भीगता। वर्षासे भी वायुमण्डल ही भीगता है आकाश नही भीगता। अग्निसे पौद्गलिक ईंधन ही जलता है आकाश नही जलता। वायुसे पुद्गल जो घास-फूस, पत्ते अथवा बड़े-बड़े पर्वत हैं वे ही उखडते हैं या सागर ही क्षुभित होता है, पर आकाश न उखडता है और न क्षुभित होता है। आंधी तूफान, धूल, धूम आदिसे वायुमण्डल ही मलिन तथा अपवित्र होता है और वर्षासे वही स्वच्छ तथा निर्मल होता है, परन्तु आकाश तो सर्वदा स्वच्छ तथा निर्मल ही है। वह मलिन नही होता, न नया स्वच्छ होता है। इस प्रकार आकाश सर्व प्रकारसे निर्लेप है।

५. शब्द आकाशका गुण नहीं

ऐसे निर्लेप पदार्थमे शब्द प्रकट हो सकें यह असम्भव है। यह दृष्टिकी स्थूलता है, भ्रम है कि किन्ही लोगोको शब्द आकाशका गुण मालूम होता है। आकाश तो अमूर्तिक तथा निर्लेप है, सदा स्थिर है। तनिक-सा भी कम्पन उसमे सम्भव नही, और शब्द साक्षात् कम्पन-स्वरूप है। विज्ञान भी इसे पुद्गल पदार्थका कम्पन मात्र कहता है। किसी बजते हुए घण्टेपर हाथ रखकर देखो तो साक्षात् रूपसे आपको वह झनझनाहटके रूपमे कांपता हुआ प्रतीत होगा। जबतक यह कम्पन चल रहा है, तभी तक आपको शब्द सुनाई दे रहा है। परन्तु यदि उस घण्टेको हाथसे पकड़ लिया जाये तो उसका कम्पन रुक जाता है और आवाज़ या उसकी गुंजार भी बन्द हो जाती है।

इस प्रकार विज्ञान तथा तर्क दोनोसे सिद्ध होता है कि शब्द पुद्गलका ही कार्य है आकाशका कदापि नही। पुद्गल पदार्थमे प्रकट होनेवाला वह कम्पन वायुमण्डलमे आ जाता है क्योकि वायु सर्वत्र होनेके कारण उस पदार्थसे भी स्पर्श कर रही है। उसी वायु-मण्डलका वह कम्पन हमारे कानोको प्राप्त होता है क्योकि वही वायु हमारे कानको भी स्पर्श कर रही है। अत जो शब्द हम सुनते है वह उस वायुका ही कम्पन है और कुछ नही। यदि वायु विपरीत दिशामे बह रही हो तो हमको वह शब्द सुनाई नही देता, क्योकि वह कम्पन उसके साथ उस दिशामे चला गया है और हमारे कान तक नही आने पाया है। यदि वायु हमारी दिशामे बह रही हो तो मीलो दूरका भी शब्द हमे सुनाई दे जाता है, क्योकि वायुका कम्पन उसके वेग तथा सचारके कारण शीघ्र ही हमारे कानोको प्राप्त हो जाता है। बादलो की तथा बिजलीकी गड़गडाहट हमे सहज सुनाई देती है, क्योकि वहाँ तक वायुमण्डल है, परन्तु सूर्यमे होनेवाले महान् विस्फोटोका शब्द हमे सुनाई नही देता। क्योकि वहाँके वायुमण्डल और पृथिवीके वायुमण्डलके बीचमे बडा अन्तराल पडा हुआ है अर्थात् दोनो वायुमण्डलोका परस्परमे कोई सम्बन्ध नही है। उनके बीचमे केवल आकाश है। यदि शब्द आकाशका कार्य होता तो वह भी हमे अवश्य सुनाई दे जाना चाहिए था, क्योकि आकाश सर्वत्र है, वह कही नही टूटता।

दूर देशस्थ शब्द हमारे कानो तक आते-आते धीरे-धीरे धीमा-धीमा होता जाता है। यही कारण है कि अत्यन्त दूरपर होनेवाले शब्द यहाँ तक कि ऐटमबाम्ब के भयकर विस्फोटोका शब्द भी हमे सुनाई नही देता। इसका कारण भी वायुमण्डल ही है। वायु मण्डलमे पदार्थको रोकने की शक्ति है। एक गेंदको ज़ोरसे आकाशमें फॅक देनेपर उसकी गति बराबर धीरे-धीरे कम होती

जाती है और कुछ दूर जाकर वह रुक जाती है। इसी प्रकार बड़े-बडे शक्तिशाली राकेट भी जब तक वायुमण्डलमे रहते हैं तबतक उनकी गति बराबर घटती चली जाती है और कुछ मील ऊँचे जाकर वह रुक जाते हैं। यही कारण है कि अणु शक्तिके विकाससे पहले वैज्ञानिक लोग अपने राकेट अधिक ऊँचे न पहुँचा सके। अणु शक्ति द्वारा जब वह राकेट वायुमण्डलसे ऊपर पहुँचा दिया गया तो वहाँ जाकर वह बिना किसी शक्तिके बराबर चक्कर काट रहा है। वहाँ उसकी गतिमे किंचित् मात्र भी कमी नही आती, क्योकि वहाँ वायुमण्डल नही है और इसलिए उसकी वह विरोधी शक्ति भी वहाँ काम नही आती। वहाँ केवल आकाश है, जिसमे विरोधी शक्ति पायी नही जाती। यदि शब्द आकाशका गुण होता तो वह आगे-आगे जाकर मन्द न पड़ता बल्कि सर्वत्र ज्योका त्यो सुनाई देता, क्योकि आकाश सर्वत्र ज्यो का त्यो है।

शब्द गुण नही पर्याय है, क्योकि क्षणिक है। गुण त्रिकाली होते है। गुण कभी उत्पन्न नही होता, गुणकी परिवर्तनशील पर्याय ही उत्पन्न होती है, और विनष्ट होती है। परमाणुमें रस उत्पन्न नही होता और जीवमे ज्ञान उत्पन्न नही होता। वे तो नित्य है। हाँ! स्कन्धोमे खट्टा-मीठापना और शरीर-बद्ध संसारी जीवोमे इन्द्रिय ज्ञानके परिवर्तन ही उत्पन्न होते तथा विनष्ट होते हैं। आकाश क्योकि नित्य है और व्यापक है, इसलिए उसका गुण भी नित्य तथा व्यापक होना चाहिए। यदि शब्द आकाशका गुण है, तो वह भी नित्य तथा व्यापक होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ होता तो प्रत्येक शब्द हम सबको सर्वत्र ही सुनाई दिया करता और सब गड़बड़-घोटाला हो जाता। इस प्रकार हमे केवल सब तरफ शोर ही शोर सुनाई देता, किसीकी बात हम सुन तक न सकते क्योकि भिन्न-भिन्न स्थलोमे होनेवाले सभी

शब्द हमारे कानोंमे गूँजा करते। एक समय भी खामोशी प्रतीत न होती। तब तो हम सब पागल हो गये होते। परन्तु ऐसा नही है। इसपर-से भी जान सकते हैं कि शब्द आकाशका गुण नही, पुद्गलका भी गुण नही, बल्कि उसकी क्षणिक पर्याय है, जो उत्पन्न होकर सदाके लिए विनष्ट हो जाती है।

यह कहना कि रेडियोकी आवाजें आकाशमे स्थित हैं और आकाश मार्गसे ही हम तक पहुँचती हैं, मिथ्या है, भ्रम है। रेडियोकी आवाजें कभी आवाजोके रूपसे आकाशमे आती नही है। वे तो ट्रांस्मिटिंग स्टेशनपर विद्युत् तरगोकी चुम्बक शक्तियोंके रूपमे फेंकी जाती हैं। विद्युत् तरगोकी वे चुम्बक शक्तियाँ हमारे रेडियो सेट तक आती हैं, साक्षात् शब्द नही। रेडियो सेट उन चुम्बक शक्तियोकी तरगोको पुन शब्द रूपमे परिवर्तित कर देता है, जिसे हम सुनते हैं।

ऐसा मानना भी भ्रम है कि रामायण तथा महाभारतके समयके सब शब्द आज तक आकाशमे स्थित हैं जिन्हे कभी न कभी विज्ञान अवश्य प्रकट कर देगा। विज्ञान सम्भव ही कार्य कर सकता है असम्भव नही। जिस प्रकार विज्ञान द्वारा आपके बीते जन्मोका पुनः प्रकट किया जाना असम्भव है, जिस प्रकार विज्ञान द्वारा बीती ऋतुओका पुन वापस बुलाया जाना असम्भव है, जिस प्रकार विज्ञान द्वारा मिट्टीमे मिल गये शरीर को पुन. वही शरीर बना दिया जाना असम्भव है, उसी प्रकार प्रकट होकर विनष्ट हो जाने वाले क्षणिक शब्दोको विज्ञान द्वारा प्रकट किया जाना असम्भव है।

इस सब कथनपर-से यह सिद्ध कर दिया गया कि शब्द आकाशका न गुण है न उसके किसी गुणकी पर्याय है। पुद्गलका

भी यह गुण नही बल्कि पर्याय है, जो उसमे दो पदार्थोंके परस्पर टकरानेसे उत्पन्न हो जाती है और कुछ देर पश्चात् विनष्ट हो जाती है। शब्दको एक स्थानसे दूसरे स्थान तक ले जानेवाला वायु है, आकाश नही।

६ लोकालोक विभाग

यद्यपि आकाश व्यापक है, वह सर्वत्र है, जहाँ बुद्धि नही पहुँच सकती वहाँ भी वह है, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि यह दृष्ट जगत् भी सर्वत्र है, अर्थात् यह भी आकाशवत् व्यापक है। दृष्ट जगत्की सीमा है। यह केवल इस आकाशके मध्य मात्र कुछ स्थानमे रहता है। बस आकाशके जितने मात्र भागमे यह सब दृष्ट जगत् पाया जाता है उसे लोकाकाश कहते हैं। उसके अतिरिक्त सर्व दिशाओमे व्यापक रूपसे फैले हुए शेष असीम भागको अलोकाकाश कहते हैं। 'लुक'का अर्थ देखना है। जितने स्थानमे यह सब कुछ पसारा दिखाई दे वह लोक और जहाँ यह कुछ दिखाइ न दे वह अलोक जानना।

'लोक तथा अलोक' यद्यपि इस प्रकार आकाशके दो भाग कर दिये गये, पर इसका यह अर्थ नही कि वह इससे खण्डित हो गया है। वह तो ज्योका त्यो है, क्योकि यह विभाग केवल काल्पनिक है। जैसे घड़ीके भीतरकी पोलाहटको हम घटाकाश कहते हैं, और उससे बाहर सर्वत्र फैले हुए इस खाली स्थान रूप असीम आकाशको केवल आकाश कहते हैं, परन्तु ऐसा विभाग करनेसे वह टूट नही जाता इसी प्रकार ऊपरके सम्बन्धमे भी जानना। असीम आकाशमे यह लोक एक घटकी भाँति रखा हुआ कल्पना कर लो। तब उस सीमाके भीतर-भीतरवाले आकाशका नाम लोक है और उससे बाहरके आकाशका नाम अलोक।

इसपर-से यह भी न समझ लेना कि लोकके चारो तरफ कोई दीवार बनी हुई है, जिसके भीतर-भीतर तो लोक है और उससे बाहर अलोक। जिस प्रकार किसी राज्यकी सीमा किसी दीवारके द्वारा निर्धारित नही की जाती बल्कि मान ली जाती है, उसी प्रकार लोकको सीमा किसी दीवार द्वारा निर्धारित नही की जाती बल्कि मान ली जाती है। इस समस्त पृथ्वी-मण्डलके जितने भागमे उस राजाकी आज्ञा मानी जाती है, वही उसके राज्यकी सीमा है। इसी प्रकार असीम आकाशके जितने भागोमे जीव तथा पुद्गल ये दोनो पदार्थ स्वतन्त्रतासे गमनागमन कर सकें तथा अनेको रूपोमे प्रकट होकर अपना नाटक दिखा सकें बस वही लोककी सीमा है। लोकको जीव तथा पुद्गलके नृत्यका रगमच समझिए। इस सीमाको उल्लघन करके जानेका इन्हे अधिकार नही, इसीसे इतनी सीमाके बाहरका शेष सर्व स्थान अलोक कहलाता है।

साधारण रूपसे देखनेपर तो यह लोक अर्थात् जीव पुद्गलका रगमच बहुत बडा तथा असीम दिखाइ देता है, परन्तु वास्तवमे ऐसा नही है। किसी पदार्थको निकटसे अर्थात् सकुचित दृष्टिसे देखनेपर ही वह बडा दिखाई दिया करता है। महलमे रहनेवालेको महल बहुत बडा दिखता है, पर नगरमे रहनेवालेके लिए वह एक छोटी-सी चीज है। इसी प्रकार नगरमे रहनेवालेके लिए नगर बहुत बडा दीखता है पर देश या राष्ट्रमे रहनेवालोको वह छोटा प्रतीत होता है। देशमे रहनेवालेके लिए देश बड़ा है, पर पृथिवीके भूगोलमे वह भी क्षुद्र मात्र-सा है। यह समस्त पृथिवी भी यदि ऊपर आकाशमे जाकर दूरसे देखी जाये तो चन्द्रमाकी भाँति एक गोला सी दिखती है। पृथिवी, चन्द्र, सूर्य आदि असख्य ऐसे-ऐसे गोले जो लोकमे भरे पडे हैं, निकटसे देखनेपर ये बडे हैं पर दुरसे देखनेपर छोटे। इसी प्रकार व्यापक दृष्टिसे देखनेपर असख्यात पृथिवियो तथा

सूर्य-चन्द्रादिके समूहरूप इस सर्वसीमित लोकको यदि अलोकाकाशमे कही दूर खड़े होकर देखा जाये तो वह बहुत छोटा दिखाई देगा। जिस प्रकार एक बडे कमरेके बीचमे एक छोटा-सा छीका लटका रहता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण आकाशके बीच यह लोक लटका हुआ जानो।

इसका यह भी अर्थ नही कि वह किसी रस्सी आदिसे बाँध-कर किसीने लटकाया हो। यह तो स्वत. स्थित है। लटका हुआ कहना तो केवल समझानेके लिए है। बिना बँधा नीचे गिर जायेगा ऐसी भी आशका न करना, क्योकि जैसे सूर्य, चन्द्र तथा यह पृथिवी बिना किसी रस्सी आदिके द्वारा बँधे हुए भी अपने-अपने स्थानपर ठहरे हुए हैं और अपनी-अपनी सीमामे रहकर ही नृत्य कर रहे हैं अर्थात् बराबर घूम रहे हैं, इसी प्रकार यह लोक बिना बँधा हुआ भी अपने स्थानपर टिका है, और इसके मध्य जीव, पुद्गल, पुद्गलके बड़े स्कन्ध पृथिवी, चन्द्र, सूर्य आदि, पुद्गलके छोटे स्कन्ध पर्वत, नदी, सागर आदि तथा उनसे भी छोटे स्कन्ध षट्कायके शरीर और घट-पट आदि अनेक पदार्थ नृत्य कर रहे हैं। अनेको स्वाग भरते हैं, रूप बदलते है, जन्मते है, मरते हैं और इधरसे उधर भागे-भागे फिरते हैं।

७. लोकका आकार तथा विभाग

असीम आकाशके बीचमे लटकनेवाला यह छोटा-सा लोक मनुष्यके शरीरके आकारवाला है। मनुष्य अपनी टाँगें फैलाकर और कूल्होपर हाथ रखकर सीधा खडा हो जाये। इस प्रकारसे उसकी जो आकृति बन जाती है वही आकार लोकका है। इस आकारको केवल काल्पनिक समझना, क्योकि कोई ऐसी दीवार आदि बनी हुई नही है। जीव तथा पुद्गलो का नृत्य इतने

आकारवाले भागमे ही नित्य होना सम्भव है इससे बाहरमे नही। इसीमे लोकका यह आकार बताया गया है।
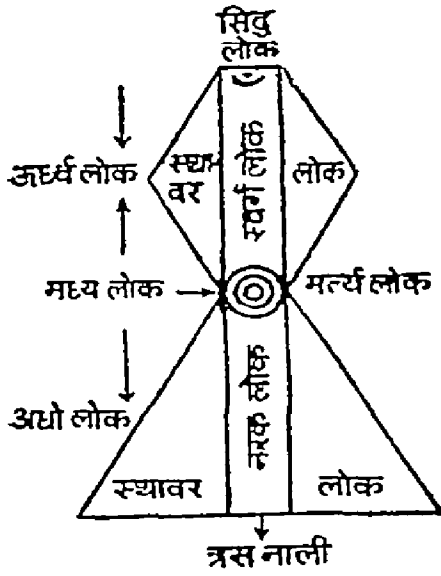
इस लोकके आकारके भी तीन भाग कीजिए—ऊर्ध्व, मध्य तथा अध.। मध्यलोक तो नाभिके स्थानपर समझिए, नाभिसे मस्तक पर्यन्त ऊर्ध्वलोक है और नाभिसे नीचे पैरोमे अधोलोक है। मध्य कहते हैं बीचको, उर्ध्व कहते है ऊपरको और अधो कहते है नीचे को। मध्यलोकमे असख्यात पृथिवियाँ तथा सूर्य-चन्द्रादिका ज्योतिष चक्र है। इस पृथिवीसे कुछ लाख मील ऊपर तक ही उसकी सीमा है। उसमे असख्यात मील ऊपर मस्तक पर्यन्त ऊर्ध्वलोककी सीमा है। इस प्रकार यह समस्त लोक असख्यात मील ऊपर, असख्यात मील नीचे तथा असख्यात मील ही दायें-बायें आगे-पीछे है। असख्यात मील होनेसे तो बडा लगता है परन्तु अनन्त तथा असीम सम्पूर्ण आकाश के सामने वह कुछ भी नही है।

ऊर्ध्वलोकमे ऊपर-ऊपर उत्तरोत्तर बढते हुए सुखके अनेको स्थान है, जिन्हे स्वर्ग कहते हैं। इन सभी स्वर्गोमे पृथिवी, सूर्य, चन्द्र आदिकी भाँति अनेको गोले हैं, जिन्हे विमान कहते हैं। जिस प्रकार पृथिवीपर मनुष्य बसते हैं, उसी प्रकार उन विमानोमे देव लोग बसते है। मध्यलोकमे असंख्यात पृथिवियाँ तथा सागर है। पृथिवियोको द्वीप कहते हैं क्योकि उनके चारो ओर सागर रहता

है। इन पृथिवियो तथा सागरोमे यथायोग्य मनुष्य, पशु, पक्षी तथा मगर-मच्छ आदि रहते हैं। मध्यलोकको मर्त्यलोक भी कहते है क्योकि यहाँके रहनेवाले मनुष्य आदि सभी मरण-धर्मा हैं। यद्यपि देव भी मरते हैं, परन्तु अत्यधिक दीर्घायु होनेके कारण वे अमर कह दिये जाते है और उनका निवास स्थान जो स्वर्गलोक या उर्ध्व-लोक है वह अमरलोक कह दिया जाता है। अधोलोकमे नीचे-नीचे अधिकाधिक दु खके स्थान हैं। इन्हे नरक कहते हैं। ऐसे-ऐसे सात नरक-स्थान कल्पित किये गये हैं। ऊपरसे ज्यो-ज्यो नीचेके नरकोमे जाते हैं त्यो-त्यो दु ख अधिक अधिक होता जाता है। प्रत्येक नरक-स्थानमे भी असख्यातो पृथिवियाँ हैं, जिनपर नारकी लोग बसते हैं और अपने पूर्वकृत दुष्कर्मोंके फलस्वरूप अनन्त दु.ख भोगते रहते है।

ऊर्ध्वलोकमे भी नाभिसे गरदन पर्यन्त अर्थात् वक्षस्थलके स्थान पर १६ विभाग कल्पित किये गये है। इन्हे सोलह स्वर्ग कहते हैं। ज्यो-ज्यो नीचेसे ऊपर ऊपरके स्वर्गमे जाते है त्यो-त्यो अधिक-अधिक सुख मिलता जाता है। इन १६ स्वर्गोंसे भी ऊपर गरदनके स्थानमे ९ विभाग किये गये हैं, जिन्हे ग्रैवेयक कहते है। यहाँ भी देव हैं। परन्तु स्वर्गोंमे जिस प्रकार इन्द्र तथा प्रजा आदिका भेद रहता है वैसा यहाँ नही रहता। यहाँ रहनेवाले सभी स्वतन्त्र है अर्थात् अपने अपने इन्द्र हैं, इसलिए इन्हे अहमिन्द्र कहते हैं। 'अहम्' का अर्थ है 'मैं' और इन्द्रका अर्थ है इन्द्र। अर्थात् 'मैं ही अपना इन्द्र हूँ', ऐसा अहमिन्द्रका अर्थ है। ग्रीवासे ऊपर मुख भागमे भी दो विभाग हैं। नीचेवालेका नाम अनुदिश है और ऊपरवालेका नाम अनुत्तर। इनमे हरनेवाले भी अहमिन्द्र ही होते हैं, परन्तु इनकी पदवी ग्रैवे-यकवालोसे उत्तरोत्तर ऊँची है। इस सबको स्वर्गलोक या अमरलोक कहते हैं।

सबसे ऊँचे मस्तकपर सिद्धलोक है। यहाँ वे मुक्त आत्माएँ जाकर वास करती हैं, जो कि शरीर तथा अन्त करणसे मुक्त हो जाती हैं, जिन्हे कि पहले मुक्त-जीव कहा गया है, जो शरीर रहित तथा अमूर्तिक होती हैं। वे पवित्र मुक्त आत्माएँ ही सिद्ध-जीव कहलाते हैं। वे इस स्थानपर रहते हैं, इसलिए इसे सिद्ध-लोक कहते हैं।

मध्यलोकमे असख्यात द्वीप (पृथिवी) समुद्र है जो एकके पश्चात् एक, एक दूसरेको घेरकर स्थिन है। इनमे मनुष्य तथा तिर्यंच वास करते है। इसलिए द्वीप समुद्रोको मर्त्यलोक भी कहते है। मनुष्यो आदिके अतिरिक्त यहाँ तीन जातिके देव भी रहते है। पृथिवीपर भूत-प्रेत आदि देवोके रहनेके कारण इसे प्रेतलोक भी कहा गया है।

कुछ लाख मील ऊपर तक अन्तरिक्ष लोक है। इसमे असख्यात सूर्य, चन्द्र तथा सितारे आदि हैं। प्रत्येक द्वीप तथा समुद्रके ऊपर पृथक्-पृथक् सौर-मण्डल हैं। जितने द्वीप समुद्र हैं उससे कई गुने सौर-मण्डल हैं। एक चन्द्रमा तथा असख्यात तारे मिलकर एक सूर्यका कुटुम्ब होता है। सूर्य तथा उसका कुटुम्ब मिलकर एक सौर-मण्डल कहलाता है। सूर्य-चन्द्रादिमे भी ज्योतिष जातिके देव रहते हैं। इन्हे ज्योतिष देव कहते हैं। ज्योतिका अर्थ प्रकाश होता है, ज्योतिष अर्थात् प्रकाश करनेवाले। इसीसे इस अन्तरिक्ष लोकको ज्योतिष लोक कहते हैं।

अधोलोकमे नीचे-नीचे जो सात विभाग किये गये हैं, उन्हे सात नरक कहते है। ऊपरवाले नरकोकी अपेक्षा नीचेवाले नरकोमे अधिक दु.ख है। इसमे नारकी रहते हैं, इसलिए इसे नरकलोक कहते हैं।

लोकके आकारके बीचोबीच मस्तकसे पाँव पर्यन्त जो एक सीधी-सी नाली दिखायी गयी है, उसे त्रस-नाली कहते है, क्योकि त्रस जीव इतने ही भागमे रहते हैं, इससे बाहर नही। इस त्रस नालीमे अपने-अपने योग्य स्थानोमे देव, मनुष्य, तिर्यंच तथा नारकी चारो गतिके त्रस तथा स्थावर सब प्रकारके जीव रहते हैं। इस लिए इसे त्रसलोक कहते हैं। परन्तु इसके आजू-बाजूमे ऊपर और नीचे जो चार तकोनें दिखाई देती है, इनमे केवल स्थावर जीव ही पाये जाते हैं, इसलिए उसे स्थावर लोक कहते हैं।

इस प्रकार सक्षेपसे लोकका विभाग दर्शाया गया। इसका विस्तार बहुत अधिक है जिसे यहाँ बताया जाना सम्भव नही है।

८ आकाशके प्रदेश

लोक तथा अलोक कितना बड़ा है यह जाननेके लिए हमे यदि इसको मापनेकी आवश्यकता पडे तो क्या करें ? किसी भी पदार्थको मानपनेके लिए हमारे पास कोई यूनिट या इकाई होनी चाहिए। यह यूनिट सदा छोटेसे छोटा होता है क्योकि छोटेसे तो बड़ी वस्तु मापी जा सकती है परन्तु बडीसे छोटी वस्तु नही। यूनिटको उत्तरोत्तर गुणा करनेपर बडे माप भी प्राप्त हो जाते हैं। जैसे इंचको १२ गुणा करनेसे फुट और फुटको तीन गुणा करनेसे गज प्राप्त होता है। यद्यपि आजके व्यवहारमे क्षेत्रको मापनेका यूनिट मिलिमीटर है, परन्तु यह भी बहुत बड़ा है। क्षेत्र मापनेका सबसे छोटा यूनिट प्रदेश है। प्रदेश अत्यन्त सूक्ष्म है। एक मिलीमीटरमे असख्यातो प्रदेश होते है। इस प्रदेशको निकालनेके लिए पहले 'जीव-पदार्थ' नामक अधिकारमे जीवको मापनेके लिए जो किया गया था वही यहाँ भी करना है। किसी भी पदार्थकी लम्बाई-चौड़ाई या उसका आकार वास्तवमे आकाशसे ही मापा जाता हैं। आकाशके जितने स्थानको घेरकर वह रहता है उसे मापनेपर जो

प्राप्त हो वही उस पदार्थका माप समझो। जोवको पहले असख्यात-प्रदेशी कहा गया है और पुद्गलको एक, दो, सख्यात तथा असख्यातप्रदेशी। उसका स्पष्टीकरण यहाँ किया जाता है।

प्रदेशोकी गणनासे तात्पर्य आकाशके स्थानका है। आकाशके छोटेसे छोटे स्थानका नाम प्रदेश है। जिस प्रकार पुद्गलके छोटेसे-छोटे भागका नाम परमाणु है, उसी प्रकार यहाँ भी समझो। कल्पना द्वारा जिस प्रकार पुद्गल पदार्थको तोड़ते-तोड़ते उसका अन्तिम छोटा भाग प्राप्त किया गया था, जिसका कि आगे भाग किया जाना सम्भव नही था और उसे परमाणु कहा गया था, उसी प्रकार यहाँ भी आकाशको कल्पना द्वारा खण्डित करते-करते इसका जो ऐसा अन्तिम भाग प्राप्त हो, जिसका आगे खण्ड किया जाना सम्भव न हो, उसे प्रदेश कहते हैं। जिस प्रकार परमाणुका कोई आदि, मध्य, अन्त या लम्बाई, चौडाई, मोटाई नही है, जिस प्रकार परमाणु स्वयं ही अपना आदि है, वही अपना मध्य है और वही अपना अन्त है, जिस प्रकार परमाणुकी लम्बाई भी परमाणु मात्र है, उसकी चौडाई भी परमाणु मात्र है और उसकी मोटाई भी परमाणु मात्र ही है; उसी प्रकार प्रदेशकी लम्बाई-चौडाई-मोटाई भी प्रदेश मात्र ही है।

सरल रूपसे समझनेके लिए यह कह सकते हैं कि एक परमाणु आकाशका जितना स्थान घेरकर रहे उसे प्रदेश कहते हैं। अर्थात् आकाशको मापनेका गज परमाणु है। उससे प्रदेश प्राप्त होता है। आकाशके जितने स्थानको मापना हो उसके प्रदेश गिन लीजिए, बस उतना ही वह आकाशका क्षेत्र कहलाता है। इस प्रकार किसी भी पदार्थका अपना क्षेत्र भी उतना ही है जितने आकाशके क्षेत्रको वह घेरकर रह सके। क्योकि आकाशका परिमाण प्रदेशोकी

गणनासे जाना जाता है इसलिए सभी पदार्थोका आकार या क्षेत्र भी प्रदेशकी गणनासे जाना जाता है ।

९. लोकका माप

लोकको मापनेके लिए, इस मनुष्याकार पूर्वोक्त आकारमे प्रदेशोको गिननेपर, वे असख्यात होते है, अर्थात् इतने होते हैं जिन्हे कि हम गणित द्वारा गिन न सकें, इसलिए लोकाकाश असंख्यात-प्रदेशी है । इसे भी स्पष्ट करनेके लिए यो कह लीलिए कि यदि लोकके इस पूर्वोक्त आकारमे परमाणुओको नीचेसे ऊपर तक तहपर तह लगाते हुए चिनना प्रारम्भ करें तो, निचली तहमे असख्यात परमाणु आते है, उससे ऊपर-ऊपरवाली भी प्रत्येक तहमे असंख्यात-असख्यात ही परमाणु समझना । इन सब परमाणुओका जोड़ करें तब भी असंख्यात ही रहते हैं, अनन्त नही हो पाते ।

असंख्यातके अनेको भेद किये जा सकते हैं—छोटा असख्यात, उससे बड़ा असख्यात, उससे भी बडा असख्यात आदि । अकोकी गणनामे तो इसे छोटा-बडा कहनेकी आवश्यकता नही पडती, क्योकि वहाँ तो हम अकका नाम ले देते हैं परन्तु जहाँ अकका नाम लिया जाना सम्भव न हो वहाँ तो छोटा-बडा ही कहना पडेगा । जहाँ तक गणना या गणित काम करता है वहाँ तक सख्यात कहा जाता है । सख्यातके बडेसे बड़े अकके ऊपर जाकर छोटेसे छोटा असख्यात प्राप्त होता है । उसमे एक-एक अक जोडते जानेपर वह सभी ऊपर-ऊपरके असख्यात कहे जाते हैं । इस प्रकार असख्यात बार बढा देनेपर इसका जो बडे से बडा रूप प्राप्त हो जाता है, वह उत्कृष्ट असख्यात है, उससे ऊपर जानेपर जघन्य या छोटा से छोटा अनन्त प्राप्त होता है । इसके भी असख्यातवत् जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद किये जा सकते हैं ।

इसलिए ऊपरके कथनसे भ्रम मे न पडना। लोकके आकारमे पाँववाले निचले भागमे अधिक प्रदेश है और नाभिस्थलपर कम हैं, क्योकि नीचे यह फैला हुआ है और बीचमे सिकुडकर छोटा हो जाता है। परन्तु फिर भी नीचेवाली तहमे असख्यात ही प्रदेश हैं और बीचके भागमे भी। सारी तहोको मिलानेपर भी असख्यात ही प्रदेश हैं। इतना ही नही, सूईकी नोक जितने आकाशमे भी असख्यात ही प्रदेश हैं, सूक्ष्म जीवके शरीर जितने आकाशमे तथा हाथी-जैसे जीवके शरीर जितने आकाशमे भी असख्यात ही प्रदेश कहे जाते हैं। वहाँ अपनी बुद्धिसे यथायोग्य छोटा-बड़ा असंख्यात जान लेना। असख्यात कह देनेसे सब बराबर नही हो जायेंगे। बडा-बड़ा ही रहेगा और छोटा छोटा ही। कहनेमे न आवे तो अन्य कोई उपाय नही। इसीसे सर्वत्र असख्यात कह दिया जाता है। परन्तु अभ्यास हो जानेपर तथा आकार आदिका ठीक-ठीक बोध हो जानेपर स्वत. उस असख्यातकी गणनामे हीनाधिकता दिखाई देने लग जाती है।

क्योकि लोक असख्यात-प्रदेशी है इसलिए इसमे रहनेवाला कोई भी पदार्थ असख्यात प्रदेशसे अधिक नही हो सकता। अतः लोकके सर्व ही छोटे-बडे जीवोको तथा पुद्गल स्कन्धोको असख्यात प्रदेशवाला ठीक ही कहा गया है। जीव पूराका पूरा फैल जानेपर जब सम्पूर्ण लोकमे व्याप्त हो जाता है तब उसका आकार लोकाकाश जितना होता है। इससे अधिक फैलना उसके लिए असम्भव है इसलिए उसे लोक प्रमाण असख्यात प्रदेशी कहा गया है। सिकुडकर छोटे-बडे शरीरोमे रहनेपर उतने ही आकाश जितना हीनाधिक असख्यात प्रदेशवाला कहा जाता है। उस अवस्थामे मूल प्रदेश लोक प्रमाण रहते हुए भी सिकुड जानेके कारण शरीरके आकारकी अपेक्षा वह थोडे असख्यात प्रदेशवाला कहा जाता है।

१०. बड़ा पदार्थ थोड़ेमे कैसे समाये

इसी प्रकार पुद्गल स्कन्धोमे यद्यपि परमाणुओकी गणना करनेपर वे अनन्त प्राप्त होते हैं, परन्तु आकारकी अपेक्षा तो वह भी लोकमे मात्र थोड़े ही असख्यात प्रदेश घेरता है। इसमे भी एक रहस्य है जो आगे बताया जायेगा। यहाँ तो केवल इतना ही समझ लीजिए कि जितने प्रदेश या परमाणु किसी पदार्थमे हो वह उतनी ही जगह घेरे यह कोई आवश्यक नही। अधिकसे अधिक उतनी ही जगह घेर सकता है यह तो ठीक है परन्तु उससे कम जगहमे न रह सके यह बात ठीक नही। कम जगहमे भी वह रह सकता है, क्योकि जिस प्रकार जीवके प्रदेश सिकुडकर एक दूसरेमे समा जाते हैं उसी प्रकार पुद्गल स्कन्धोमे भी अनेक परमाणु एक दूसरेमे समा सकते हैं।

११. आकाश द्रव्यकी सिद्धि

आकाश भले ही एक पोलाहट मात्र प्रतीत होता हो, और इसपर-से भले ही आप इसे कल्पना मात्र या अभाव मात्र रूपसे देखते हो परन्तु वास्तवमे यह भी एक पदार्थ है, बिलकुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि जीव तथा पुद्गल। अमूर्तिक होनेके कारण इसका स्पर्श हम कर नही पाते और व्यापक होनेके कारण इसकी सीमाएँ भी देख नही सकते, इसलिए ऐसा प्रतीत होने लगता है कि यह केवल पोल है कोई स्वतन्त्र पदार्थ नही है पर यह आपकी दृष्टिका दोष है। सभी अमूर्तिक पदार्थ ऐसे ही होते है। जीव भी अमूर्तिक है और आंखोसे प्रत्यक्ष नही देखा जा सकता, फिर भी शरीरमे रहनेके कारण उसके कार्योंका अर्थात् सुख दु'ख वेदन करनेकी सीमाओ का अनुभव तो प्रत्यक्ष करते ही हैं। इसलिए वहाँ ऐसी आशका होनी सम्भव नही है, पर यहाँ न तो सीमा है और न किसी कार्यका प्रत्यक्ष, इसलिए ऐमी आशका होनी स्वाभाविक है। परन्तु आप

फिलॉस्फर बनकर निकले है, आपके जाननेका ढग इन्द्रियोके आश्रित नही, सिद्धान्तके अनुकूल होना चाहिए।

सिद्धान्त है यह कि कोई भी गुण अपने किसी प्रदेशात्मक सत्ताभूत पदार्थसे पृथक् स्वतन्त्र नही रह सकता। यहाँ भी एक महान् गुण पाया जाता है—सब पदार्थोंको रहनेके लिए जगह देना, जहाँ कही भी उन्हे किसी प्रकारकी बाधा न होने पावे। इस गुणको आगममे अवगाहनत्व कहते हैं। अवगाहका अर्थ स्थान है और अवगाहनत्वका अर्थ है स्थान-दान-शक्ति। यह महान् गुण बिना किसी द्रव्यके स्वतन्त्र नही रह सकता, अतः उसको धारण करनेवाले पदार्थका नाम है—आकाश।

१२ व्योम-मण्डलकी विचित्रता

अवगाहनत्व नामका यह गुण भी काल्पनिक नही है। इस गुणका बडा महान् कार्य आज प्रत्यक्ष देखा जाता है। केवल स्थान दे देना मात्र हुआ होता तब तो सम्भवत: आपकी शंका ठीक भी होती, परन्तु यहाँ इतना मात्र नही है। इसकी सहायतासे ही आजका विज्ञान व्योम-मण्डलको चीरकर दूर-दूरके आकाशमे अपने स्पुत्निक पहुँचानेको तथा उन्हे वहाँ ठहरानेको समर्थ हुआ है।

वह कौन शक्ति है जिसने सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि इन महान् पृथ्वी पिण्डोको अधरमे टिकाया हुआ है। आपको ऐसा भान होता है कि यह पृथ्वी जिसपर हम रहते हैं यह तो ठीक टिकी हुई है, परन्तु जो चन्द्र, सूर्य आदि ऊपर दिखाई देते हैं, वे अवश्य अधरमे लटके हुए हैं। परन्तु वास्तवमे पृथ्वी भी उन्हीकी भाँति अधरमे लटकी हुई है। दूरसे देखनेके कारण सूर्य, चन्द्र आदिकी सीमाएँ दिखाई देती हैं, इसलिए वे अधर लटके दिखाई देते हैं। निकटसे देखनेके कारण पृथ्वीके ओर-छोर दिखाई नही पडते, इसीसे यह

टिकी हुई दिखाई देती है। यदि चन्द्रमामे बैठकर देखें तो यह पृथ्वी, चन्द्रमा या सूर्यकी भाँति अधर एक गोल पिण्ड दिखाई देगी और चन्द्रमा टिका हुआ दिखाई देगा। यह सब तो हमारी सकुचित दृष्टिका भ्रम है। वास्तवमे यह सभी बडे-बड़े भारी गोले इस आकाशमे लटके हुए है। इतना ही नही बल्कि अपनी-अपनी सीमाओमे रहते हुए बराबर एक दूसरेके गिर्द चक्कर काट रहे है, और स्वयं अपने आप भी लट्टूकी भाँति घूम रहे हैं।

पृथ्वी आदिको अधरमे टिकानेके लिए किसी ताकतका प्रयोग किया जा रहा हो सो भी नही है। फिर ये नीचे क्यो नही गिर जाते ? ऐसा प्रश्न बेकार है। नीचे गिरकर कहाँ जायेंगे ? जहाँ भी जायेंगे वहाँ आकाश है। आप नीचे किसे कहते हैं, क्या पृथिवीको ? अरे भाई ! पृथ्वी स्वय अधरमे लटकी हुई है। यह स्वय गिरकर कहाँ जायेगी ? इसी प्रकार एक-दो नही असंख्यात पृथ्वियाँ और असख्यात सूर्य-चन्द्र इस व्योम-मण्डलमे अधर लटके हुए हैं। लटके हुए न कहकर यही कहना चाहिए कि सब अपने-अपने स्थानपर टिके हुए हैं। प्रत्येक पृथ्वी-मण्डलपर या सूर्य-चन्द्रादिपर रहनेवाला व्यक्ति हमारी ही भाँति अपनी पृथ्वीको नीचे मानता है और दूसरी पृथ्वियोको ऊपर। उसे अपनी पृथ्वीके गिरनेका भय नही होता, क्योकि अपने पाँवके नीचे उसे पोलाहट दिखाई नही देती। बिलकुल इसी प्रकारकी पोलाहट हमारी और सबकी पृथ्वियोंके नीचे ही नही चारो तरफ भी है। इन सबका पोलाहटोमे सुरक्षित टिकाये रहना ही आकाशका 'अवगाहनत्व' गुण है, जो साधारण-सी बात नही बल्कि महान् है, सार्थक है।

अरे ! पृथ्वियाँ ही नही यदि कोई भी पदार्थ शुद्ध आकाशमे जाकर रहना चाहे, तो रह सकता है। किसी भी आधार या पृथ्वी आदिकी आवश्यकता उसे नही है। यह जो पदार्थ ऊपरसे

नीचे पृथ्वीपर गिरते दिखाई देते हैं, सो आकाशका दोष नही, और न ही बहुत अधिक दूर तक यह बात पाई जाती है। यह तो पृथ्वीको कोई आकर्षण शक्ति है। प्रत्येक पृथ्वी या चन्द्र-सूर्य आदिमे पृथक्-पृथक् उन-उनकी शक्ति है। इस शक्तिका अधिकार अपनी-अपनी पृथ्वीके चारो तरफ कुछ सौ मील तक ही है उससे आगे नही। जहाँ तक यह शक्ति है वहाँ तक ही पदार्थ नीचेकी ओर गिरते दिखाई देते हैं, परन्तु उससे आगे जहाँ उस शक्तिका अधिकार समाप्त हो जाता है और वह मन्द पडते-पडते समाप्त हो जाती है, वहाँ केवल शुद्ध आकाश (Space) होता है। उस आकाशमे जिस भी पदार्थको जहाँ भी रख दिया जाये वहाँ ही रखा रहेगा। इधर-उधर न सरकेगा न गिरेगा। यदि पदार्थको चलाकर वहाँ छोड दिया जाये तो वह वहाँ सदा चलता ही रहेगा, जैसे कि पृथ्वी आदि।

आकाशमे पदार्थोंको इस प्रकार चलते रहनेके लिए किसी शक्ति-विशेषका प्रयोग करना पडता हो सो भी नही है। विज्ञान द्वारा आकाशमे भेजे गये अनेको स्पुत्निक आज व्योम-मण्डलमे बराबर सचार कर रहे हैं। क्या आप समझते हैं कि उनमे कोई इजिन लगा है जो उन्हें घुमा रहा है। ऐसा भ्रम हो तो निकाल दीजिए। वे स्पुत्निक बिना किसी इजिन आदिके स्वयं घूम रहे हैं, और उसी दिशाकी ओर घूम रहे है जिस दिशामे चलते हुए कि उन्हें छोडा गया है। उन्हें अपने इस चलनेमे किसी भी इजिन आदिकी आवश्यकता नही पडती। साधारण वायुयान तो उस क्षेत्रमे घूमते हैं जहाँ तक कि पृथ्वीकी आकार्षण शक्तिका अधिकार है और इसलिए उन्हे अपना भार वहन करने तथा अपनेको चलानेके लिए शक्तिकी आवश्यकता पड़ती है, परन्तु स्पुत्निक शुद्ध आकाशमे पहुँच चुके हैं, ... किसी भी पृथ्वीकी आकर्षण

शक्तिका अधिकार नही है, इसलिए उन्हे अपना भार वहन करनेके लिए तथा अपनेको चलाते रखनेके लिए किसी शक्तिकी आवश्यकता नही है।

कहाँ तक कहे इस व्योम-मण्डलकी विचित्रता। साधारण बुद्धिकी पहुँचसे वह बाहर है। केवल व्यापक दृष्टि ही उसे देख सकती है। व्योम-मण्डलकी विचित्रता तो उससे भी अधिक महान् है, जितनी कि आजका विज्ञान जानता है। साधारण बुद्धि जब इस रहस्यको न जान सकी तो उसे ईश्वर नामकी शक्तिका आश्रय लेकर अपने चित्तको सन्तुष्ट करना पडा। पृथिवी-चन्द्र आदि बड़े-बड़े पिण्डोको अधरमे थाम रखनेवाला ईश्वर ही है, ऐसी कल्पना जगतको करनी पडी। क्या ही अच्छा होता कि ईश्वर नामकी पृथक् शक्तिको स्वीकार करनेकी बजाय आकाशकी ही विचित्र शक्तिको स्वीकार कर लिया होता। इसका यह अर्थ नही कि मैं ईश्वरका निषेध कर रहा हूँ, बल्कि यह है कि ईश्वर तो अवश्य है, परन्तु व्योम-मण्डलकी इस विचित्र रचनामे उसका कुछ हाथ नही है। यह सब आकाश पदार्थकी विचित्र जो अवगाहनत्व शक्ति है उसका चमत्कार है।

अवगाहनत्व गुणके इस चमत्कारिक कार्यको देख-जानकर भी कौन यह कह सकता है कि आकाश कल्पना है। पदार्थोंको अपने-अपने स्थानपर टिकाये रखनेवाला, जो कुछ भी है वही तो आकाश नामसे कहा जा रहा है। वह अमूर्तिक तथा व्यापक होनेके कारण केवल पोल मात्र दिखाई देता है। वास्तवमे वह एक सत्ताभूत पदार्थ है, जो सदासे है और सदा रहेगा। न इसको किसीने बनाया है और न इसका कोई नाश ही कर सकता है।

१३. अवगाहनत्व गुण

खाली आकाशमे पदार्थका अपने-अपने स्थानमे टिककर रहने को अवगाह पाना कहते हैं। आकाशमे यह अवगाह जिस शक्तिके कारणसे पाया जाता है उसे आकाशका अवगाहनत्व गुण कहते हैं। अवगाहनका इतना ही अर्थ नही कि पृथक्-पृथक् पदार्थ अपने अपने पृथक्-पृथक् स्थानमे ठहरे रहे, बल्कि यह है कि पदार्थ जहाँ कही भी चाहे वहाँ ठहर जायें। इस प्रकार इस गुणकी विचित्रताके कारण एक पदार्थ दूसरे पदार्थके भीतर प्रवेश भी पा सकता है, और प्रवेश पाकर उसके भीतर ठहर भी सकता है, जैसे कि संकोच हो जानेपर जीवके प्रदेश परस्पर एक दूसरेके भीतर प्रवेश पाकर ठहर जाते हैं, या दीपकका प्रकाश दूसरे दीपकके प्रकाशके भीतर प्रवेश पाकर ठहर जाता है।

यद्यपि यह बात कुछ असम्भव-सी प्रतीत होती है कि एक पदार्थ दूसरेमे प्रवेश पाये परन्तु वास्तवमे यह होता अवश्य है। यदि ऐसा न हुआ होता तो लोकमे अधिकसे अधिक असख्यात ही परमाणु हुए होते, जिनके मिलनेसे एक सरसोके दाने जितना भी स्कन्ध बनने न पाता। इतनी बड़ी सृष्टि कहाँसे आती? यदि सूक्ष्म से सूक्ष्म भी पुद्गल स्कन्धको तोडा जाये तो उसमे-से इतने परमाणु निकल पड़ेगे कि यदि उन्हे बिखेर दिया जाये तो अनन्त लोकोमे भी न समावें।

आपकी आशंका इसलिए है कि आपकी दृष्टि स्थूल है। आप इन्द्रियोसे जो कुछ भी देखते है वह सब स्थूल है, और स्थूल होनेके कारण वे पदार्थ एक दूसरेमे नही समा सकते, बल्कि टकराकर पीछे हट जाते हैं, जैसे कि यह हाथ इस दूसरे हाथके साथ टकरा-कर पीछे हट जाता है, भीतर नही समा सकता। मैंने पहले

सूक्ष्म-स्थूल पुद्गल पदार्थका परिचय देते हुए बताया था कि सूक्ष्म कहते ही उसे है कि जो दूसरे पदार्थके भीतर प्रवेश पा जाये या समा जाये, और स्थूल पदार्थ वह है जो कि किसीके भीतर प्रवेश न पा सके। उनमे भी स्थूलता तथा सूक्ष्मताका तारतम्य पाया जाता है, जिसे दर्शानेके लिए उनको छह कोटियोमे विभाजित किया गया था। वहाँ देखनेपर पता चलता है कि जितना जितना पदार्थ सूक्ष्म होता चला जाता है, उसमे उतनी-उतनी ही अन्य पदार्थोंमे प्रवेश पाने या समा जानेकी शक्ति प्रकट होती चली जाती है।

बहुत बडी फैली हुई वायुके कण एक दूसरेमे समामर एक ट्यूब-जैसे छोटे स्थानमे रह जाते हैं। एक घडे-भर ऊँटनीके दूधमे एक घडा शहदका समा जाता है। पूरे भरे हुए पानीके गिलासमे एक चमचा नमकका समा सकता है। प्रकाश शीशेमे प्रवेश पा जाता है तथा अन्य प्रकाशोमे समा जाता है। ये पदार्थ तो स्थूल तथा स्थूल-सूक्ष्म है। एक्सरेकी किरणें, चुम्बककी किरणें तथा रेडियोकी विद्युत तरगें जो कि सूक्ष्म-स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ हैं, प्रत्यक्ष अन्य पदार्थमे प्रवेश पाकर समाते हुए देखे जाते है। यद्यपि साधारण प्रकाश शरीरसे रुक जाता है परन्तु एक्सरे शरीरमे-से आर-पार हो जाता है और सामनेवाली प्लेटपर शरीरके अन्दरका फोटो खिंच जाता है। एक लकडीके टुकडेके नीचेकी तरफ लगाकर चुम्बकको घुमावें या चलावें तो ऊपरवाले लोहाणु भी तदनुशार ही घूमने तथा चलने लगते है, जिससे पता चलता है कि चुम्बककी सूक्ष्म किरणें लकडीके भीतर प्रवेश पा गयी है। रेडियोकी विद्युत तरगें पर्वतो तकको भेदकर दूर-दूर देशोसे हमारे पास चली आती है। ताँबेके ठोस तार के भीतर बिजलीकी करेंट रूपसे एलैक्ट्रोनोका प्रवाह सबके प्रत्यक्ष है। अत. आजके वैज्ञानिक युगमे ऐसी आशका करना योग्य नही,

कि एक पदार्थ दूसरेमे कैसे समाये ।

आकाशके प्रदेश केवल असंख्यात हैं और उनमे स्थान पाने वाले पदार्थ अनन्तानन्त है। इसका कारण केवल यही है कि वे अनन्तानन्त तदार्थ एक दूसरेमे समा सकते हैं, क्योकि अमूर्तिक पदार्थ होते ही सूक्ष्म है जो परस्परमे टकरा नही सकते। केवल मूर्तिक पुद्गल पदार्थ ही ऐसा है जो कि स्थूल हो सकता है तथा एक दूसरे से टकराता हुआ देखा जाता है। परन्तु इसके भी छह भेदोमे-से जो अन्तिम दो भेद अर्थात् सूक्ष्म स्कन्ध तथा सूक्ष्म-सूक्ष्म स्कन्ध है, वे भली प्रकार एक-दूसरेमे समाकर रह सकते हैं। यदि स्थूल होनेके कारण कोई पदार्थ दूसरेमे न समा सके तो इसमे आकाशके अवगाहनत्व गुणका दोष नही है। यह तो उसकी अपनी स्थूलताका दोष है। आकाशके अवगाहनत्व गुणकी तरफसे तो सबको छूट है कि कोई भी पदार्थ कही भी रह जाय, उसमे रहनेको योग्यता होनी चाहिए। यदि सारे लोकके पदार्थ सूक्ष्म बनकर चले आयें तो आकाशके एक प्रदेशपर समा सकते हैं। यही है अवगाहनत्व गुणकी विचित्र सामर्थ्य।

१४. आकाशका स्वभाव-चतुष्टय

अन्य पदार्थोंकी भाँति आकाशका भी स्वभाव-चतुष्टयकी अपेक्षा विश्लेषण किया जा सकता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव ये चार बातें ही स्वभाव-चतुष्टय कहलाती हैं। इनकी अपेक्षा आकाशका पृथक्-पृथक् विचार कीजिए।

द्रव्यकी अपेक्षा विचार करनेपर सामान्य रूपसे आकाश अनन्त प्रदेशोवाला एक अखण्ड द्रव्य है, परन्तु विशेष रूपसे लोकाकाश तथा अलोकाकाशमे विभाजित हो जानेके कारण वह दो प्रकारका है। तथा इसमे भी यदि पृथक्-पृथक् प्रदेशोको देखा जाय तो वह

अनन्त है। क्षेत्रकी अपेक्षा विचार करनेपर सामान्य रूपसे आकाश सर्वव्यापक है, परन्तु विशेष रूपसे असख्यातप्रदेशी लोकाकाश मनुष्याकार है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार घटाकाश अर्थात् घडे के बीचका आकाश घडेके आकारका है, जिस प्रकार मठाकाश (मन्दिरके भीतरका आकाश), मुखाकाश (मुखके भीतरका आकाश) मठ तथा मुख आदिके आकारके है, इसी प्रकार वह शरीराकारकी अपेक्षा भिन्न-भिन्न सीमित आकारोवाला भी है।

कालकी अपेक्षा विचार करनेपर सामान्य रूपसे आकाश नित्य है, परन्तु विशेष रूपसे लोकके पदार्थोमे परिवर्तन होते रहनेके कारण लोकमे भी परिवर्तन या अनित्यता देखनेका व्यवहार चलता ही है। भावकी अपेक्षा विचार करने पर सामान्य रूपसे आकाशमे एक अवगाहनत्व गुण है जो प्रत्येक पदार्थको अवकाश देता है, परन्तु विशेष रूपसे देखनेपर सूक्ष्म पदार्थोको ही अन्य पदार्थोमे रहनेके लिए अवकाश देता है स्थूल पदार्थोको नही।

१५ आकाशको जाननेका प्रयोजन

इस सर्व-व्यापी अखण्ड आकाशके एक-एक प्रदेशपर अनन्तानन्त पदार्थ ठसाठस भरे पडे हैं, और वहाँ रहते हुए अपना नाटक खेल रहे हैं। स्थूल दृष्टिमे स्थूल सृष्टि तो आती है परन्तु आकाश-प्रदेशकी यह सूक्ष्म सृष्टि नही आती। सैद्धान्तिक दृष्टि द्वारा आप यदि इस सूक्ष्म सृष्टिको भी देख सकें तो इस स्थूल जगत्का कुछ भी महत्व आपकी दृष्टिमे रह न जाय। आपकी सब वासनाएँ तथा कामनाएँ स्वतः शान्त हो जायें और आपका जीवन प्रकाशित हो उठे। आप यदि विश्वको सकुचित दृष्टि न देखकर व्यापक दृष्टिसे देखने लगें तो आपको घर, नगर, देश, पृथ्वी आदि भी परमाणुवत् भासने लगें। सकल लोकके समान इन सबका कोई मूल्य न रह जाय। तब आप सर्वज्ञ हो जायें। आपका जीवन खिल उठे। यही है आकाशकी व्यापकताको जानने का प्रयोजन।

१०

धर्म-अधर्म पदार्थ

१ जीव पुद्गल सहायक, २. धर्म-अधर्म द्रव्यके आकार, ३. धर्म-अधर्म का कार्य, ४ लोकालोक विभाग, ५ धर्म द्रव्यकी सिद्धि, ६ धर्म-अधर्म के स्वभाव-चतुष्टय ।

१. जीव पुद्गल सहायक

लोकमे जीव तथा पुद्गल ये दो ही पदार्थ हैं, जिनके द्वारा कि सृष्टि रची गयी है। इनके अतिरिक्त जो शेष चार पदार्थ हैं—वे केवल इन दोनोके उपकारी मात्र हैं। उनका अपना कोई स्वतन्त्र कार्य नही है। जिस प्रकार कि आकाश केवल दो मूल पदार्थोंको स्थान या अवकाश देकर इन दोनोका उपकार मात्र करता है अपना कोई स्वतन्त्र कार्य नही करता, इसी प्रकार शेष द्रव्योके सम्बन्धमे भी जानना ।

जीव तथा पुद्गल इन दोनो पदार्थोंमे दो प्रकार के कार्य होते हैं— एक भावात्मक और दूसरा क्रियात्मक । पदार्थके भीतर ही जो उसके अपने गुणोमे परिवर्तन होता है उसे भावात्मक कार्य या पर्याय कहते हैं, जैसे कि जीवमे रागसे द्वेष अथवा इस प्रकारके ज्ञानसे उस प्रकारका ज्ञान हो जाना और पुद्गलमे हरेसे पीला तथा खट्टेसे मीठा हो जाना । पदार्थके बाहर उसके स्थानमे अथवा उसके आकार मे जो परिवर्तन होता है उसे क्रियात्मक कार्य या पर्याय कहते हैं। जीवके प्रदेशोमे सकोच विस्तार द्वारा उसके आकारमे परिवर्तन होना तथा उसका एक स्थानसे दूसरे स्थान पर गमन

होना जीवका क्रियात्मक कार्य या पर्याय है। इसी प्रकार पुद्गल स्कन्धके प्रदेशोमे अनेक परमाणुओका एक दूसरेके भीतर समा जाना, अथवा उन परमाणुओंके भीतरसे बाहर निकलनेके कारण उसके आकारमे परिवर्तन होना, तथा परमाणुओ या स्कन्धोका एक स्थानसे दूसरे स्थानपर गमन करना, पुद्गलका क्रियात्मक कार्य या पर्याय है।

भावात्मक तथा क्रियात्मक इन दोनो कार्यों या पर्यायोमे यह अन्तर है कि भावात्मक कार्य या पर्याय तो भीतर ही भीतर स्वयं होती रहा करती है, किसी दूसरेके देखनेमे नही आती, परन्तु क्रियात्मक कार्य या पर्यायमे हलन-चलन होती है जो बाहरमे देखनेमे आती है। भावात्मक कार्य या पर्यायका सम्बन्ध समय या कालकी अपेक्षा रखता है, क्योंकि ज्यो-ज्यो काल बीतता रहता है भीतरके गुण भी परिवर्तन करते रहते हैं। इसी प्रकार उनके क्रियात्मक कार्य या पर्यायका सम्बन्ध अन्य तीन पदार्थोंकी अपेक्षा रखता है—आकाश तथा धर्म अधर्म नामवाले दो अन्य पदार्थ जिनका स्वरूप यहाँ दर्शाना इष्ट है।

इस प्रकार जीव तथा पुद्गलके इन दोनो प्रकारके कार्योंमे सहायक होनेवाले चार पदार्थ हैं—आकाश, धर्म, अधर्म तथा काल। इनमे-से आकाशका कथन कर दिया गया, जिसका काम जीव तथा पुद्गलको रहनेके लिए स्थान देना तथा उनके प्रदेशोको एक दूसरेके भीतर अवकाश पानेमे सहायता देना है। अब यहाँ धर्म तथा अधर्मका कथन करेंगे, और काल द्रव्यका परिचय पीछे दिया जायेगा।

२. धर्म-अधर्म द्रव्यके आकार

धर्म या अधर्म ये दो शब्द यहां पुण्य तथा पापके अर्थमे प्रयोग

नहीं हो रहे है इतना समझते रहना, क्योकि पदार्थ-विज्ञानका प्रकरण चल रहा है। धर्म और अधर्म ये दोनो यहाँ विशेष प्रकारके द्रव्य स्वीकार किये गये हैं जो यद्यपि अमूर्तिक हैं परन्तु अपनी कुछ लम्बाई, चौडाई, मोटाई रखते है, जैसे कि जीव पदार्थ। इन दोनोका आकार जीव पदार्थकी भाँति लोककाश जितना मनुष्याकार है। अत. इनके प्रदेशोकी गणना भी लोककाशके समान असख्यात हैं। जीव पादार्थ, लोकाकाश, धर्म तथा अधर्म इन चारोंके प्रदेश व आकार समान हैं। अन्तर केवल इतना है कि लोकाकाश कोई स्वतन्त्र पदार्थ नही है, केवल अखण्ड व्यापक अनन्त आकाशका एक कल्पित भाग मात्र है, और शेष तीन पदार्थ अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं। तिनमे भी जीव तो सकोच-विस्तारके कारण अपने पूरे लोकाकाश प्रमाण आकारको कदाचित् ही दर्शाता है अन्यथा छोटे-बडे चित्र-विचित्र प्रकारके आकारोवाले शरीरोमे ही रहता है, परन्तु धर्म तथा अधर्म तीनो कालोमे आकाशवत् लोकाकाशमे व्यापकर रहते हैं। ये न सिकुडते है न विस्तार पाते हैं, सदा लोकाकाशके समान पुरुषाकार रूपमे स्थित रहते हैं। ये दोनो पदार्थ लोकाकाश प्रमाण असख्यात-प्रदेशी है।

३ धर्म-प्रधर्म द्रव्यका कार्य

यह दोनो ही पदार्थ जीव तथा पुद्गलको मात्र सहायक ही होते है, अपना कोई स्वतन्त्र कार्य नही करते। जीव तथा पुद्गल ये दोनो जो इस लोकाकाशमे इधरसे उधर और उधरसे इधर घूमते-फिरते है, उसमे इन्ही दोनो पदार्थोका उपकार है। जीव तथा पुद्गल जब जहाँ चाहे चले जायें और जब जहाँ चाहे रुक जायें, ऐसे इनमे दो प्रकारका कार्य देखा जाता है—चलनेका तथा रुकनेका। चलनेके कार्यमे भी दो बातें है—स्थूल तथा सूक्ष्म। स्थूल चलना तो सबको दिखाई देता है कि पदार्थ एक स्थानसे हटकर

दूसरे स्थानपर चला गया, परन्तु सूक्ष्म चलना पदार्थके अन्दर ही अन्दर उसके प्रदेशो तथा प्रमाणुओमे होता है। उनका बाहरकी तरफको निकलना या फैलना ही वह अदृष्ट सूक्ष्म कार्य है। भले ही मूल पदार्थ अपने स्थानसे न हिले परन्तु उसके भीतरी प्रदेशोका अथवा परमाणुओ का जो बाहरकी ओर फैलना होता है अथवा भीतरकी ओर सिकुडना होता है उसके लिए उन प्रदेशोको भी अपने स्थानसे हिलना होता ही है, जो अदृष्ट है। इस स्थूल तथा सूक्ष्म दोनो प्रकारके चलनेमे जो सहायता दे उसे धर्म द्रव्य कहते हैं। इसी प्रकार ठहरनेके कार्यमे भी दो बातें देखी जाती हैं— स्थूल तथा सूक्ष्म। स्थूल ठहरना तो सबको दिखाई देता है कि पदार्थ चलता-चलता रुक गया, परन्तु सूक्ष्म ठहरना पदार्थके मुडनेके समय होता है। चलता-चलता ही पदार्थ यदि मुड़ना चाहे तो उसे मोड़पर जाकर क्षण-भरको ठहरना अवश्य पडेगा। भले ही वह ठहरना दृष्टिमे न आये पर होता तो है ही। इन स्थूल तथा सूक्ष्म दोनो प्रकारके ठहरनेमे जो सहायता करे उसे अधर्म द्रव्य कहते है।

इसपर-से यही समझना कि धर्म द्रव्य जीव तथा पुद्‌गलको गमन करनेमे या फैलने-सिकुडनेमे सहायक होता है और अधर्म द्रव्य इन दोनोको ठहरनेमे या मुड़नेमे सहायक होता है। यहाँ ठहरनेका अर्थ चलते-चलते ठहरना है। आकाश जो सर्वदा ठहरा ही रहता है उसको भी ठहरनेमे अधर्म द्रव्य सहायक होगा ऐसा न समझना, क्योकि जो चलता ही नही उसके ठहरनेका प्रश्न ही क्या? अतः धर्म व अधर्म केवल जीव तथा पुद्‌गलको ही सहायक हैं, आकाशको अथवा स्वयं अपनेको नही क्योकि ये दोनो द्रव्य भी न स्वयं चलते हैं और न चलते-चलते ठहरते हैं। ये दोनो केवल आकाशवद् लोकाकाशमे व्याप कर स्थित रहते हैं।

इनकी सहायताका भी यह अर्थ न समझना कि ये जीव तथा पुद्गलको ज़बरदस्ती चलाते या ठहराते अथवा मोडते हैं। स्वतन्त्रतासे जीव तथा पुद्गल जब स्वय चलना या ठहरना चाहे तो ये द्रव्य सहायक मात्र होते हैं। अर्थात् ये उन्हे ज़बरदस्ती न चलाते हैं, न ठहराते या मोडते हैं, परन्तु इतना अवश्य है कि यदि ये न हो तो वे पदार्थ चल-ठहर तथा मुड नही सकते। जैसे कि मछली पानीमे चलती हैं, तहाँ पानी उसे जबरदस्ती चलाता हो सो बात नही है। मछली स्वतन्त्रतासे स्वयं ही चलती है, परन्तु यदि जल न हो तो चलना चाहकर भी वह चल न सके। इसी प्रकार गर्मीके दिनोमे घूप मे चलता हुआ पथिक वृक्षके सायेमे विश्राम पानेको ठहर जाता है। तहाँ वृक्ष उसे ज़बरदस्ती नही ठहराता। पथिक स्वतन्त्र रूपसे स्वय ठहरता है, परन्तु यदि वृक्ष न होता तो ठहरना चाहते हुए भी वह ठहर न सकता। यहाँ जीव तथा पुद्गल के लिए धर्म द्रव्यको ऐसा समझो जैसे मछलीको पानी और अधर्मको ऐसा समझो जैसे कि पथिकको वृक्ष।

४. लोकालोक विभाग

एक व्यापक अनन्त आकाशमे लोकाकाश तथा अलोकाकाशरूप विभाग करनेके साधन भी वास्तवमे यह दोनो द्रव्य ही हैं, क्योकि इन्हीके कारण जीव तथा पुद्गलके गमन व स्थानकी सीमा बँधी हुई है। ये न होते तो वे जहाँ भी चाहते वहाँ ही चले जाते और जहाँ भी चाहते वहाँ ही जाकर रह लेते। इस प्रकार लोक तथा अलोक इन दोनोकी कोई व्यवस्था न हो सकती। परन्तु जैसे मछली चलनेकी शक्ति रखते हुए भी जलसे बाहर नही जा सकती, इसी प्रकार स्वय चलने तथा ठहरनेमे समर्थ होते हुए भी जीव तथा पुद्गल लोकसे बाहर नही जा सकते अर्थात् धर्म द्रव्यसे बाहर नही जा सकते। इसी प्रकार अधर्म द्रव्यसे बाहर ठहर भी नही

सकते। इसलिए लोकाकाश उतना ही बड़ा रह गया जितने बड़े कि धर्म तथा अधर्म द्रव्य। वास्तवमे लोकाकाशके कारण धर्म तथा अधर्म द्रव्यका वैसा आकार नही है, परन्तु धर्म तथा अधर्म द्रव्यके कारण ही लोकाकाशका वैसा आकार है।

इन द्रव्योके सीमित आकारके कारण ही जीव तथा पुद्गल लोककी सीमाका उल्लघन करके अलोकमे नही जा सकते। कुछ लोग ऐसा मानते है कि शरीरसे मुक्त हो जानेपर आत्मा सदा ऊपर-ऊपरको चढ़ता ही चला जाता है और कभी भी ठहरता नही है। अनन्तो आत्माएँ जो आज तक मुक्त हो चुकी हैं वे अब तक भी बराबर ऊपरको ही चली जा रही है। उनके इस चलनेका अन्त कभी न आयेगा क्योकि आकाशका कही भी अन्त नही है। परन्तु उनकी यह धारणा मिथ्या है। लोकाकाशके शिखरपर जहाँ कि धर्म द्रव्यकी सीमा आ जाती है, उनका चलना रुक जाता है और इस प्रकार सभी मुक्तात्मायें लोकके शिखरपर स्थित हैं।

५ धर्म द्रव्यकी सिद्धि

धर्म तथा अधर्म ये दोनो पदार्थ क्योकि बिलकुल अदृष्ट हैं, इसलिए ऐसी आशंका होने लगती है कि इन द्रव्योको माननेकी कोई आवश्यकता नही। आकाश तो फिर भी किसी न किसी रूपमे देखा जाता है परन्तु ये दोनो द्रव्य किसी भी प्रकार देखे नही जा सकते, क्योकि पहली बात तो यह है कि ये दोनो अमूर्तिक हैं, दूसरी यह है कि लोक-व्यापी होनेके कारण इनकी सीमाएँ प्रतीतिमे नही आती। परन्तु इतनेपर-से इनका अभाव नही माना जा सकता, क्योकि यह कोई नियम नही है कि जिन पदार्थोका हम प्रत्यक्ष कर सकें वे ही हैं, उनके अतिरिक्त अन्य नही है। हमारा ज्ञान बहुत अल्प है।

आज इन पदार्थोंको सिद्ध करनेमे हमे अधिक परिश्रम नही करना पडेगा क्योकि आजके विज्ञानने भी किसी न किसी रूपमे इसे स्वीकार किया है। यद्यपि पहले वे इसे स्वीकार नही करते थे, परन्तु उनके सामने यह समस्या आई कि खाली पोलाहट (Space) या आकाशमे-से यह सूर्यकी किरणें अथवा रेडियोकी विद्युत्-तरगें अथवा चुम्बक शक्तियाँ किस आधारपर गुज़र सकती हैं, जबकि वहाँ वायु ही नही है। तब उन्हे यह स्वीकार करना पड़ा कि कोई न कोई एक ऐसा अदृष्ट पदार्थ अवश्य होना चाहिए, जिसके आधारपर कि इन सबका गमनागमन सम्भव हो सके, और उस पदार्थका नाम उन्होने इथर (Eather) रखा। यह इथर पदार्थ ही हमारा 'धर्म-द्रव्य' है।

यद्यपि विज्ञानने अधर्मके स्थानपर कोई पृथक् पदार्थ स्वीकार नही किया है, परन्तु युक्ति कहती है कि वह होना ही चाहिए क्योकि यदि गमन करनेके लिए किसी सहायक पदार्थकी आवश्यकता है तो उसे ठहरनेके लिए भी सहायककी आवश्यकता अवश्य है। बस ठहरनेमे सहायक होनेवाले उस द्रव्यका नाम ही 'अधर्म-द्रव्य' है।

६. धर्म-अधर्मके स्वभाव-चतुष्टय

अन्य पदार्थोंकी भाँति इन दोनोका भी स्वभाव-चतुष्टय द्वारा विश्लेषण करके देखना चाहिए। द्रव्यकी अपेक्षा विचार करनेपर धर्म तथा अधर्म ये दोनो द्रव्य सामान्य रूपसे पृथक्-पृथक् एक-एक है, इनके कोई भी भेद नही हैं। क्षेत्रकी अपेक्षा विचार करनेपर ये पृथक्-पृथक् सामान्य रूपसे लोकाकाशके आकार प्रमाण असंख्यात-प्रदेशी हैं। कालकी अपेक्षा विचार करनेपर ये दोनो ही नित्य हैं। और भावकी अपेक्षा विचार करनेपर ये अमूर्तिक पदार्थ हैं, जिनका कार्य केवल जीव तथा पुद्गलके गमनागमनमे सहायक होना है।

✲

११

काल पदार्थ

१ कालकी विचित्रता, २ काल क्या है, ३ कालका आकार, ४ कालका गुण, ५ कालके भेद तया सिद्धि, ६ काल चक्र, ७ समय विभाग, ८ कालके स्वभाव-चतुष्टय, ९ कालको जानने-का प्रयोजन।

१. कालकी विचित्रता

विचित्र है जगत्की लीला। सब कुछ परिवर्तनशील है यहाँ, जो आज है वह काल नहीं। एक नाटक मात्र है, माया है, प्रपच है, आभास है, मिथ्या है, असत् है। मोही जीव इसमे उलझते हैं और ज्ञानी जीव इसे देखते ही नहीं। इस सब तमाशेका कारण क्या है? यह ढूँढने जायें तो भय लगता है, यह देखकर कि सभी कालके गालमे बैठे हुए है—क्या चेतन और क्या जड़। कालका व्यापक शरीर तथा उसकी भयकर दाढो मे व पंजोमे फँसा यह जगत्का प्रपच वास्तवमे न हुए के बराबर है, क्योकि जो कालका चबेना है उसका क्या भरोसा।

परन्तु वास्तवमे ऐसा नहीं है, काल भयकर नही है। मोही जीव ही इसे भयकर देखते हैं। वास्तवमे यह साम्य है, निष्पक्ष रूपसे सदा अपना काम किया करता है। इसकी दृष्टिमे जड-चेतन, रक-राव, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुषका कोई भेद नही। यह बराबर अपना काम करता हुआ जगत्के प्रत्येक पदार्थको बारी-बारीसे

अपना ग्रास बनाया करता है। काल भयकर नहीं प्रत्युत सुन्दर है, क्योकि यदि यह अखिल सृष्टि परिवर्तनशील न होती अर्थात् स्तब्ध होती तो सुन्दर भी न होती। परिवर्तन ही इसका सौन्दर्य है और वह कालका ही अनुग्रह है। ज्ञानी जीव इससे भय नही खाते। वे इसके भयसे मुक्त हैं, क्योकि वे जगप्रपचको पहलेसे ही असत् अर्थात् न हुएके बराबर जानकर उसमे फँसते नही हैं।

२ काल क्या है

परन्तु वह काल क्या बला है, जिसके कारण जगत्मे इतना आतक छाया हुआ है। भाई! वह काल अन्य कुछ नही बल्कि पदार्थोंकी पर्यायोमे नित्य होनेवाला परिवर्तन ही उसका लक्षण है। वह स्वाभाविक है, इसलिए रोका नही जा सकता। पदार्थमे दो प्रकारके परिवर्तन बताये गये है—एक भावात्मक परिवर्तन अर्थात् उसके अन्दर ही अन्दर होनेवाला गुणोका परिवर्तन और दूसरा क्षेत्रात्मक परिवर्तन अर्थात् उसके आकारका या प्रदेशोका अथवा जीव व पुद्गलका स्थानसे स्थानान्तर जाने रूप परिवर्तन। दोनो ही प्रकारके परिवर्तोके लिए कोई न कोई सहायक पदार्थ होने चाहिएँ। तहाँ क्षेत्रात्मक परिवर्तनके लिए तीन पदार्थ सहायक पड़ते है—आकाश, धर्म तथा अधर्म। आकाश द्रव्य पदार्थोंको अवगाहन देनेमे अर्थात् प्रदेशोको एक दूसरेमे समानेमे सहायक है, धर्म द्रव्य उनके प्रदेशोको बाहर निकलनेमे तथा भीतर प्रवेश पानेमे और उन द्रव्योको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर गमन करनेमे सहायक है। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य उनके प्रदेशोको मुड़नेमे तथा द्रव्योको चलते-चलते रुकनेमे सहायक है।

अब प्रश्न यह होता है कि भावात्मक परिवर्तनमे कौन सहायक है? बस उसीका नाम काल द्रव्य है। जिस प्रकार अदृष्ट होनेके

कारण धर्म व अधर्म द्रव्य साधारण विश्वासके विषय नही हैं, उसी प्रकार कालका भी कोई पृथक् कार्य देखनेमे नही आता। परन्तु जिस प्रकार युक्ति द्वारा धर्म व अधर्म द्रव्य सिद्ध होते हैं, उसी प्रकार काल द्रव्य भी सिद्ध होता है।

३. कालका आकार

वैदिक दर्शनकारोंने भी यद्यपि काल नामका पदार्थ माना है परन्तु वे इसे कोई प्रदेशात्मक पदार्थ नही मानते, जबकि जैन दर्शन-कारोका सिद्धान्त ही यह है कि यदि कोई सत्तात्मक पदार्थ है तो उसे प्रदेशात्मक होना ही चाहिए, अर्थात् उसे किसी न किसी आकारका होना ही चाहिए, भले ही वह आकार परमाणु-जैसा सूक्ष्म हो अथवा आकाश-जैसा महान्। जहाँ कही भी आकार होगा वहाँ लम्बाई, चौडाई, मोटाई होगी और जहाँ लम्बाई-चौडाई-मोटाई होगी वहाँ प्रदेश कल्पना हुए बिना रह नही सकती, क्योकि आकार बडे-छोटेकी कल्पनाका आधार है। अतः यदि काल नामका कोई पदार्थ है तो उसे अवश्य ही कुछ होना चाहिए, अर्थात् उसका कोई न कोई आकार होना चाहिए।

जैन दर्शनकार इसे परमाणुके आकारका अर्थात् एक-प्रदेशी मानते हैं। एक-प्रदेशीका यह अर्थ नही कि यह पदार्थ सख्यामे भी एक ही है। इसका केवल इतना ही अर्थ समझना कि काल पदार्थ अणुरूप है, इसलिए इस पदार्थको कदाचित् कालाणु भी कहते हैं। जिस प्रकार लोकमे परमाणु अनेक है उसी प्रकार कालाणु भी अनेक हैं। अन्तर केवल इतना है कि परमाणु तो अनन्तानन्त हैं, परन्तु कालाणु असख्यात मात्र हैं। इन विचित्र कालाणुओको लोकाकाशके असख्यात प्रदेशोमे-से एक-एक प्रदेशपर एक-एक करके बैठा हुआ कल्पित किया जाता है। अत. जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं उतने ही कालाणु हैं।

परमाणु तथा कालाणुमे इतना अन्तर और है कि परमाणु तो मूर्तिक है अर्थात् रूप, रस, गन्ध व स्पर्शको रखनेवाला है, परन्तु कालाणु अमूर्तिक है। परमाणु एक आकाश-प्रदेशपर अनन्तानन्त रहते हैं परन्तु कालाणु एक प्रदेशपर नियमसे एक ही रहता है। परमाणु गमनागमन कर सकते हैं, परन्तु कालाणु नियमसे गमनागमन नही करते। परमाणु तो अपने स्थान बदल लेते हैं परन्तु कालाणु अपना स्थान नही बदलते। परमाणु तो परस्परमे मिल-जुडकर बडे व छोटे स्कन्धोका निर्माण कर देते है, परन्तु कालाणुओ मे परस्पर मिलनेकी शक्ति नही है, क्योकि इनमे स्निग्ध तथा रुक्ष गुण नही पाये जाते, जिनके कारणसे कि वे परस्परमे मिल-जुड सकते। परमाणुओसे निर्मित स्कन्ध क्योकि बनते-बिगडते रहते हैं अत वे अनित्य हैं, परन्तु कालाणुसे कुछ बनता-बिगडता नही, अत वह नित्य है।

४ कालका गुण

पदार्थके भावात्मक परिवर्तनमे सहायक होना ही इसका प्रमुख धर्म है। जिस प्रकार धर्म-अधर्म द्रव्य ज़बरदस्ती पदार्थोंको गमन आदि नही कराते बल्कि स्वय स्वतन्त्र रूपसे गमनादि करते हुओको सहायक मात्र होते हैं, इसी प्रकार काल द्रव्य भी ज़बरदस्ती परिवर्तन कराता हो, सो बात नही है। स्वत· स्वतन्त्र रूपसे परिवर्तन करनेवालोको वह सहायक मात्र होता है।

ज़रा यह तो विचारिए कि निमेष घड़ी, घण्टा, दिन आदि वास्तवमे क्या सत्ताभूत पदार्थ हैं ? नही, मात्र कल्पना हैं। इस कल्पनाका आश्रय वास्तवमे कुछ-एक पुद्गल पदार्थोंका क्षेत्रात्मक परिवर्तन ही तो है या और कुछ। जितनी देरमे आँख की पलक ऊपरसे चलकर नीचे आवे उसे एक निमेष कहते हैं। जितनी देरमे

रेत घडीके ऊपरवाले कोष्ठकसे चलकर नीचे आवे उतनी देरको एक घड़ी कहते हैं। जितनी देरमे घडीकी सूई इधरसे चलकर पूरा चक्कर काटकर उधर आ जावे उस एक घण्टा कहते हैं। जितनी देरमे सूर्य पूर्वसे चलकर पश्चिममे आ जावे उसे एक दिन कहते हैं। इसीपर-से ऋतु व वर्ष आदिकी गणना होती है। आँखकी पलक, रेतघड़ी, घडीकी सुई तथा सूर्यका विमान ये सब पुद्गल पदार्थ हैं। इनके गमन या क्षेत्रात्मक परिवर्तनपर-से हमे निमेष, घड़ी, घण्टा, दिन आदिकी कल्पना होती है।

यदि किसी भी पदार्थमे परिवर्तन ही न हुआ होता तो बताइए किसे घड़ी, घण्टा, दिन, वर्ष आदि कहते। अत. कहा जा सकता है कि पदार्थोमे होनेवाला क्षेत्रात्मक परिवर्तन ही व्यवहार काल है। क्योकि परिवर्तन रूप कोई भी कार्य बिना कारणके हो नही सकता, इसलिए कोई न कोई सत्ताभूत पदार्थ इसका कारण होना ही चाहिए। बस उस परिवर्तनका कारणरूप पदार्थ ही है कालद्रव्य, अर्थात् कालाणु ही निश्चयकाल है ऐसा समझना।

कालका अर्थ लोकमे मृत्यु प्रसिद्ध है। वह भी वास्तवमे व्यवहार कालके अतिरिक्त कुछ नही। प्रतिक्षण जो कोई भी पर्याय उत्पन्न हो होकर विनशती रहती है या परिवर्तन पाती रहती है, वह उस पर्यायकी मृत्यु ही है। कोई पर्याय थोडे काल स्थित रहकर मृत्युको प्राप्त हो जाती है और कोई कुछ अधिक देर स्थित रहकर। जीवका शरीर उत्पन्न होकर कुछ वर्ष पश्चात् नष्ट हो जाता है, उसे मृत्यु कहते हैं। वास्तवमे यह इस पुद्गल स्कन्ध रूप पर्यायका परिवर्तन मात्र ही है, अन्य कुछ नही। वास्तवमे देखा जाय तो शरीरमे भी प्रतिक्षण परिवर्तन होता ही रहता है। शिशु अवस्थाकी मृत्यु होती है तो किशोर अवस्थाका जन्म होता, किशोर अवस्थाकी मृत्यु

होती है तो बालक अवस्थाका जन्म होता है, बालक अवस्थाकी मृत्यु होती है तो युवा अवस्थाका जन्म होता है। इसी प्रकार युवा अवस्थाकी मृत्यु और प्रौढ अवस्थाका जन्म, प्रौढ अवस्थाकी मृत्यु और वृद्ध अवस्थाका जन्म। इस प्रकार एक ही शरीरमे जन्म-मरणकी अटूट सन्तान बराबर चलती रहती है। इस एक-एक पृथक्-पृथक् अवस्थामे भी अनेको सूक्ष्म परिवर्तन होते रहते है जो उस-उस सूक्ष्म पर्यायका जन्म मरण ही है। पर्यायका उत्पन्न होना और विनशना ही वास्तवमे उसका जन्मना तथा मरना है, भले ही वह पर्याय जीवकी हो या अजीवकी। पर्याय-परिवर्तनका नाम ही काल है। अत मृत्युको काल कहना ठीक है।

क्षेत्रात्मक तथा भावात्मक परिवर्तनमें इतना अन्तर है कि क्षेत्रात्मक परिवर्तन तो कभी-कभी तथा कही-कही ही होता है, परन्तु भावात्मक परिवर्तन सर्वत्र सदा ही होता रहता है। क्षेत्रात्मक परिवर्तन तो किसी पदार्थमे होता है और किसीमे नही, परन्तु भावात्मक परिवर्तन सभी पदार्थोंमे होता है, वह मूर्तिक हो कि अमूर्तिक, सूक्ष्म हो कि महान्। क्षेत्रात्मक परिवर्तन तो कही होता है और कही नही, परन्तु भावात्मक परिर्तन सर्वत्र होता है। क्षेत्रात्मक परिवर्तन तो कभी होता है और कभी नही पर भावात्मक परिवर्तन सर्वदा होता है।

भावात्मक परिवर्तन दो प्रकारका होता है—सूक्ष्म तथा स्थूल। सूक्ष्म परिवर्तन वह कहलाता है जो प्रतिक्षण पदार्थके भीतर ही भीतर होता रहता है, और स्थूल परिवर्तन वह है जो बाहर देखनेमे आ जाता है। हम स्थूल-दृष्टिवाले प्राणी स्थूल परिवर्तन को ही देख सकते है सूक्ष्मको नही। परन्तु इस परसे यह नही कहा जा सकता कि सूक्ष्म परिवर्तन होता ही नही। बिना सूक्ष्म समयवर्ती परिवर्तनके स्थूल परिवर्तन हो ही नही सकता, क्योकि

पदार्थ एकदम नही बदल जाया करता । यद्यपि स्थूल परिर्तन तो जीव तथा पुद्गलमे ही देखा जाता है, परन्तु सूक्ष्म परिवर्तन छहो ही पदार्थोंमे होता है, क्योकि 'पदार्थ-सामान्य' नामक अधिकारमे बताया जा चुका है कि जो कोई भी सत् होगा वह अवश्य परिवर्तनशील होगा ही । सूक्ष्म तथा स्थूल दोनो ही प्रकारके परिवर्तनो मे सहायक होना काल-द्रव्यका गुण है ।

५ कालके भेद तथा सिद्धि

यह काल दो प्रकारसे जाना जाता है—एक निश्चय काल और दूसरा व्यवहार काल । निश्चय काल पूर्वोक्त कालाणुको कहते हैं जो एक सत्ताभूत पदार्थ है और व्यवहार काल, घडी, घण्टा, पल, दिन, रात, ऋतु, वर्ष आदिका जो व्यवहार चलता है उसे कहते है । कोई यह शका करे कि घडी, घण्टा, पल आदि रूप व्यवहार काल ही सत्य है, निश्चय काल नही, क्योकि इस प्रकारका कोई कालाणु दिखाई नही देता, सो ठीक नही है । दिखाई न देना इस बातका प्रमाण नही कि वह है ही नही, क्योकि अमूर्तिक तथा सूक्ष्म पदार्थका ज्ञान इन्द्रियोसे नही तर्कसे होता है ।

परन्तु मृत्युसे भय क्यो खाया जाय, जिसके कारण कि कालको भयंकर बताया जाता है । वास्तवमे यह अज्ञान है, मोह है । लोगो का मोह शरीरको स्थायी रखना चाहता है, परन्तु वह स्थायी रहता नही । अपनी इच्छाके विरुद्ध होनेके कारण ही वह अनिष्ट लगता है, इसलिए इसको अनिष्ट तथा भयकर बताया जाता है । ज्ञानी जीव पदार्थके परिवर्तनशील स्वभावको जानते हैं, इसलिए वे इस परिर्तनको रोकनेकी कल्पना नही करते, क्योकि उसका रोका जाना असम्भव है । अत उनकी दृष्टिमे काल या मृत्यु अत्यन्त समतामयी तथा न्यायवान है, क्योकि वह ईमानदारीसे

बिना किसी पक्षपातके बराबर अपना काम कर रहा है, अपने स्वभावको निभा रहा है, प्रत्येक पदार्थको उसके परिवर्तनमे सहायता दे रहा है। यदि काल न हो तो सर्वलोक चित्र-लिखितवत् कूटस्थ हो जाय, लोकका यह सर्व सौन्दर्य तथा स्फूर्ति दृष्टिगत न हो। अत. काल, बडा सुन्दर है, यह भय खानेकी वस्तु नही उपासना करनेकी है।

६ काल चक्र

व्यवहार कालको समष्टि रूपसे भी देखा जा सकता है, जिसमे कि युगो तथा कल्पोकी कल्पना समावेश पाती है। वैदिक मान्यताके अनुसार सत्युग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग ये चार कल्पकाल है। चारो युगोकी यह कल्पना समष्टिमे सुख तथा धर्मकी क्रमिक हानि व वृद्धिके आधार पर की जाती है। प्रत्येक युग लाखो करीडो अरबो वर्षोंका होता है। जिस युगमे पृथ्वीपर सुख तथा धर्मका सर्वत्र प्रसार हो वह सत्-युग कहलाता है। जब इस सुख तथा धर्ममे कुछ कमी पड जाती है, तब उसे त्रेता-युग कहते हैं। जिस युगमे पृथ्वीपर सुखके साथ दु ख और धर्मके साथ अधर्म साथ-साथ रहते हैं उसे द्वापर-युग कहते हैं। और जिस युगमे पृथ्वीपर केवल दु.ख तथा अधर्मका साम्राज्य ही प्रमुखत. रहता है, उसे कलि-युग कहते हैं। वर्तमानमे पृथ्वीपर कलियुगका राज्य है।

सुख तथा धर्मका यह परिवर्तन भी समष्टिमे काल शब्द द्वारा कहा जाता है। यह काल कभी सुखसे दु खकी ओर और कभी दु खसे सुखकी ओर चलता है। सत्युगसे चलकर कलियुग तक आनेवाला वर्तमान काल सुखसे दु खकी तरफ चलनेवाला कहा जायेगा। सत्युगमे बहुत अधिक सुख था, जो धीरे-धीरे घटते-घटते अब दु ख रूप हो गया है। कलियुगका अन्त प्राप्त हो जानेपर अर्थात् दु.ख

तथा अधर्मकी सीमा प्राप्त हो जानेपर यह पुनः दु.खसे सुखकी ओर जाने लगेगा। तब धीरे-धीरे दु खकी हानि और सुखकी वृद्धि होने लगेगी। इस प्रकार काल सत्युगका अन्त प्राप्त हो जानेपर कलियुग की ओर और कलियुगका अन्त प्राप्त हो जानेपर पुन. सत्युगकी ओर बराबर चलता रहता है। इसे ही कालचक्र कहते हैं, जो अनादि कालसे चला आ रहा है, और सदा चलता रहेगा। इसके कारण ही पृथिवीपर सुखसे दु ख और दु खसे सुख रूप परिवर्तन होता रहता है।

जैन-दर्शनकारोने इस कालचक्रको किसी अन्य भाँति कल्पित किया है। पूरे कालचक्रको दो भागोमे विभाजित कर दिया है— एक नीचेसे ऊपर अर्थात् दु.खसे सुखकी ओर जानेवाला और दूसरा ऊपरसे नीचे आनेवाला अर्थात् सुखसे दु.खकी ओर आनेवाला। जिस प्रकार गाड़ीका पहिया घूमता रहता है, अर्थात् पहियेके नीचेवाला अरा पहले ऊपर आता है और ऊपरसे नीचे जाकर फिर वही पहुँच जाता है जहाँसे कि वह चला था, इसी प्रकार कालका पहिया भी बराबर घूमता रहता है। जिस प्रकार पहियेके एक पूरे चक्करमे वह अरा दो दिशाओमे गमन करता है, पहले नीचेसे ऊपर फिर ऊपरसे नीचे, और इस प्रकार उसका एक पूरा चक्कर दो भागोमे विभाजित किया जा सकता है। उसी प्रकार काल रूपी पहियेका पूरा चक्कर भी दो भागोमे विभाजित कर दिया गया है। सुखसे दु.खकी दिशामे जानेवाला अवसर्पिणी और दु खसे सुखकी दिशामे जानेवाला भाग उत्सर्पिणी कहलाता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी यह दोनो मिलकर एक पूरा काल चक्र बनता है। इन दोनोको पृथक् पृथक् कल्प कहते हैं। दोनो कल्पोके जोडेको अर्थात् पूरे चक्करको एक युग कहते हैं, क्योकि युगका अर्थ जोड़ा होता है।

किसी भी विषयमे हीनाधिकता या तरतमता दर्शानेके लिए जैन दर्शनकार सर्वत्र वही पद्धति अपनाते हैं, जो कि पहले पुद्गलकी स्थूलता तथा सूक्ष्मता दर्शानेके लिए अपनायी गयी है। अर्थात् प्रत्येक बातको जघन्य मध्य तथा उत्कृष्ट अथवा साधारण रूप, तररूप और तमरूप, अथवा साधारण कुछ अधिक और बहुत अधिक, इस प्रकार तीन खण्डो द्वारा कहनेवाली क्रमिक विकासके प्रदर्शनकी पद्धति। यहाँ कालचक्रमे भी सुख तथा दु खकी क्रमिक वृद्धि हानि दर्शानेके लिए वही पद्धति अपनायी गयी है।

उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी दोनो ही कल्पोको पृथक्-पृथक् तरतमताके छह-छह विभागोमे विभाजित करके पूरे युगको अर्थात् कालके एक पूरे चक्करको १२ विभागोमे विभाजित कर दिया गया है। उत्सर्पिणी नामका कल्प ऊँचेकी तरफ अर्थात् दु खसे सुखकी तरफ जाता है। इस कल्पमे दु.ख बराबर घटता रहता है और सुख बराबर बढता जाता है, इसलिए इस कल्पके छह विभागोके नाम हैं– दु खमा-दु.खमा, दुःखमा, दु खमा-सुखमा, सुखमा-दु खमा, सुखमा, सुखमा-सुखमा। अवसर्पिणी नामका कल्प इससे उलटी दिशामे अर्थात् सुखसे दु.खकी ओर नीचेको आता है, अत उसके छह विभागोंके नाम हैं—सुखमा-सुखमा, सुखमा, सुखमा-दु खमा, दु'खमा-सुखमा दु.खमा, दु खमा-दु खमा। डबल कहनेसे उत्कृष्ट अर्थ होता है, एक बार कहनेसे मध्यम होता है और दोनो विरोधी बातें आगे-पीछे कहने से जघन्य होता है। इसमे जो नाम पहले लिया उसका अश अधिक रहता है, जैसे सुखमा-दु खमाका अर्थ है कि दु खकी अपेक्षा सुख कुछ अधिक है, दु खमा-सुखमाका अर्थ है कि सुखकी अपेक्षा दु ख कुछ अधिक है। वर्तमानमे अवसर्पिणी कल्प चलता है, अर्थात् पृथिवीपर धर्म तथा सुखकी हानि होती जा रही है। इस कल्पका यह पञ्चम काल सर्वत्र प्रसिद्ध है जिसका अर्थ है कि अब दु.खमा काल है।

सुखमा-सुखमा काल वह कहलाता है जबकि पृथिवीपर सर्व प्राणी प्रकृति द्वारा उत्पन्न फलो आदिका भोग ही करते हैं। उस समय उन्हे कुछ भी काम-धाम करना नही पड़ता। सुखमा काल वह है जिसमे पूर्ववत् भोग भोगनेकी प्रमुखता रहती है परन्तु पहलेकी अपेक्षा भोग कुछ कम हो जाते है। तीसरा जो सुखमा-दु खमा काल है उसमे भोग और भी कम हो जाते है। ये तीनो ही काल भोग-प्रधान हैं। इन तीनोमें मनुष्यको अपने हाथसे खेती आदि करके कुछ भी पैदा करना नही पड़ता। उनके जीवनका आधार मात्र प्राकृतिक पदर्थ होते हैं जो बहुत अधिक मात्रामे उस समय स्वत. उत्पन्न हुआ करते हैं। दु.खमा-सुखमा कालमे आकर प्राकृतिक पदार्थ प्राय लुप्त हो जाते है और मनुष्यको अपने हाथसे खेती आदि करनी पडती है, काम करनेके कारण कुछ कष्ट सहना होता है, फिर भी थोडे-से परिश्रमसे बहुत अधिक पैदा हो जाता है और प्रकृति अनुकूल रहती है। पाँचवाँ जो दु खमा काल है वह आप सबके सामने है। परिश्रम अधिक करना होता है, आवश्यकताएँ बढ जाती हैं और पैदा कम होता है। छठा जो दु खमा-दु खमा काल है उसमे प्राकृतिक उपज लगभग बन्द हो जाती है। प्रकृति बिलकुल विरुद्ध हो जाती है, अमानुषिकताका साम्राज्य छा जाता है, व्यक्ति एक दूसरेको मारकर खाने लगता है।

जिस प्रकार दु ख-सुखमे क्रमिक हानि होती है, उसी प्रकार आयु, वल, शरीरकी ऊँचाई आदिमे भी समझना। सुखमा-सुखमा कालमे आयु बहुत अधिक अर्थात् करोडो वर्षोंकी होती है, शरीर बहुत वडे तथा बलवान् होते हैं। उस समय शरीरमे हजारो हाथियोका वल होता है। सुखमा कालमे उसकी अपेक्षा आयु भी कम तथा शरीरकी ऊँचाई और बल भी कम होता है, तदपि बहुत होता है। इसी अनुपातमे शरीरकी ऊँचाई तथा वल भी घट जाते हैं।

सुखमा दु खमा कालमें वे इसकी अपेक्षा भी घट जाते हैं। दु.खमा-सुखमा नामके चौथे कालमे आयु हज़ारो वर्षकी रह जाती है और इसी प्रकार शरीरकी ऊँचाई तथा बल भी। पचम दु.खमा कालमे आयु केवल १०० वर्षकी अधिकसे अधिक रह जाती है, शरीरकी ऊँचाई तथा बल भी बहुत घट जाते हैं। यहाँ तक कि छठे कालमे आयु केवल १२ वर्षकी रह जाती है और शरीरको ऊँचाई केवल एक हाथकी। बल तुच्छ मात्र ही रहता है।

इसी प्रकार धर्मके सम्बन्धमे भी जानना। पहले तीन सुखमा काल भोग-प्रधान है, अतः उन कालोमे अधर्म होता है न धर्म। चौथे दु.खमा-सुखमा कालमे जब कुछ दु.ख बढता है तब मनुष्यको धर्म करनेकी बुद्धि उपजती है। क्योकि उस कालमे मनुष्योकी प्रकृति बहुत सरल होती है इसलिए धर्मका विकास भी सहज होता है। इसी कालमे क्रमसे एकके पीछे एक २४ तीर्थंकर अवतार लेते हैं। पचम कालमे आकर मनुष्यकी प्रकृति विलास तथा माया-प्रधान हो जाती है, अत धर्मकी अत्यन्त हानि होती है। तीर्थंकरोका अवतार रुक जाता है, बहुत ऊँचे ऋषि तपस्वी भी नही होते, फिर भी कुछ न कुछ धर्म-कर्म रहता है। छठे दु खमा-दु खमा कालमे धर्म कर्म बिलकुल विलुप्त हो जाता है। प्राकृतिक सुविधाएँ नष्ट हो जाती हैं और सर्वत्र अराजकताका साम्राज्य छा जाता है। प्राकृतिक प्रकोप बढ जाता है, सब कुछ प्रलयाग्निमे भस्म हो जाता है, पृथिवी शून्य-प्राय. हो जाती है।

कुछ काल पश्चात् उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। उस समय भी व्यक्ति बिलकुल असस्कृत होनेके कारण, आयु व शरीर बहुत छोटे तथा निर्बल होनेके कारण और प्रकृति विरुद्ध रहनेके कारण दु ख ही प्रधान रहता है। धीरे-धीरे विद्या आदिका विकास होनेपर सुख होने लगता है, धर्म भी प्रकट होने लगता है, और उसके फलस्वरूप

प्रकृति भी अनुकूल होने लगती है। इस प्रकार वढते-वढते दुःखसे सुखकी ओर जाता हुआ, यह काल अपने क्रमपर व्यक्तिको प्रकृतिका प्रसाद प्रदान करता है, यहाँ तक कि वही सुखमा तथा सुखमा-सुखमाकाल पुन प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार सुखसे दु:खकी ओर और दु:खसे सुखकी ओर यह दो कल्प बराबर अपने-अपने क्रमपर आते हैं और कालचक्र वरावर घूमता रहता है। जो मनुष्य इस कालको ठीक प्रकार समझ जाता है वह संसारके दुष्ट प्रलोभनोमे नही अटकता। एक मात्र धर्मका आश्रय लेकर वह इस भयकर समझे जानेवाल कालके गालसे निकल कर निर्भय हो जाता है, परमपद जो मोक्ष उसे प्राप्त कर लेता है।

७. समय विभाग

प्रत्येक पदार्थको मापने के लिए उसका छोटेसे छोटा भाग निकाल लिया जाया करता है। इस छोटे भागको यूनिट या इकाई कहते हैं। इस यूनिटको ही उत्तरोत्तर गुणा करनेपर वडे माप बन जाते है, जिनसे कि हमारा नित्यका व्यवहार चला करता है। जिस प्रकार पुद्गल पदार्थका छोटेसे छोटा भाग परमाणु है और आकाशका छोटेसे छोटा भाग प्रदेश है उसी प्रकार कालका छोटेसे छोटा भाग समय है। समयका अर्थ यहाँ वह नही जो कि लोकमे साधारणत प्रयुक्त होता है, बल्कि काल-व्यवहारके अविभागी अंशको समय कहते है। इससे छोटे कालकी कल्पना नही की जा सकती।

कालको कल्पना द्वारा विभाजित करते चले जानेपर उसका जो अविभागी अश प्राप्त होता है, जिसका आगे भाग किया जाना सम्भव नही उसे समय कहते है। आजके व्यवहार मे सेकेण्ड सबसे छोटा माना जाता है, परन्तु 'समय' उससे भी अधिक सूक्ष्म है।

एक सेकेण्डमे असख्यातो 'समय' होते है। ६० सेकेण्डका एक मिनट, ६० मिनटका एक घण्टा, और इस प्रकार आगे-आगे गुणाकार करके हमारा काल सम्बन्धी व्यवहार चलता है।

८. कालके स्वभाव-चतुष्टय

अन्य पदार्थोंकी भाँति कालका भी स्वभाव-चतुष्टय द्वारा विश्लेषण कर लेना चाहिए। द्रव्यकी अपेक्षा विचार करनेपर ये कालाणु रूप पदार्थ इस लोकमे असख्यात मात्र है अर्थात् उतने हैं जितने कि लोकके प्रदेश। क्षेत्रकी अपेक्षा विचार करनेपर ये केवल अणु प्रमाण होते हैं तथा लोकके एक-एक प्रदेशपर एक-एक ही रहते हैं। कालकी अपेक्षा विचार करनेपर ये कालाणु नित्य अवस्थित है, न तो अपना अणु रूप बदल सकते है न अपना स्थान छोडकर अन्यत्र जा सकते है। भाव की अपेक्षा ये कलाणु जीव तथा पुद्गलको स्थूल रूपसे और आकाशादि पदार्थोंको सूक्ष्म रूपसे यथा योग्य भाव-परिवर्तन तथा स्थान-परिवर्तनमे सहायक होते है।

९. काल द्रव्यको जानने का प्रयोजन

प्रत्येक दृष्ट पदार्थ परिवर्तनशील तथा विनष्ट होनेवाला है। वह कालके आधीन है अत. सत् नही है। सत् वह है जो इन सब बाहरके रूपोके पीछे बैठा है। साधारण दृष्टिसे वह दिखाई नही देता। जो सत् है वह दिखाई नही देता और जो दिखाई देता है वह सत् नही है, इसी कारण नित्य भय तथा स्वार्थ बना रहता है, जीवन व्याकुल रहता है। अत. जीवनको उन्नत बनानेके लिए कालकी सामर्थ्यको पहिचानकर सत्की ही प्राप्ति करनेका प्रयत्न करें, जो कि कालकी समर्थ्यके बाहर है और जिसके प्राप्त हो जानेपर अन्य कुछ प्राप्तव्य नही रहता। यही इसे जाननेका प्रयोजन है।

१२

उपसंहार

१ षट् द्रव्य, २ पचास्तिकाय, ३ सृष्टि स्वत सिद्ध है, ४ सत् तथा अनत्, ५ ससार, ६ सत्पुरुषार्थ ७ पदार्थ विज्ञान की देन ।

१ षट् द्रव्य

इस प्रकार यहाँ तक छह मूल पदार्थोंका कथन करके विश्वकी व्यवस्थाका स्वरूप दर्शानेका प्रयत्न किया गया है। इन छह बातो के विज्ञानमे हम निम्न बातें देखते हैं—

१. लोकमे दो प्रकारके पदार्थ हैं—जीव तथा अजीव ।

२ जीव संसारी-मुक्त तथा त्रस-स्थावर आदि अनेक प्रकारके हैं ।

३. अजीव पाँच प्रकारके हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, तथा काल ।

४. जीव तथा पुद्गल ही विश्वकी व्यवस्थामे मूल द्रव्य हैं, क्योकि ये ही सर्वत्र क्रियाशील हैं। शेष चार इनके सहायक मात्र हैं ।

५ पुद्गल मूर्तिक है और शेष पाँच अमूर्तिक ।

६ जीव तथा पुद्गल दोनो ही क्रियावान् हैं अर्थात् गमना-गमनागमन कर सकते हैं अथवा अपने प्रदेशोमे चंचलता उत्पन्न कर सकते हैं तथा मिल और बिछुड़ सकते हैं। शेष चार अक्रिय हैं ।

७ जीव तथा पुद्गल ये दो ही परस्परमे मिलकर अशुद्ध हो सकते हैं, शेष चार त्रिकाल शुद्ध हैं।

८. आकाश, धर्म तथा अधर्म ये तीन व्यापक हैं। जीव, पुद्गल तथा कालाणु अव्यापक हैं।

९, आकाश, धर्म तथा अधर्म ये तीनो एक-एक हैं, जीव तथा पुद्गल अनेक-अनेक हैं।

१०. पुद्गल परमाणुरूप द्रव्य है। काल द्रव्य भी अणुरूप है। इन दोनोमे पुद्गल परमाणु तो परस्परमे मिलकर स्कन्ध बना सकते हैं, परन्तु कालाणु सदा पृथक्-पृथक् ही रहते है।

२. पंचास्तिकाय

इन छहो पदार्थोंमे एक और बात देखनेकी है। वह यह कि इनमे-से कोई पदार्थ तो अनेकप्रदेशी है और कोई केवल एक-प्रदेशी। जीव, धर्म, अधर्म ये तीन पदार्थ समान रूपसे लोकाकाश प्रमाण असख्यात-प्रदेशी हैं। यद्यपि जीव सिकुड़ कर छोटा हो जाता है परन्तु रहता है उतने प्रदेशवाला ही। आकाश अनन्त प्रदेशी है। पुद्गल यद्यपि मूल रूपसे परमाणु है जो कि एक प्रदेशी है, परन्तु परस्परमे मिलकर अनेक प्रदेशी स्कन्ध बन जानेके कारण इसे भी कदाचित् अनेक प्रदेशवालोकी श्रेणीमे रखा जा सकता है। परन्तु काल द्रव्य तो सर्वथा एक प्रदेशी ही है, क्योकि वह स्वयं अणुरूप है और परस्परमे मिलकर भी स्कन्ध रूप नही हो सकता। इसपर-से पता चलता है कि छह पदार्थोंमे काल द्रव्य तो एक प्रदेशी है और शेष पाँच अनेक प्रदेशी।

अनेक प्रदेशोंके सचयको शरीर या काय कहते है। यद्यपि लोकमे इस चमडे-हड्डीके शरीरको शरीर या काय कहते हैं, परन्तु

वास्तवमे सब अनेक प्रदेशी पदार्थ काय कहे जाने चाहिएँ। इस चमडेके शरीरको भी तो इसलिए ही शरीर कहते हैं कि यह गल-सड कर विकृत हो जाता है और काय इसलिए कहते हैं कि यह परमाणुओका पिण्ड है। पिण्ड कहो या काय एक ही अर्थ है। अतः पाँच जो अनेक प्रदेशी पदार्थ है वे तो कायवान् कहे जाते हैं और एक जो एकप्रदेशी द्रव्य अर्थात् काल द्रव्य है सो कायवान् नही है।

यद्यपि छहो द्रव्य सत् हैं, अर्थात् अपनी-अपनी पृथक् सत्ता रखते हैं, परन्तु सबके सब कायवान् नही हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, तथा आकाश ये पाँच पदार्थ सत् भी है और कायवान् भी, इसलिए इन्हे अस्तिकाय कहा जाता है। जैनागममे इन पाँचो-को पचास्तिकाय कहा गया है।

३ सृष्टि स्वत सिद्ध है

इन छहो पदार्थोका तथा पचास्तिकायोका सघात या समूह ही विश्व है। इन छहोमे भी जीव तथा पुद्गल परस्परमे मिलकर इस अखिल सृष्टिका सृजन तथा सहार किया करते है। क्योकि ऐसा करते रहना इनका स्वभाव है, इसलिए अनादिकालसे इनका यह कार्य बराबर चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। इस कारण इस सृष्टिका सृजन तथा सहार स्वत. सिद्ध है, इसको करनेके लिए किसी ईश्वर नामकी पृथक् शक्तिकी आवश्यकता नही, क्योकि स्वभाव सदा असहाय होता है।

बिना किये इस सृष्टिकी रचना कैसे होती है, यह तो एक स्वतन्त्र विषय है, परन्तु यहाँ इतना समझ लेना पर्याप्त है कि यदि जीव तथा परमाणु भी आकाशवत् पृथक्-पृथक् रहे होते तो यह सृष्टि न हुई होती। इस लोकमे अनादि कालसे चेतन सदा अन्त.करण युक्त ही उपलब्ध होता है शुद्ध नही। यद्यपि

पीछे किन्ही धार्मिक अनुष्ठानो द्वारा वह इससे मुक्त हो जाता है, परन्तु जबतक अन्तःकरणसे युक्त रहता है तबतक इसमे राग तथा द्वेष रूप आकर्षण व विकर्षण शक्ति भी स्थित रहती है। इसी प्रकार परमाणुमे भी आकर्षण तथा विकर्षण शक्ति रहती है। दोनो ही पदार्थोंमे यह शक्ति बराबर अनेक रूपोको लेकर स्वभावसे ही व्यक्त होती रहती है, क्योकि परिणमन करते रहना या भीतर ही भीतर परिवतन करते रहना द्रव्यका स्वभाव है, यह पहले बता दिया गया है। जिस प्रकार आकर्षण तथा विकर्षण शक्तियोके कारण अलैक्ट्रोन और प्रोटोन परस्परमे बँधकर स्कन्ध बन जाते हैं इसी प्रकार आकर्षण तथा विकर्षण शक्तियोके कारण राग द्वेष युक्त जीव भी बराबर नये-नये अन्त करणो तथा शरीरोसे बँधता रहता है। और जिस प्रकार गर्मी आदिके कारण वे स्कन्ध छिन्न-भिन्न होते रहते है उसी प्रकार जीव तथा शरीरोका बन्ध भी छिन्न-भिन्न होता रहता है। इसे ही जन्म-मरण कहते हैं।

इन आकर्षण-विकर्षण शक्तियोके कारण ही बाहरके जगत्मे पृथिवी, सूय, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि महास्कन्ध बराबर एक दूसरे के गिद घूमते रहते हैं। परन्तु धीरे-धीरे उस शक्तिमे सूक्ष्म तरतमता उत्पन्न होते रहनेके कारण लाखो करोडो वर्षो पश्चात् जाकर उनके आकर्षण-विकर्षणका सन्तुलन भग हो जाता है, जिसके कारण उनका कही-कही परस्परमे टकराव होने लगता है, अनेक प्रकारके विस्फोट होते हैं। सूर्य पृथिवीके निकट आ जाता है जिससे यहाँ गर्मी बहुत बढ जाती है, जिसके फलस्वरूप उत्तरी ध्रुवपर-के वर्फीले पहाड पिघल जाते है और महान् जल-बाढ आ जाती है। तात्पर्य यह कि प्रकृतिमे एक भयकर विप्लव मच जाता है, जिसके कारण सब कुछ इसकी गोदमे समाकर लुप्त हो जाता है। इसे प्रलय कहते है।

जिस प्रकार व्यष्टिका जन्म-मरण होता है , उसी प्रकार समष्टि का भी जन्म-मरण होता है। आकर्षण विकर्षण शक्तियोमे नित्य चलनेवाला जो स्वाभाविक परिवर्तनका प्रवाह है, उसके कारण ही यह सब कुछ होता है, इसलिए इस सृष्टिकी रचना भी स्वाभाविक है और सहार भी, जो अपने-अपने समयपर होते रहते हैं। इसे न कोई बनाता है और न कोई रोक सकता है।

यही अध्यात्मका महानतम रहस्य है जो सक्षेप मेसमझा नही जा सकता। यह अत्यन्त गूढ तथा गहन है, अत कर्म सिद्धान्त तथा कर्म रहस्य नामक किन्ही दूसरी स्वतत्र पुस्तको द्वारा समझाया जायेगा।

४. सत् तथा असत्

छहो मूल पदार्थ नित्य अवस्थावाले है इसलिए सत् हैं, परन्तु जीव तथा पुद्गलके पारस्परिक सयोगसे उत्पन्न होनेवाली ये रचनाएँ क्या है। क्या ये कोई मूलभूत पदार्थ है। नही, बल्कि यह तो सयोग मात्र है, जिसकी पृथक्से कोई स्वतन्त्र सत्ता नही है। क्योकि सयोगोकी कोई सत्ता नही होती इसलिए ये क्षणिक हैं और अपनी सत्ता न रखनेके कारण असत् है। जलपर उदय होकर उसीमे विलीन हो जानेवाली तरगोवत् ये सब दृष्ट पदार्थ जीव तथा पुद्गल रूप मूलसत्मे-से उदय हो होकर उसमे ही विलीन हो जाते हैं। इसलिए दृष्ट जगत् असत् है, मिथ्या है, माया है, प्रपच है।

५ ससार

मानव इस प्रकारकी सृष्टि तथा विश्वकी रचनासे बिलकुल अन-भिज्ञ होनेके कारण असत्को सत् मान लेता है और इस मायामयी प्रपञ्चमे उलझकर अपने आन्तरिक चेतन स्वरूपको भूल जाता है। बाह्यमे इस प्रपचको देखनेके कारण इसके अन्तरगमे भी सकल्प विकल्पात्मक विविध प्रपच चलते रहते है। इसे ही अन्त-

करण कहते हैं, जिसके साथ बँधा हुआ चेतन प्राणोको धारण करता है और इसलिए जीव सज्ञाको प्राप्त होता है। अज्ञानी तो शरीर तथा शरीरके साधनोको अर्थात् बाह्य जीवनको ही सर्वस्व सझता रहता है और यदि बहुत बढा भी तो अन्त.करणपर आकर अटक जाता है।

बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा मन इन्हीको अपना स्वरूप मानकर इन्हीकी महिमा गिनता है। न स्वयंको जान पाता है और न उसकी महिमा गिनता है। कोई बताये तो उसपर विश्वास भी नही करता। अन्त करणकी कल्पनात्मक चचलताओमें उलझा हुआ अन्तरगमें भी चचल बना रहता है और बाहरमें भी। एक विकल्पका जाना और दूसरेका आना यह तो अन्तरगकी चचलता है, और एक शरीरका जाना दूसरेका आना यह बाहरकी चचलता है। इस चंचलताको ही जन्म-मरण कहते हैं और यह जन्म-मरण ही ससार है—अन्तरग चचलता अन्तरग ससार और बाह्य चचलता बाह्य ससार।

६. सत् पुरुषार्थ

चचलता रूप यह संसार ही साक्षात् व्याकुलतारूप है, दु.ख रूप है। यद्यपि यह सबकी प्रतीतिमे आता है, परन्तु सत्स्वरूप अन्तरग मूल चेतनका जो कि अत्यन्त पवित्र तथा अन्त करणसे परे रहनेके कारण अत्यन्त आनन्दघन है, परिचय न होनेके कारण उधर कोई लक्ष्य नही करता। यदि कदाचित् एक बार भी उधर दृष्टि चली जाय तो जीवनके सारका पता चल जाय, और तब इस शरीर, कुटुम्ब तथा धनका कोई महत्त्व उसकी दृष्टिमे न रह जाये। असत् पदार्थसे क्या मोह ? उसके सयोगका मूल ही क्या, आज है कल नही। उसकी प्राप्तिके लिए इतना प्रयत्न तथा पुरुषार्थ

भो क्यो ? यदि पुरुषार्थ ही करना है तो सत् के प्रति कर, जोकि एक बार प्राप्त हो जानेपर फिर न विछुडे ।

इस प्रकारकी वुद्धिका उदय ही मानवके लिए अत्यन्त कल्याण-कारी है । इस प्रकार की वुद्धि उदित हो जानेपर वह गृहस्थादिके जटिल वातावरणको छोडकर कही दूर वनोमे चला जाता है, परन्तु जवतक गृहस्थमे तथा लोक-व्यवहारमे रहता है अर्थात् जव तक धनादि कमाता, भोगता तथा कुटुम्वादिका पोषण करता रहता है तव तक भी वह न्यायपूर्वक ही वतन करता है । क्योकि अव उसका निश्चय पूर्ववत् अन्धकारग्रस्त नही रहता, सत्-असत्का निर्णय हो जानेके कारण इन वाह्य सयोगोकी क्षणिकता दृष्टिमे आ जाती है, 'कोई अपना नही है' ऐसा भाव जागृत हो जाता है, इसलिए उसमे स्वार्थ नही रह सकता । स्वार्थके अभावमे कटुनाकी वजाय प्रेम और वेईमानीकी वजाय सत्य प्रवेश पाता है, जिससे उसका लौकिक जोवन परमपदमे विलीन होकर सदाके लिए इम जन्म-मरण रूप ससार से छूट जाता है ।

७ पदार्थ-विज्ञानकी देन

यही धर्म है, यही जीवन है, यही कर्तव्य है, यही न्याय है, यही सत्य तथा अहिसा है । इसीमें व्यक्ति-सेवा, समाज-सेवा और राष्ट्र सेवा निहित है । इसकी प्राप्ति क्योकि षट् द्रव्यका विज्ञान जान लेनेसे होती है, इसलिए यह पदार्थ-विज्ञान धर्म मार्गकी मूल भित्ति है, ऐसा समझना, तथा इसका ठीक प्रकार मे अभ्यास करना ।